पं॰ गंगाप्रसाद अग्निहोत्री रच

R
०८१
९६

Arya Samaj Foundation Chennai and
Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं॰ गंगाप्रसाद अग्निहोत्री
रचनावली

R
0२१
१८

सम्पादक
हरिकृष्ण त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
029
96

97481

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 97481

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 0२1/96 आगत संख्या 97481

पुस्तक— वितरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब–दण्ड लगेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री
रचनावली

(कुछ चुने हुए लेख-निबन्ध और कविताएँ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

97481

पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री रचनावली

(कुछ चुने हुए लेख-निबंध और कविताएँ)

सम्पादक

हरिकृष्ण त्रिपाठी

97481

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

भारतीय भाषापीठ

नयी दिल्ली—110030

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0८२
९८

© अभिज्ञान कृष्ण त्रिपाठी,
बालमुकुन्द त्रिपाठी मार्ग,
दीक्षितपुरा, जबलपुर, (म० प्र०)

मूल्य : रुपये 200.00

प्रथम संस्करण : 1990

प्रकाशक : भारतीय भाषापीठ
3/596, महरौली, नयी दिल्ली-110030

मुद्रक : कान्ती प्रसाद शर्मा
रुचिका प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

PANDIT GANGAPRASAD AGNIHOTRI
RACHANAVALI
Edited by Harikrishna Tripathi

Price : Rs. 200.00 Edn. 1990, [First]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी गद्य के अभ्युदय काल में जिन गद्य-पद्य सर्जकों का विकास हुआ उनमें पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का एक समादृत स्थान है। उन्होंने समर्पित भावना से युग की धारा के अनुकूल हिन्दी गद्य के विकास पथ को प्रशस्त करने की दिशा में द्विवेदी मण्डल के समसामयिक रचनाकारों के साथ जो भूमिका निबाही है वह उस काल विशेष के सृजन में उनके साहित्यिक अवदान को रेखांकित किए जाने योग्य सिद्ध करती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अवसान और पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के उदय के संधिकाल में जिन लेखकों का आविर्भाव हुआ उनमें से अनेक आगे चलकर द्विवेदी मण्डल के प्रमुख रचनाकार सिद्ध हुए। उन पर उस युग के विचार धर्म और रचना प्रक्रिया का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री इसी शृंखला के एक मनस्वी और सृजनशील रचनाधर्मी थे और उन्होंने युगीन आवश्यकताओं के अनुकूल मानक गद्य लेखन के पक्ष को संवारने में अपनी सजग भूमिका निवाही है। तत्कालीन अभिव्यक्ति शैली, विचारबोध तथा रचना प्रक्रिया की झांकी उनके साहित्य में बिंबित होती है। खड़ी बोली हिन्दी गद्य के स्वरूप को संवारने की भावना से किए गए उनके अनुवाद कार्य, मौलिक और स्वतन्त्र निबन्ध लेखन तथा काव्य-कर्म उनकी इस प्रतिछबि को प्रतिभासित करता है। विविध विषयक 18 प्रकाशित तथा 4 अप्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त पाँच सौ से अधिक निबन्ध-लेख और स्फुट कविताओं की रचना उन्होंने अपने 37 वर्षों के साहित्यिक जीवन में की। समकालीन साहित्यकारों-पत्रकारों के अतिरिक्त देश के श्रेष्ठजनों से उनका विशद पत्राचार भी अपना महत्व रखता है। लल्लूजीलाल के समय से जिस खड़ी बोली गद्य का आरम्भ हुआ था वह द्विवेदीजी के समय तक उत्तर भारत के सभी हिन्दी भाषी प्रदेशों-की जनता के बीच एक मानक रूप ग्रहण कर रहा था। जागरण के आरंभिक काल में उत्तर भारत के जातीय जीवन की झलक प्रस्तुत करने वाले इस गद्य लेखन में व्याकरण की कसावट, संतुलित और सर्वग्राह्य शब्दावली प्रयोजनीय हो गई थी। अग्निहोत्री जी की रचनाओं में यही युगीन छबि प्रतिबिंबित है।

ऐसे जीवन्त और मनस्वी लेखक के स्फुट गद्य-लेखों के संकलन का विचार विगत अनेक वर्षों से टलता चला आ रहा था। अंततः अब उक्त विचार इस संकलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में मूर्तरूप ले रहा है। इसका उद्देश्य सही है कि आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास के प्रति जिज्ञासुजन पुरानी पीढ़ी के गद्य निर्माताओं की रचना शैली और विचार सम्पदा से परिचित हो सकें तथा हिन्दी जगत के मानक गद्य की विकास परम्परा का परिचय उन्हें हो सके। एक दृष्टि से यह हिन्दी गद्य-लेखन के इतिक्रम को संरक्षित रखने का प्रयास भी है। व्यक्तिगत रूप में मेरे लिए तो यह श्रद्धा तर्पण ही है और पूज्य अग्निहोत्री जी की स्मृति रक्षा का विनम्र प्रयास भी।

इस संकलन में उनके 43 लेख-निबन्ध और 12 कविताएं ही संकलित हैं। पुराने बस्तों में सुरक्षित पत्रों की कतरनों में से इन्हें प्राप्त करना तो सहज हो सका, किन्तु तत्कालीन अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का उपयोग नहीं हो पाया। सरस्वती, वीणा, माधुरी, सुधा, चांद श्रीशारदा, हितकारिणी, प्रभा, छत्तीसगढ़ मित्र, प्रेमा आदि अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का निजी संग्रह विनष्ट हो जाने से उनमें प्रकाशित महत्वपूर्ण रचनाएं इसमें सम्मिलित नहीं की जा सकीं। फिर भी यदि सम्भव हो पाया तो सुविधानुसार उस सामग्री को प्राप्त कर आगे इसके दूसरे भाग के रूप में उसे प्रस्तुत किया जा सकेगा। इस संग्रह की रचनाएँ किसी निर्धारित मानक के अनुसार उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ भी नहीं हैं। उपलब्ध रचनाओं में से प्रतिरूपण के लिए इन्हें चुन लिया है तथा प्रकाशन तिथि के क्रमानुसार ही रखा गया है ताकि मोटे रूप में अग्निहोत्री जी की विचार वृत्ति और रचनाशैली का सम्यक परिचय प्राप्त हो सके। अस्तु,

इस संग्रह को तैयार करने की योजना को सार्थकता के सोपान तक पहुंचाने का श्रेय मेरे छात्र और अब स्नेह भाजन सहयोगी प्रो० एच० एस० पटेल, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, श्रीजानकीरमण महाविद्यालय, जबलपुर को है जिन्होने मेरी विविध व्यस्तताओं के बीच मुझे न केवल इस हेतु प्रेरित ही किया वरन् धीरे-धीरे सम्पूर्ण पाण्डुलिपि परिश्रमपूर्वक स्वयं टंकित कर डाली। इस निमित्त वे मेरे अशेष साधुवाद के पात्र हैं।

श्री बी० पी० पाण्डेय का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने सहज सद्भाव सहित इस संकलन के प्रकाशन की योजना का संयोजन किया।

आशा है कि इस रचनावली द्वारा साहित्यानुरागीजन पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के रचना-संसार का स्वरूप परिचय प्राप्त कर सकेंगे। यदि साहित्यानुरागी सज्जनों को यह संकलन रुचिकर प्रतीत हुआ तो सम्पादक अपने श्रम का सार्थक समझेगा।

हरिकृष्ण त्रिपाठी

संस्थापक-प्राचार्य
श्री जानकीरमण महाविद्यालय, जबलपुर, म०प्र०
श्रावण कृष्णा सप्तमी वि० सं० 2046

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

मानक गद्य के शैलीकार पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री (सम्पादकीय)/हरिकृष्ण त्रिपाठी 13
स्व० अग्निहोत्री जी की कृतियाँ 23
स्व० अग्निहोत्री जी का वंश वृक्ष 25

लेख

समालोचना (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1895 ई०) 27
राष्ट्रभाषा (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1998 ई०) 47
अभिमान (निबन्धमालादर्श, 1899 ई०) 79
हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय (भारत मित्र 26 दिसम्बर 1908 ई० तथा 20 मार्च, 1909 ई०) 98
चारित्र्य शौटीर्य्य (भारत मित्र, 26 फरवरी 1910 ई०) 110
उन्नति (भारत मित्र, 2 अप्रैल 1910 ई०) 114
सत्यदेव की पूजा (भारतमित्र, 9 अप्रैल 1910 ई०) 118
लक्ष्मी (भारत मित्र, 16 अप्रैल 1910 ई०) 121
कार्य सिद्धि (अभ्युदय, 3 जुलाई 1910 ई०) 125
शील सामर्थ्य (भारतमित्र, 27 अगस्त तथा 3 सितम्बर 1910 ई०) 128
दरिद्रता (भारत मित्र, 30 अप्रैल, 1910 ई०) 133
सफलता (भारत मित्र, 10 सितम्बर तथा 17 सितम्बर 1910 ई०) 136
उन्नति (भारत मित्र, 2 अप्रैल 1911 ई०) 142
बालकों की शिक्षा (अभ्युदय, 22 जनवरी 1911 ई०) 146
उन्नति के तत्व (भारतमित्र, 14 जनवरी 1911 ई०) 149
त्यौहार (मारवाड़ी, 4 अक्टूबर 1911 ई०) 153
मध्य प्रदेश में हिन्दी की अवस्था (अ० भा० हि० सा० सम्मेलन 1911 ई०) 155
रामनवमीं (मारवाड़ी, 1 अप्रैल 1914 ई०) 184
कर्म और उसका फल (कान्य कुब्ज हितकारी, 21 मार्च 1914 ई०) 187
हिन्दी कविता किस ढंग की हो (पंचम हि० सा० स० लखनऊ 1914 ई०) 190
होलिकोत्सव (मारवाड़ी, 11 मार्च 1914 ई०) 215

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय (व्यंकटेश्वर समाचार, 16 मई 1919 ई०) 215
हिन्दी और उसके विभक्ति प्रत्यय (हितकारिणी, अप्रैल 1920 ई०) 220
तुलसीकृत रामायण और उसके क्षेपक (श्री बेंकटेश्वर समाचार, 13 अक्टूबर 1922 ई०) 223
हिन्दी विभक्ति-प्रत्यय (श्री बेंकटेश्वर समाचार 9 जून 1922 ई०) 230
सनातन धर्म (मासिक भृगु, 1923 ई०) 233
श्री तुलसीकृत रामायण (हितकारिणी, फरवरी 1926 ई०) 237
मृत राष्ट्र की गोरक्षा (हितकारिणी, मई 1926 ई०) 249
मध्यप्रदेश में गोरक्षकों का घाटा (गोधन, 1926 ई०) 256
वैश्यों का सनातन धर्म (कल्याण, 1927 ई०) 260
मध्यप्रदेश के नेतागण और गोपरिपालन (गोधन, 1927 ई०) 263
स्वधर्म निष्ठा(श्री बेंकटेश्वर समाचार 24 जनवरी 1930 ई०) 260
समय पर चूकना (श्री बेंकटेश्वर समाचार 14 अगस्त 1931 ई०) 272
गोवंश से लाभ (श्री बेंकटेश्वर समाचार 29 मई 1931 ई०) 275
कर्म की प्रधानता (श्री बेंकटेश्वर समाचार 1931 ई०) 280
सात्विक दान (श्री बेंकटेश्वर समाचार, 18 सितम्बर 1931 ई०) 283
राजाश्रय और भारतोन्नति (श्री बेंकटेश्वर समाचार, 11 सितम्बर 1931 ई०) 286
अमेरिका के गोपति और भारत के गोभक्त (हिन्दी बंगवासी, 16 नवम्बर 1931 ई०) 289
समझदारों की बातें और उनके काम (श्री बेंकटेश्वर समाचार 1931 ई०) 293
अहिंसावाद की असफलता, (अंतिम लेख श्री बेंकटेश्वर समाचार, 20 नवम्बर 1931 ई०) 299

कविताएं

मेघदूत सार (1901) 303
नर्मदा विहार (1903) 305
ईश-वन्दना (1905) 308
जीवन की सफलता (1909) 310
रामचन्द्र जी का उपदेश (1909) 312
श्री हरि (1910) 315
सीताजी का उपदेश (1910) 316
किसान (1910) 319
विवेकी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की सेवा में निवेदन (1910) 322
ज्ञान की महिमा (1916) 327
कृषि उद्धार (1923) 330
एक अनुवाद (1904) 331

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र सं 1 : पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री : अन्तिम चित्र 1931 ई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

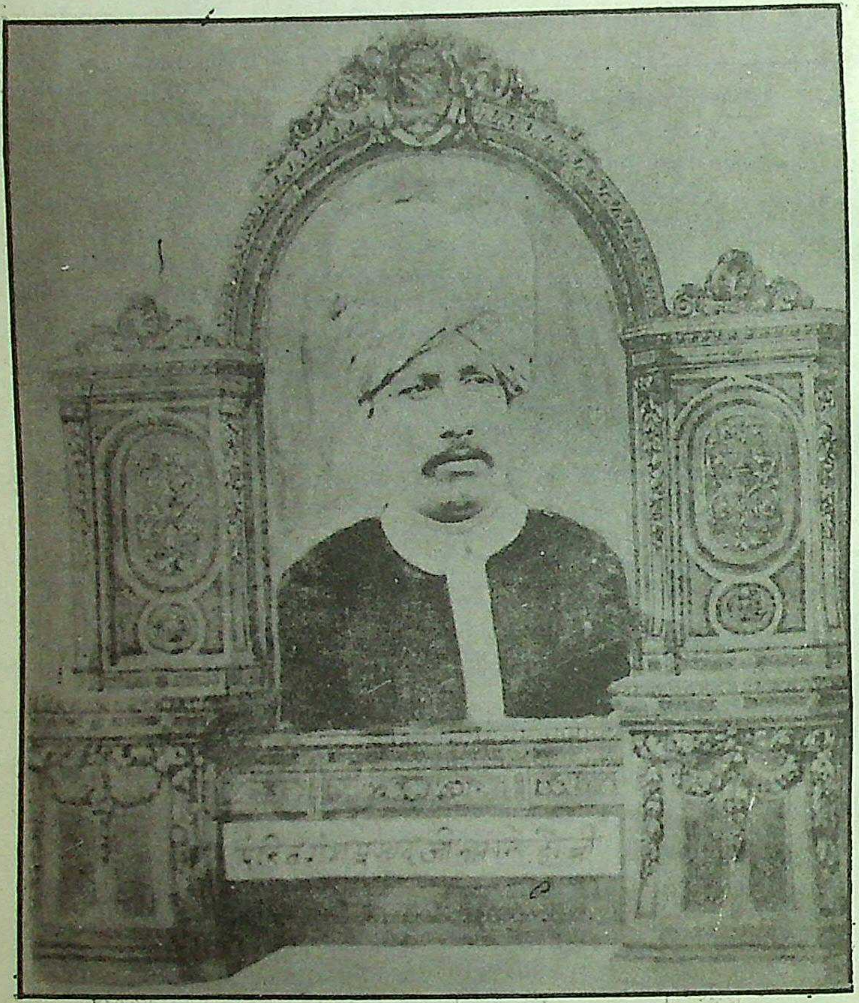

चित्र सं 2 : पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री 1898 का चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

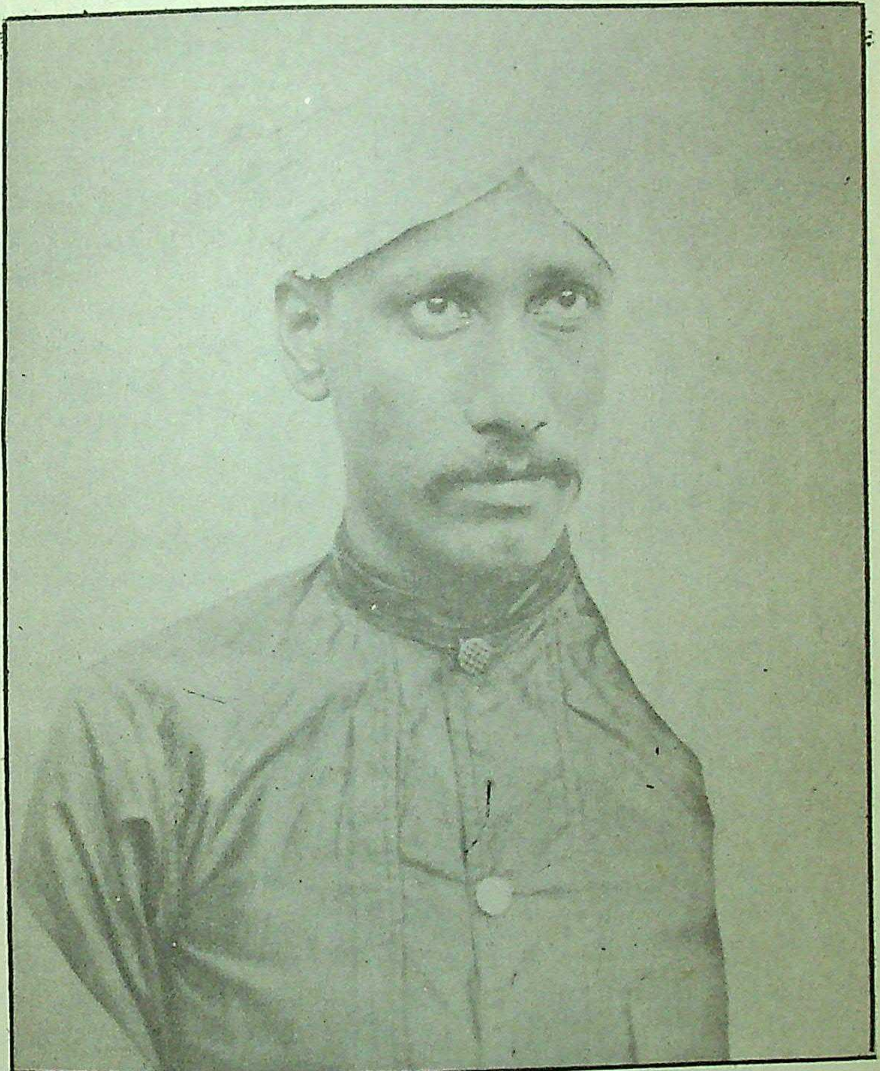

चित्र सं 3 : पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री युवावस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

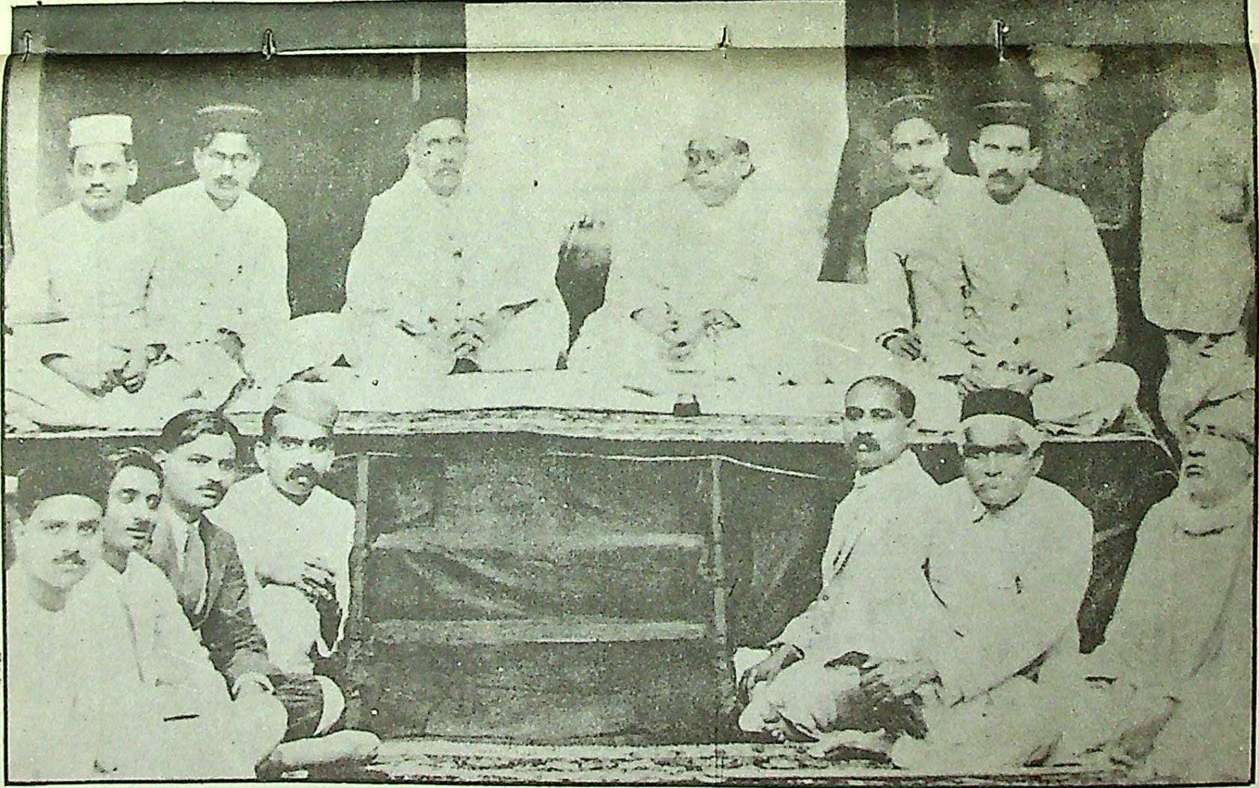

चित्र सं 4 : राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर, जबलपुर का वार्षिक अधिवेशन 1926 ई.
चित्र में मंच पर—बाएं से पं. द्वारका प्रसाद मिश्र **बीच में तीसरे** पं. कामता प्रसाद गुप्त, **चौथे** बाबू शिवप्रसाद गुप्त काशी।
नीचे बाएँ से : श्री मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, श्री केशव पाठक, श्री श्यामाकान्त पाठक, सेठ गोविन्ददास **एवं दाहिनी ओर से दूसरे** पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी **एवं तीसरे** पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र सं 5 : पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री 1926 ई. में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

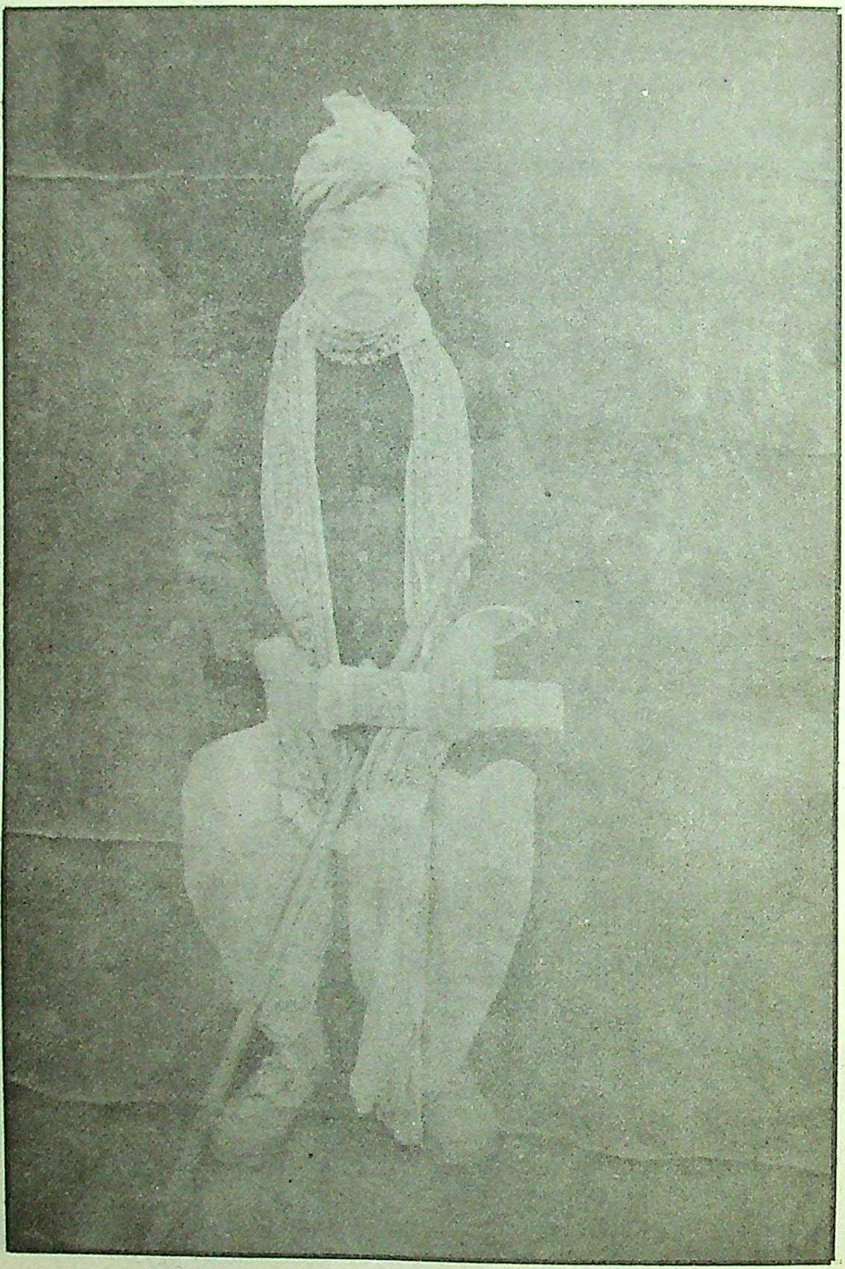

चित्र सं 6 : पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—एक पुराना चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र सं. 7 : श्रेष्ठ गो साहित्य सृजन के लिए बम्बई के गोरक्षा मंडल द्वारा सन् 1931 ई. में पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री को प्रदत्त रजत पदक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

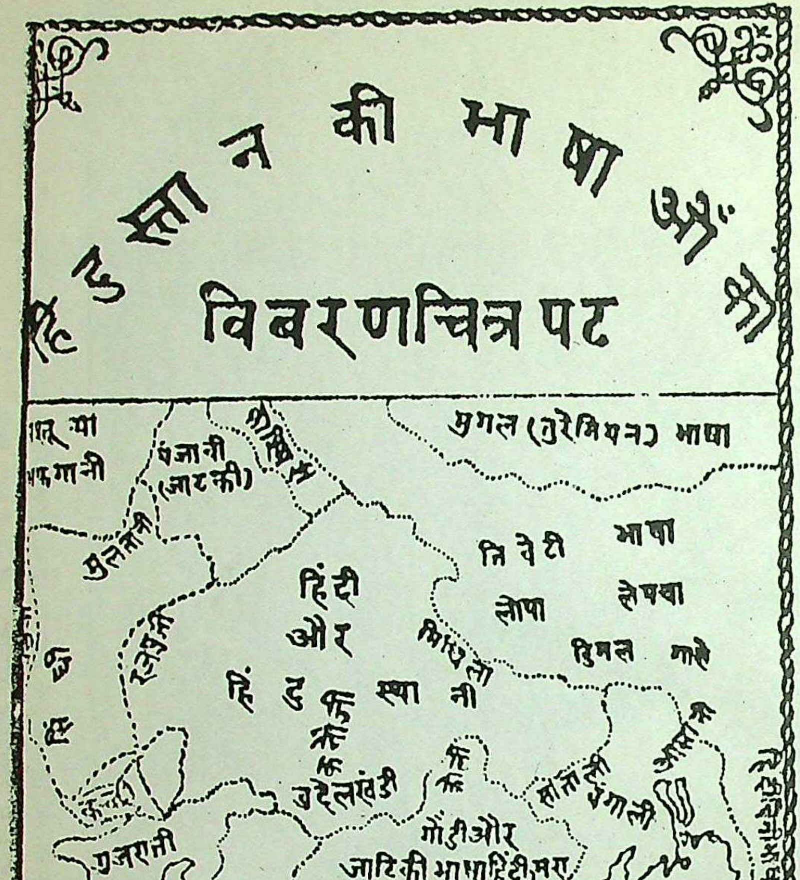

चित्र सं. 8 : हिन्दुस्तान की भाषाओं का विवरण चित्रपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥श्री:॥ पो. आ. बैकुंठपुर
वाया सिंदराबाद
बी. एन. आर
२-१-१३

श्रीयुत बाबू श्यामसुंदर दासजी,

आपके ११-११-१२ के पत्र में लिखे हुए आदेशानुसार आज हम आपको व्याख्यान और सिंहदेव चरित्र आपकी सेवा में भेजते हैं। यह व्याख्यान सन १८९८ में लिखा गया था।

जीवन चरित्र को हमने बहुत संक्षिप्त में लिखा है। इसमें केवल घटनाओं का नामोल्लेख कर दिया गया है। लेख होती और आलोचनादि दृष्टि की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका है।

~~हमारे जीवन चरित्र से...~~

हमारे जीवन चरित्र से कोई शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती। खींचतान कर यह शिक्षा ली जाय तो अवश्य मिल सकती है कि बिना सुशिक्षा का प्रबंध किये, होनहार लड़के भी अच्छे विद्वान नहीं हो सकते। और लगातार मार्ग का सेवन करते रहने से हम जैसे अल्पज्ञों से भी विद्वज्जन देश सेवा का थोड़ा बहुत काम ले सकते हैं।

हमारे इस लेख को पढ़ने के पश्चात आपकी यह भावना हो जाय कि हमारे चरित्र को अपनी पुस्तक में स्थान देने से उसकी योग्यता नहीं घटेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो आप इस संबंध में आते हैं कि आप हैं, उसे आप उनको लिखना दें।

पहुँच की सूचना देने की कृपा कीजिएगा।

भवदीय

गंगाप्रसाद

आर्य प्रेमी

काशी.

८. १. १२.

श्रीमान्,

आपका भेजा हुआ चित्र और साहित्य प्राप्त हुआ जिसके लिए अनेक धन्यवाद हैं। हमको दृष्टि नहीं है।

भवदीय —

[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों के अनंतर उक्त बाबू साहब का स्वास्थ्य बीकानेर में खराब हो गया अतः आपको छुट्टी लेकर जबलपुर जाना पड़ा। स्वास्थ्य लाभ करने पर आप कोनिगुदिक स्मारक [illegible] हो गये। तो [illegible] रह गये। सन १९१९ में

समालोचना नामक लेख का अनुवाद करने के पश्चात् हमने पंडित वामन पंत के राष्ट्रभाषा नामक लेख को हिंदी में अनुवादित कर प्रकाशित किया। इस लेख में उक्त लेखक ने पुष्ट प्रमाणों और अखंडनीय युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारत की प्रचलित भाषाओं में से भारत की राष्ट्रभाषा का पद पाने की योग्यता और राष्ट्रलिपि [illegible] होने की अधिकारिणी है तो वह एक मात्र हिंदी ही है। इसका मूल लेख केवल श्रीयुत बाबू श्यामसुंदर दास जी की कृपा से सन [illegible] श्री नागरी प्रचारिणी पत्रिका की ~~[illegible]~~ भाग में प्रकाशित कराया गया था। इस लेख ने हिंदी भाषा भाषी लोगों के हृदय में हिंदी विषयक जिस पूज्य भाव को उत्पन्न कर उसकी वृद्धि की उससे हिंदी का विशेष लाभ [illegible] हुआ है। इसी लेख के प्रकाशित [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए हमें अवश्य होता है, कि स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दासजी गुप्त, बाबू रामकृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिक-प्रसाद जी, श्रीयुत पंडित श्रीधर पाठक, श्रीयुत पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी और श्रीयुत पंडित गणपति जानकी जी चौबे आदि सज्जनों ने हमारी इन पुस्तकों को बहुत आदर की दृष्टि से स्वीकार किया है।

बाल्यावस्था में जब हम हाईस्कूल के क्लास पढ़ते थे तब हमारे चित्त पर यह बात अंकित हो गई थी कि हाईस्कूल के बालकों की भाषा में लिखने और पढ़ाने की धार्मिक या लोगों की प्रणाली हिन्दी भाषा की, लोगों की प्रणाली की अपेक्षा विद्यार्थियों को अधिक लाभदायक है। यह भावना हमारे चित्त में इसी समय इतनी प्रबल हो गई थी कि, अवसर मिलने पर इस प्रणाली को ~~प्रचारक~~ हिंदी में प्रचलित करने का हम यत्न करेंगे। इसका सन् १८०८ में आरम्भ हुई, पं. लामनरायन(?) इस दोनों पुस्तक को प्रारम्भ में ... देता हूं।

[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानक गद्य के शैलीकार पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

वर्तमान शती के आरम्भिक दशाब्द को हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का द्वितीय नवजागरण काल माना जाता है। इस द्वितीय नवोत्थान युग में ही हिन्दी पद्य शैली और गद्य के विकास का पथ प्रशस्त हुआ। उत्तर भारतेन्दु-युग के रचनाकारों की सर्जनात्मकता विधागत वैविध्य के होते हुए भाषा और भाव-शिल्प में नवीन और प्राचीन शैली के सम्यक् समन्वय को लेकर चली है। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी कविता के पुराने रूपगत आधारों के आग्रही और समसामयिक भाषा के साथ व्रजभाषा शैली के पोषक थे। गद्य की दिशा में भी उनका आग्रह यद्यपि खड़ी बोली गद्य की ओर था तथापि गद्यात्मक अभिव्यक्ति को व्यवस्थित और मानक रूप प्राप्त नहीं हो सका था। यह कार्य द्वितीय नवोत्थान काल के आरम्भिक सर्जकों ने किया और इस सर्जक मण्डल के सर्वस्वीकृत अधिनायक थे पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी। द्विवेदीजी के समसामायिक सहयोगियों में मध्यप्रदेशीय रचनाकारों में पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का अन्यतम स्थान है। इस धारा के अन्य सर्जकों में सर्वश्री पण्डित माधवराव सप्रे, पण्डित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा पण्डित गणपति जानकीराम दुबे आदि के नाम विशेष रूप से परिगणनीय हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भिक विकास का यह काल अपनी परम्परा-पोषित आदर्शवादी भावधारा का प्रतिनिधि युग है। आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था और पश्चिमीय साहित्य की ज्ञानराशि से लाभान्वित होकर हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण किन्तु व्यवस्थित प्रगति करना ही द्विवेदी-मंडल के लेखकों का प्रमुख लक्ष्य था। यही कारण है कि उस युग के सभी रचनाकारों की विचार-वृत्ति, भाव-धारा और रचना-शिल्प को एक साँचे में ढले टकसाली रूप में हम स्पष्टतः परिलक्षित कर पाते हैं।

गद्य के विधागत विविध रूपों का विकास ही इस नवोत्थान काल की सबसे बड़ी उपलब्धि है। द्विवेदी-मण्डल के मान्य और प्रतिष्ठित लेखक के रूप में पण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का साहित्यिक कृतित्व अपने वैशिष्ट्य के कारण ही महत्त्व का है। अग्निहोत्रीजी के साहित्योन्मेष के पीछे भी द्विवेदीजी की भाँति ही हिन्दी के गद्य को एक मानक रूप देने की अभिप्रेरणा ही थी। इस आरम्भिक नवोत्थान-काल में लगभग सभी प्रमुख रचनाकार संस्कृत, अंग्रेजी अथवा मराठी, बंगाली आदि की साहित्य-समृद्धि से अभिप्रेरित होकर हिन्दी गद्य को भी वही वैविध्ययुक्त रूप देकर समृद्ध करने की दिशा में जीवट के साथ सक्रिय थे। यही कारण है कि आरम्भिक युग के अधिकांश रचनाकारों ने बहुलांश में विभिन्न भाषाओं की श्रेष्ठ गद्य-पद्य कृतियों के स्तरीय अनुवाद प्रस्तुत कर साहित्य की समृद्धि का संकल्प सार्थक किया।

पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के विशद रचना-समूह पर विहंगम दृष्टिपात करने से उस युग की अपेक्षा और भावधारा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। अग्निहोत्रीजी का साहित्यिक कृतित्व-काल 1894 से 1931 तक है। बाबू जगन्नाथ-प्रसाद 'भानु' के सम्पर्क में वे उस समय आये जब भानुजी के प्रसिद्ध पिंगल-ग्रन्थ छन्द-प्रभाकर की रचना की तैयारी चल रही थी और इस बहाने उनके युवा मन में बसा साहित्यानुरागी जाग उठा। छन्द-प्रभाकर के मुद्रण के सिलसिले में सन् 1894 में हुए उनके काशी-प्रवास में बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री और बाबू श्यामसुन्दरदास के मैत्री-संबंध ने उन्हें मराठी के अनुवाद की ओर अभिप्रेरित किया। काशी से लौटने पर उन्होंने मराठी के 'मालती-माधव' नामक उपन्यास का 'प्रणयी माधव' नाम से अनुवाद किया। वस्तुतः मराठी में लिखित उक्त उपन्यास संस्कृत के भवभूति-कृत नाटक 'मालती-माधव' के आधार पर रचित था। इस अनुवाद की रचना का मुख्य हेतु तत्कालीन ऐयारी और तिलिस्म-प्रधान बनारसी शैली के उपन्यासों से भिन्न शैली की रचना प्रस्तुत करना ही था। इस उपन्यास की रचना का हेतु संकेतित करते हुए उन्होंने स्वयं कहा है, "इसमें यद्यपि ऐयारों की ऐयारी तथा तिलिस्म की ऊटपटाँग लीला का वर्णन नहीं है"······"कुलीन एवं सद्धर्म-परायण कन्या का पावन आचरण किस प्रकार का होता है, यह जानने की जिसे इच्छा हो, वह इस ग्रन्थ की नायिका मालती के विशुद्धाचरण को मनोनिवेशपूर्वक पढ़े।" वास्तव में भवभूति के नाटक की करुण रसात्मकता को औपन्यासिक स्वरूप देकर हिन्दी के तत्कालीन औपन्यासिक प्रवाह को नया मोड़ देने का अभिप्राय ही इस रचना का उद्देश्य है।

इसके पश्चात् उन्होंने हिन्दी में आधुनिक समीक्षा-सिद्धान्तों की ओर दृष्टि डाली और इसी उद्देश्य से अभिप्रेरित होकर 1896 में पं० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर के 'समालोचना' नामक निबन्ध का हिन्दी में अनुवाद किया। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के प्रथमांक में उक्त लेख प्रकाशित हुआ जो बाद में पृथक् रूप से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ। इस रचना के द्वारा वे आधुनिक समीक्षा-पद्धति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भिक सूत्रपातकर्त्ता गिने गये । हिन्दी आलोचना का स्वरूप अब तक पुस्तक-परिचय अथवा रीतियुगीन सिद्धान्तों तक ही सीमित था, लेकिन पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति का समावेश कर चलनेवाली समालोचना-शैली का श्रीगणेश इसी कृति से हुआ। इसी क्रम में उन्होंने श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की निबन्धमाला के मराठी निबन्धों का हिन्दी अनुवाद 'निबन्धमालादर्श' नाम से किया और पश्चात् संस्कृत के पाँच कवियों, यथा कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, सुबन्धु और दण्डी पर लिखे निबन्धों का अनुवाद 'संस्कृत कवि-पंचक' (1900 में प्रकाशित) के नाम से किया। श्री केशव वामन पेठे-कृत राष्ट्र-भाषा और इसी शृंखला में 'इतिहास' एवं डा० जॉनसन की जीवनी नामक उनकी अनुवाद-कृतियाँ हैं। सम्यक् दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि इन कृतियों के माध्यम से हिन्दी के गम्भीर लेखन-पठन के क्षेत्र में स्तरीय विचार और शैलीविधान का पुरस्सरण करना ही उनका अभीष्ट लक्ष्य था।

गद्य के विधात्मक विकास के साथ ही सम-सामयिक कविता-धारा को सुनियोजित करने की दिशा में भी वे तत्पर थे। 'मेघदूत' का अनुवाद उनकी इसी काल की रचना है। उनकी स्फुट काव्य-रचनाओं में भी द्विवेदी-मण्डल की इतिवृत्तात्मकता के प्रभाव की झलक मिलती है। उनके काव्य-विषय भी तत्कालीन अतिशय आदर्शवादिता से उत्प्रेरित हैं। काव्य-रचना के क्षेत्र में उनका अभीष्ट लौकिक सौन्दर्यानुभूति से हटकर जागरण युग के आदर्शमय नवस्फुरण तक सीमित था। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सन् 1909 में सम्पादित 'कविता-कलाप' और सन् 1918 में पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'कविता कुसुम माला' नामक युगीन काव्य-संकलनों में उनकी काव्य-रचनाएँ संकलित हैं, जिनसे द्विवेदी-मण्डल के अन्य रचनाकारों की भाँति ही विषयगत रूढ़ता और सुनियोजित काव्य-पद्धति के दर्शन होते हैं। 'सरस्वती' में सन् 1901 में प्रकाशित उनकी 'ईश-वन्दना' नामक कविता के प्रस्तुत अंश से उनकी देशोन्नति-प्रधान वृत्ति परिलक्षित की जा सकती है :

देशानुराग अरु वान्धव - प्रेम मेरे,
हृद्देश से नहिं हटें विधि केहु प्रेरे।
देशोपकारक लखाहिं विधान जेते,
राजें सदैव मन मानस माँहि तेते ।
वाणिज्य औ कृषि बढ़ावनहार बातें,
जो-जो जहाँ मिलि सकें उनको वहाँ ते ।
लै लै प्रचार करिये कहँ मोहि दीजै,
सामर्थ्य, नाथ ! विनती यह कान कीजै ।

इसी भाँति उनकी अन्य कविताओं के विषय आदर्श सन्देश के वाहक हैं। चाहे वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रामचन्द्रजी का उपदेश', 'सीताजी का उपदेश' या 'किसान' शीर्षक कविताएँ हों या 'नर्मदा-विहार' हो, सभी में उपदेशात्मकता और सामाजिक हितचर्चा का ही भाव प्रमुख है। आज भले ही वह रचना-शैली सीधी-सादी तुकबन्दी और पण्डिताऊ पद्धतिवाली लगती हो, किन्तु उनके सृजन-काल में रचनाकार का वही एकमेव अभीष्ट था। द्विवेदी-मण्डल के सभी रचनाकारों की कविताएँ लगभग एक ही शैली और परिवेश को अपनाकर चली हैं। सृजनात्मक आवेग और लालित्य का संवेगात्मक प्रभाव इन रचनाओं में भले ही कम हो, किन्तु यह निश्चित है कि उनमें युगानुभूति और जागरण की भावना के बीज बिन्दु विद्यमान थे तथा शृंगारिक रस-वर्णन अथवा छन्द-पिंगल के दायरे से निकलकर सीधी-सरल भाषा में वे पाठक के हृदय को देशानुराग की ओर अभिप्रेरित करना चाहते थे।

हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का विकास भी इसी युग की विशेषता है। आरम्भिक उत्थान काल में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा लार्ड बेकन के अंग्रेजी निबन्धों का अनुवाद 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से हुआ। अग्निहोत्री जी ने विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की निबन्धमाला का 'निबन्धमालादर्श' नाम से अनुबाद किया। स्तरीय निबन्ध-शैली की दिशा में इन दोनों अनुवाद-कृतियों को मार्गदर्शक मानते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उभय विद्वानों के सम्बन्ध में मत व्यक्त किया था, "उस समय यह आशा हुई थी कि इन दोनों अनुवादों के पीछे ये दोनों महाशय शायद उसी प्रकार के मौलिक निबन्ध लिखने में हाथ लगायें, पर ऐसा न हुआ। कहना न होगा कि बहुत वर्षों बाद कदाचित् चिन्तामणि में संग्रहीन शुक्लजी के निबन्धों में ही वह रूप आभासित हो सका, किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि द्विवेदीजी अथवा अग्निहोत्रीजी के लेखों-निबन्धों में विधागत तत्त्व विद्यमान नही थे। अग्निहोत्रीजी के बहुसंख्यक स्फुट लेखों में सामयिक जागृति और तत्कालीन सामाजिकता का वही स्वर आदि से अन्त तक विद्यमान है कि जिससे उनकी भावधारा और गद्य-शैली के निर्माण की भावना प्रकट होती है।

अग्निहोत्रीजी की भाषा तत्सम शब्दावली के प्राधान्य को लेकर चली है। उन्होंने सामान्य बोलचाल के मुहावरों और शब्द-रूपों का भी प्रयोग करने में कार्पण्य नहीं बरता, किन्तु अवसर के अनुकूल तत्सम शब्दों को भी सहज प्रवाही रूप में प्रयुक्त किया है। देशकाल के प्रभावानुसार उनकी भाषा में उर्दू शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है (क्योंकि मध्यप्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में उर्दू आम जनता की भाषा भी नहीं थी।) किन्तु अंग्रेजी के शब्दों का यथानुरूप, यथावसर प्रयोग उन्होंने अवश्य किया है। उस युग के रचनाकारों के सम्मुख हिन्दी के गद्य को मानक रूप देने का लक्ष्य ही प्रधान था इसीलिए वे मुक्तभाव से खड़ी बोली गद्य में व्याकरण के नियमों की कसावट के साथ सामान्य पठित समाज में सहज ही प्रयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। शैली की दृष्टि से अग्निहोत्रीजी के लेख और विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयक लघु पुस्तिकाएँ, जिन्हें हम संक्षिप्त प्रबन्ध ही मानें, निश्चय ही अभिव्यक्ति की गम्भीरता के साथ संलापात्मकता से युक्त हैं।

यही संलापात्मकता निबन्ध के तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। अभीष्ट विषय के प्रतिपादन में उन्होंने मण्डनात्मक प्रणाली अपनायी है और नातिदीर्घता भी उनमें है। इस दृष्टि से भले ही आचार्य शुक्लजी की अपेक्षा के अनुसार उनके निबन्ध-लेखों में उत्कृष्ट शास्त्रीय शैली (क्लासिक स्टाइल) न मिल सके, किन्तु यह सुनिश्चित है कि वे जिस निबन्ध-शैली का निर्माण कर रहे थे, वह आज के निबन्ध-सौध की नींव का पत्थर है। सुभाषित अथना नीतिवाक्य से आरम्भ होनेवाले उनके सभी लेखों-निबन्धों में वार्ता-तत्त्व प्रवाहमयता के साथ विद्यमान है और इस भाँति अपने कथ्य को प्रस्तुत करनेवाली सहज-बोधगम्य शैली के वे धनी थे। वही शैली उस युग के प्रतिनिधि रचनाकारों की समादृत शैली भी है।

रस-सिद्धान्तों का सामान्य विद्यार्थियों को परिचय हो सके और शृंगार-प्रधान उदाहरणों से रस और उसके मूलभावों को सहज ही समझाया जा सके, इस उद्देश्य से उन्होंने 'रस-वाटिका' (1903 में प्रकाशित) की रचना की। तद्सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा है—"इसमें हमने समस्त लक्षण गद्य में लिखे। उनके उदाहरण प्रायः ऐसे लिखे हैं कि, जिनके विद्यार्थियों को पढ़ाने में पण्डित जी को तनिक भी संकोच न होने पावे।" अतः स्पष्ट है कि उनकी रचना-धर्मिता की पृष्ठभूमि में सामाजिक शिष्टाचार और नीतिमयता की रक्षा की भावना प्रमुख थी।

जीवन के उत्तरार्ध में तो वे साहित्य के शास्त्रीय पक्ष से हटकर समाज-सुधार और कृषि-गोपालन जैसे विषयों पर एकाग्र हो गये थे। 'कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्थाओं का वर्णन', 'संसार सुख-साधन' आदि कृतियाँ उनकी इसी दृष्टि से लिखी रचनाएँ हैं। प्रशासनिक सेवा में रहने के कारण उन्हें कृषि और गोपरिपालन की दुरवस्था का आभास भली-भाँति हो चुका था, अतः जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने मिशनरी रूप में कृषि-गोपालन के पक्ष में प्रचारात्मक साहित्य तैयार किया। 'किसानों की काम-धेनु', 'आपकी आँखें कब खुलेंगी', 'गौओं का पालन और उनसे लाभ', 'भारत की नागरिक जनता और गोपालन', 'भारत की किसानों की उपज और उसकी कमी' आदि अनेक लघु पुस्तिकाओं के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित बहुसंख्यक स्फुट लेख हैं जिनसे उनकी भावधारा और लक्ष्य-प्रचार की जानकारी मिलती है। गोपरिपालन को धार्मिक अन्ध श्रद्धा के रूप में वे अनुचित मानते थे और उनका विचार यही था कि विशुद्ध सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवहारिक स्तर पर इसे अपनाया जाना चाहिए, मात्र कर्मकाण्ड के रूप में नहीं, क्योंकि उससे लाभ के बदले हानि ही सम्भावित है। वे कृषि-गोपालन के बिना स्वराज्य की मुहिम की कल्पना नहीं करते थे। अपने अनेक लेखों में उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा ही इस बात पर बल दिया है कि जब तक सच्चे अर्थों में गो-परिपालन नहीं किया जाता, तब तक भारत में स्वराज्य का चिरवांछित फल जनता को नहीं मिल सकेगा।

अग्निहोत्रीजी का विशद पत्राचार और उनकी सृजनशीलता विगत युग के सुचिन्तित विचारक और समाज के रचनात्मक निर्माणकर्ता व्यक्तित्व की परिचायक है। अतः भाषा, भाव और शैली दृष्टि से वे मानक हिन्दी गद्य के निर्माताओं की अग्रिम पंक्ति के रचनाधर्मियों में निस्सन्देह प्रतिष्ठित स्थान के भागी हैं।

अग्निहोत्रीजी और गो-परिपालन

कृषि-गोसंवर्धन को लेकर उनकी 'किसानों की कामधेनु', 'किसानों के बालकों की शिक्षा', 'भारत की नागरिक जनता और गोपालन', 'भारत की किसानी की उपज एवं उसकी कमी', 'आपकी आँखें कब खुलेंगी', सटीक सप्तश्लोकी गीता, संसार-सुख-साधन आदि लघु-पुस्तिकाओं के अतिरिक्त लगभग पाँच सौ से अधिक लेख-निबंध-टिप्पणियों की रचना उन्होंने की। वे धुन के पक्के और मिशनरी जीवट के व्यक्ति थे। जीवन के उत्तरार्ध में जब वे इस प्रकार के साहित्य की रचना और प्रचार-कार्य में संलग्न थे तब पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों से रचनाओं का अनुरोध किये जाने पर एक छपा-छपाया कार्ड वे उत्तर में भेज देते थे—"यहाँ पर कृषि-गोपालन पर ही साहित्य लिखा जाता है।" उन्होंने न केवल लेखन-कार्य से ही अपने मिशन की पूर्ति की वरन् स्थान-स्थान पर जाकर तद्सम्बन्धी व्याख्यान भी दिये। इतना ही नहीं, मृत्यु के समय भी उन्होंने यही इच्छा व्यक्त की कि गो-परिपालन सम्बन्धी उनकी पुस्तिकाओं की दस हजार प्रतियाँ निज व्यय से छपवाकर बिना मूल्य किसानों और ग्रामीणों में वितरित करा दी जावें।

अपने विषय के वे निष्णात विद्वान् थे किन्तु तद्सम्बन्धी स्वाध्याय के लिए कृषि-गोपालन सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें विदेशों से मँगाकर पढ़ना उनकी दिनचर्या का अंग था। इतना ही नहीं, समकालीन लेखकों, विद्वानों, सार्वजनिक नेताओं, जिनमें गांधीजी, राजेन्द्र बाबू और जमनालाल बजाज जैसे लोक-प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा देश के विभिन्न भागों के नरेशों-श्रीमन्तों से भी उनका पत्र-व्यवहार था। सदा ही उसके अभीष्ट कार्य को बढ़ाने की सद्प्रेरणा और प्रचार पर ही वैचारिक आदान-प्रदान हुआ है। उनके जैसा व्यवस्थित पत्राचार हिन्दी के अन्य किसी लेखक का कदाचित् ही रहा हो तथा जो अपने आप में एक युग-विशेष की स्थिति का परिचय प्रस्तुत करता है।

अपने प्रतिपाद्य विषयों और विचारों में अग्निहोत्रीजी उदारवादी दृष्टिकोण अपनाकर चलनेवाले विचारक थे। गो-परिपालन के प्रश्न पर उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था। वे इस विषय को विशुद्ध आर्थिक और व्यावहारिक स्तर पर स्वीकार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते थे। केवल धार्मिक भावना के वशीभूत होकर गोवध-बन्दी के प्रश्न को उठाना उनकी दृष्टि में कारगर हल नहीं था। उन्होंने कहा भी था—"गो-भक्तों की अन्धी गोभक्ति के कारण ही भारत में गोवध बढ़ता जाता है।" इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा—"भारत में गोवध की मात्रा को बढ़ती हुई देखकर यहाँ के गोभक्तों ने गोरक्षक सभाएँ पिंजरापोल खोलकर गोवध बन्द करने का यत्न किया है। उससे ताड़-भर ऊँची गोवध की मात्रा में तिलभर रुकावट अवश्य हुई है, पर भारत का हित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। इस कम रुकावट का कारण यह है कि आज तक गोवध बन्द करने के लिए जितने उद्योग और प्रयत्न किये गये हैं वे सब धर्ममूलक थे और हैं। संसार में धर्म को प्रेमभाव के साथ माननेवालों की संख्या बहुत कम रहती है। धर्म को धक्के लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवालों की ही संख्या अधिक रहती है।...पर्याप्त गोरक्षा वही है जिससे भारत में दुधारू गौओं की संख्या करोड़ों के रूप में बढ़ाई जावे।" अतः स्पष्ट है कि समस्या के प्रति उनकी पहल रचनात्मक ही थी, मात्र निषेधात्मक नहीं।

यद्यपि उनके समूचे गो-साहित्य का बहुलांश प्रचार-भावना से युक्त है तथापि उसकी मूल भावना यही है कि देशवासी गोसेवा के आर्थिक पक्ष को ग्रहण कर अपने हित-साधन की दिशा में, स्वावलम्बन की दिशा में, आगे बढ़ें। ग्रामों के क्रमशः विनष्टीकरण की जो प्रक्रिया आज तेजी से चल रही है, उसकी भविष्यवाणी उन्होंने आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व ही कर दी थी। इसलिए वे सदैव गोवंश के नस्ल-सुधार और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के सन्तुलन को बनाए रखने के पक्षधर रहे।

अग्निहोत्रीजी द्वारा रचित गोपरिपालन-सम्बन्धी साहित्य मात्र पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय पिष्टपेषण को लेकर नहीं चला है। शहरों-गाँवों के अर्धशिक्षित-अशिक्षित जनसामान्य तक उनकी बात पहुँच सके, इसका ध्यान रखते हुए उन्होंने उक्त रचनाओं की भाषा-शैली और विषय-प्रतिपादन प्रणाली में अत्यन्त सरल और बोधगम्य पद्धति अपनायी है। उनकी अनेक कृतियाँ इतनी प्रचारित और प्रशंसित हुईं कि हिन्दी से मराठी और गुजराती में भी अनूदित हुईं। सन् 1931 में बम्बई की सुप्रसिद्ध संस्था गोरक्षा मण्डल द्वारा उन्हें उत्कृष्ट गोसाहित्य-सृजन के निमित्त रजत पदक प्रदान कर पुरस्कृत किया गया।

भले ही आज हिन्दी में पर्याप्त वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध है और उच्चतम शैक्षणिक व्यवस्था के विकास के साथ-साथ आगे भी अभिवृद्ध होगा, किन्तु कालक्रम के सन्दर्भ में यदि उनकी इन कृतियों पर दृष्टिपात किया जावे तो वे अपने विषय की परिपूर्णता के साथ ही विचार-प्रवाह का आनन्द देनेवाली सुन्दर और बेजोड़ कृतियाँ हैं। इसका अनुमोदन स्व० पण्डित गंगाविष्णु पाण्डेय 'विष्णु' की सन् 1930 में रचित निम्नलिखित विनोदोक्ति से स्वयं ही हो जाता है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गंगापरसादजी हैं पूरे गो-भक्त।
लिखते गोसाहित्य हैं कलम लिये हर वक्त।।
इन्हें है इसी बात का खब्त।
श्री गंगापरसादजी अग्निहोत्री को छोड़।
गो-साहित्य-प्रचार में श्रम करते जी-तोड़।
विषय के वे अपने बेजोड़।

अग्निहोत्रीजी के गोपरिपालन-विषयक साहित्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्राचीन ज्ञान के साथ नवीन ज्ञान के समन्वय से प्रगति के हामी थे। 1924 में ही उन्होंने कहा था—"राष्ट्र तभी उन्नत रह सकता है जब तक उसके लोग अपने प्राचीन साहित्य का आदर करते हुए उसकी समृद्धि द्वारा अपने ज्ञान का क्षेत्र बढ़ाते रहते हैं। हम भारतवासी न तो अपने प्राचीन साहित्य का ही आदर करते हैं और न उसकी वृद्धि ही करते हैं।" और इसीलिए वे कहते थे कि—"अभी जिस प्रकार गोपालन किया जाता है वह गोवध से भी बुरा है। अतः गोपालन की उचित शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता है।"

संक्षिप्त जीवन-परिचय

पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का जन्म श्रावण कृष्ण सप्तमी विक्रम सम्वत् 1927 (सन् 1870 ई०) को नागपुर के नयापुरा नामक मुहल्ले में हुआ तथा देहावसान कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा वि० संवत् 1988 (तदनुसार 10 नवम्बर 1931 ई०) को सायंकाल 5-45 पर दीक्षितपुरा, जबलपुर में हुआ था। जीवन के अन्तिम दिनों में वे हृदय-शूल से पीड़ित रहते थे। रुग्णावस्था में बातचीत करने की मनाही होने पर भी जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होने 'अहिंसावाद की असफलता' नामक लेख बोलकर लिपिवद्ध कराया था जिसमें गांधीजी के अहिंसा-विषयक सिद्धान्तों की मीमांसा करते हुए उसे कृषि-गोपालन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। अग्निहोत्रीजी के पिता पण्डित लक्ष्मणप्रसाद अग्निहोत्री उत्तरप्रदेश में रायबरेली जिलान्तर्गत चन्हत्तर ग्राम के निवासी थे और रेशमी कपड़े का व्यापार करते थे। व्यापार के सिलसिले में जब नागपुर आना-जाना प्रारम्भ हुआ, तो व्यापार के सम्हल जाने पर सात भाइयों के एक बड़े कुटुम्ब-सहित वहीं आकर बस गये।

भोंसलाशाही के काल में उनके पिता ने अच्छी धन-सम्पत्ति अर्जित की और नागपुर में ही बस गये; किन्तु पारिवारिक कलह और भाइयों की लापरवाही से व्यवसाय चौपट हो जाने पर पण्डित गंगाप्रसादजी को अपने पाँच भाइयों तथा तीन बहिनों का बोझ सम्हालने के लिए मैट्रिक से ही विद्याध्ययन छोड़कर नौकरी करनी पड़ी। सुप्रसिद्ध पिंगलशास्त्री श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' से मित्रता हुई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
029
96

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके सहयोग से वर्धा में 'नकल-नवीसी' मिल गयी। भानुजी का साहचर्य अग्निहोत्रीजी की प्रतिभा के विकास में बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। इस समय भानुजी अपने 'छन्द-प्रभाकर' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की तैयारी कर रहे थे, अतः अग्निहोत्रीजी ने इस ग्रन्थ के प्रणयन में उन्हें अमूल्य सहयोग प्रदान किया। 'छन्द-प्रभाकर' के मुद्रण-प्रकाशन का कार्य भी अग्निहोत्रीजी की देख-रेख में काशी के भारतजीवन यन्त्रालय में हुआ। काशी के प्रवासकाल में श्री रामकृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री और बाबू श्यामसुन्दरदास के परामर्शानुसार मराठी के विख्यात निबन्धकार पण्डित विष्णुशास्त्री चिपलूणकर-कृत निबन्धमाला का अनुवाद हिन्दी में 'निबन्धमालादर्श' नाम से सन् 1894 में प्रस्तुत किया। गम्भीर निबन्धों की रचना की दिशा में हिन्दी साहित्य में यह पहला प्रयत्न था।

मेधावी सदैव छोटे-छोटे-से अवसर का लाभ उठाते हैं और अपनी सामर्थ्य से सफलता के चरण-चिह्न अंकित करते चलते हैं। अग्निहोत्रीजी ने भी नकल-नवीसी से नौकरी आरम्भ की और आगे वे रेवेन्यू इन्स्पेक्टर, सैटलमेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट, नायब तहसीलदार आदि पदों पर उत्तरोत्तर शासकीय सेवा कार्य करते हुए छत्तीसगढ़ में कोरिया रियासत के दीवान बने तथा सन् 1910 में स्थानान्तरित होकर जबलपुर आ गये। यहाँ तहसीलदार के रूप में सेवा-कार्य करते हुए सन् 1918-20 में पाटन तहसीलान्तर्गत देवी-सुरैया स्टेट का प्रबन्ध मैनेजर कोर्ट आफ वार्ड्स के रूप में आपने कार्य-भार सँभाला। शासकीय सेवाओं से अवकाश मिलते ही आपकी सेवाएँ रायबहादुर सेठ बंशीलाल अबीरचन्द ने सागर जिले में अपनी स्टेट टड़ाकेसली टप्पे के प्रबन्धार्थ प्राप्त कीं। उक्त स्टेट का प्रबन्ध भी आपने बड़ी कुशलता और बुद्धिमत्ता के साथ किया। सागर में अपने प्रवास-काल में आपने सन् 1922 में 'सागर किसान सभा' की स्थापना की थी। इस सभा का उद्देश्य किसानों की समस्याओं और कृषि-उपज बढ़ाने के उपायों पर विचार करना था। इसी भाँति सागर गोवध-निवारक सभा की स्थापना में आपकी प्रेरणा ही मुख्य थी और उक्त सभा ने आपके द्वारा लिखित 'गौओं का पालन और उससे लाभ' नामक लघु-पुस्तिका (सन् 1924) में प्रकाशित भी की थी।

97481

अग्निहोत्रीजी का सम्बन्ध नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, भारत-धर्म-महामण्डल काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबलपुर, कवि-समाज जबलपुर, गोग्रास संस्था बम्बई, आदि से था और उनके क्रिया-कलापों में वे बराबर रुचि लेते थे। सन् 1917 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन के अवसर पर आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी समिति के वे संयोजक थे और देश भर के प्रकाशकों से उन्होंने उक्त प्रदर्शनी के निमित्त ग्रन्थ मंगवाए थे तथा अधिवेशन समाप्त हो जाने पर उनके अनुरोध पर प्रकाशकों ने उक्त ग्रन्थों को सम्मेलन-अधिवेशन की स्मृति को चिर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी रखने के उद्देश्य से स्थापित मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय को दान कर दिया था। उक्त सुन्दर ग्रन्थालय बलदेव बाग़ जबलपुर में रखा गया था और पण्डित बालमुकुन्द त्रिपाठी उसका संचालन करते थे। अग्निहोत्रीजी सरस्वती के मौन साधक के रूप में ही सदैव सक्रिय रहे। संस्थाओं की राजनीति और पदलोलुपता से उन्होंने अपने आपको सदैव दूर ही रखा।

सन् 1925 में शासकीय सेवाओं से अवकाश लेने पर उन्होंने केवल गो-परिपालन पर ही साहित्य तैयार करने का व्रत ले लिया था। उन्होंने 1923 में इसके प्रचारार्थ एक किसानी पत्र निकालने की भी योजना बनाई थी और अनेक जिलों के दौरे कर स्थान-स्थान पर गोरक्षा के महत्त्व और किसानों के विकास का महत्त्व प्रतिपादित किया था। उनका विश्वास था कि किसानों के विकास और प्रचुर मात्रा में खाद्य सामग्री के उत्पादन के बिना देश-दशा नहीं सुधर सकती और तब तक स्वराज्य का स्वप्न साकार नहीं हो सकता। वे कहते थे कि सच्चा स्वराज्य तो हमारी सम्पन्नता और आत्म-निर्भरता से ही मिल सकेगा।

अग्निहोत्रीजी का प्रथम विवाह सन् 1887 ई० में रामटेक निवासी श्री जियालाल पाण्डेय की पुत्री से हुआ। उस पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए जो बाल्यावस्था में ही काल-कवलित हो गये एवं सन् 1897 ई० में पत्नी का भी देहावसान हो गया। दूसरा विवाह परसोडी (तह० काटोल, जिला नागपुर) निवासी श्री लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी की पुत्री से सन् 1900 ई० में हुआ। द्वितीय पत्नी से भी एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई किन्तु वे भी अल्पायु में ही जाते रहे।

अग्निहोत्रीजी शान्तमना, संयमशील और उदारचित्त व्यक्ति थे। उन्होंने सफल सद्गृहस्थ के रूप में जीवन-यापन किया। पुत्र-कलत्रों के अभाव की पूर्ति आपने कुटुम्बीजनों तथा सगे-सम्बधियों को संपोषण-संरक्षण प्रदान कर की। उनके पत्नी-बन्धु पंडित बालमुकुन्द त्रिपाठी (इस लेखक के पूज्य पिता) का पालन-पोषण, शिक्षण और व्यक्तित्व-निर्माण उनकी ही छत्रछाया में सम्पन्न हुआ। इसी भाँति लघु भ्राता श्री चण्डीप्रसाद अग्निहोत्री के निधनोपरान्त एकमात्र भ्रातृज श्री मदनगोपाल अग्निहोत्री को भी उनका ही संरक्षण-सम्पोषण प्राप्त हुआ। वे अपने दूरस्थ कुटुम्बीजनों की भी निर्व्याज भाव से समुचित सहयोग-सहायता भी जीवन-पर्यन्त करते रहे।

इस तरह लौकिक और पारलौकिक सुख-स्वप्न को उन्होंने परहितकारी तथा परसहायक जीवन-वृत्ति में ही खोजने की सदैव चेष्टा की। अस्तु,

इस परिवर्तनशील जगत् में मृत्यु तो निश्चित है, किन्तु मान-सम्मान और पद-प्रतिष्ठा अर्जित करने पर भी सांसारिक-प्रवंचनाओं का परित्याग करनेवाले व्यक्तित्व बहुत बिरले होते हैं। कहना न होगा कि स्वर्गीय अग्निहोत्रीजी ऐसे ही महामनाओं में एक थे।

बालमुकुन्द त्रिपाठी मार्ग,
दीक्षितपुरा, जबलपुर (म० प्र०)

—हरिकृष्ण त्रिपाठी
25.7.89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० अग्निहोत्रीजी की कृतियाँ

क्र० नाम	रचना-काल	प्रकाशन-काल	प्रकाशक
1. प्रणयी माधव (उपन्यास)	1894 ई०	1901 ई०	श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई
2. समालोचना	1894 ई०	1895 ई०	नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, काशी
3. राष्ट्रभाषा	1895 ई०	1895 ई०	"
4. डॉ० जॉनसन का जीवन-चरित्र	1896 ई०	अप्रकाशित	
5. मेघदूत-सार (मेघदूत खण्डकाव्य की मराठी टीका 'काव्यार्थ-दीपिका' का हिन्दी-अनुवाद)	1896 ई०	अप्रकाशित	
6. निबन्ध-मालादर्श	1898 ई०	1899 ई०	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
7. संस्कृत कवि-पंचक	1898 ई०	1903 ई०	मि० जैन वैद्य, जयपुर
8. मेघदूत (काव्यानुवाद)	1899 ई०	अप्रकाशित	
9. नर्मदा-बिहार (कविता)	1902 ई०	1902 ई०	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
10. रस-वाटिका	1903 ई०	1903 ई०	"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. नीतिमुक्ताहार	1907 ई०	अप्रकाशित	
12. कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्थाओं का वर्णन	1908 ई०	1910 ई०	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
13. तुलसी-सूक्ति-कुसुममाला	1909 ई०	1912 ई०	"
14. किसानों के बालकों की शिक्षा	1924 ई०	1924 ई०	स्वयं
15. भारत की नागरिक जनता और गोपालन	1924 ई०	1924 ई०	स्वयं
16. गो-परिपालन	1928 ई०	1929 ई०	स्वयं
17. सप्तश्लोकी गीता सटीक		1926 ई०	स्वयं
18. गौओं का पालन और उससे लाभ		1926 ई०	स्वयं
19. किसानों की कामधेनु		1927 ई०	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
20. आपकी आँखें कब खुलेंगी ?		1929 ई०	स्वयं
21. संसार-सुख-साधन			स्वय
22. भारत की किसानी की उपज और उसकी कमी			स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंशवृक्ष

पं० बछउलाल अग्निहोत्री (निधन सन् 1783 ई० के लगभग) ग्राम : चव्हत्तर, जिला रायबरेली (उ० प्र०)

- हीरालाल
- जवाहरलाल
- मोतीलाल
- परमसुख
- शीतलाप्रसाद
- साहेबलाल
  - रामप्रसाद
  - काशीप्रसाद
  - मिट्ठूलाल
  - लक्ष्मणप्रसाद (पत्नी गुलाबादेवी)
    - बालाप्रसाद
    - राधेलाल
    - सुंदरबाई पति नाथूराम मिश्र नागपुर
      - रामकृष्ण
        - गार्गीशंकर, योगेन्द्र भगवती, मुन्नी इंदिरा, पीताम्बरी, कमला
      - एक पुत्री
    - सीताराम
    - जानकीबाई
    - गंगाप्रसाद
      - प्रथम पत्नी से रामचरण तथा एक पुत्र का बाल्यावस्था में देहांत
      - द्वितीय पत्नी से एक पुत्र तथा एक कन्या का बाल्यावस्था में ही देहांत
    - चंडीप्रसाद
      - मदनगोपाल
        - विनोद
        - प्रमोद
        - लता
        - आशा
    - निबाबाई (पति श्रीशुक्ल शाहपुर, बैतूल)
      - गिरधारीलाल
      - चंद्रभान
      - शिवकिशोर
  - नारायण

(बाबू श्यामसुन्दरदास को प्रेषित स्वलिखित जीवन-चरित, दि० 2 जनवरी, 1913 ई० के आधार पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका 1895 ई०

समालोचना

नीरक्षीरविवेके हंसाऽऽलस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनाऽन्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ।।[1]

(भामिनीविलास)

(1) सम्प्रति हमारी भाषा में ग्रन्थों की समृद्धि हो उत्तरोत्तर वह उन्नति ग्रहण करते जाती है। अनुमान सैकड़ों छोटे-बड़े, भले-बुरे ग्रन्थ प्रतिवर्ष प्रकाशित हुए बिना कोई संवत्सर खाली नहीं जाता। निःसंशय यह वार्ता हमारे लिए अत्यन्त हर्ष की है क्योंकि प्रतिवर्ष प्रकाशित होनहार ग्रन्थों में यद्यपि सब ग्रन्थ प्रशंसनीय न हों अथवा उनमें से एक भी न हो, पर इतना तो कहा जा सकता है कि उनके प्रणेतृ-गणों ने परिश्रम और समय का अपव्यय न कर कई मुद्राणालय के स्वामियों को उनके कार्य में सहायता ही दी। परन्तु ऐसा मान लेना बड़ा साहस है क्योंकि यह तो है ही नहीं कि प्रायः सब लोग विनोदार्थ ही ग्रन्थ प्रकाशित कराते हों। प्रथम तो जो ग्रन्थ छपवाता है, वह यही समझकर छपवाता है कि हमारे ग्रन्थ को लेने वाला कोई-न-कोई मिल ही जायगा। दूसरे, वह अपने मुद्रित करानेवाले ग्रन्थ की योग्यता को बिना समझे उसे मुद्रित कराने के लिए प्रवृत्त ही नहीं होता, क्योंकि यश-अपयश की चिन्ता सभी को रहती है।

(2) जिस प्रकार दिनोंदिन ग्रन्थों की संख्या बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उन्हें पूर्ण रूप से लाभ देने हारे उनके गुण-दोष-विवेचक समालोचक गणों की भी संख्या का बढ़ते जाना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु यह नाममात्र को भी कहीं नहीं दीख पड़ता। ग्रन्थों की आधुनिक अवस्था तो ऐसी है कि ग्रन्थों के मुद्रित होते ही उनकी कुछ तो यदृच्छया व्यवस्था हो जाती है, अर्थात् कई तो लोकाश्रय से बिक जाते हैं, और कई सिफारिश और वसीले आदि से, पर अधिकांश ग्रन्थकर्ता के ही पास पड़े रहते हैं। वे इतने अधिक कि उन्हें देख-देख उसे अनुताप होने लगता है कि मुझे यह

1. "हे हंस ! जल और दूध को पृथक्-पृथक करने के लिए यदि तू ही आलस्य करेगा तो संसार में तेरे उक्त कुलव्रत का पालन अन्य कौन करेगा ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ से सूझा। ग्रन्थों का लोकाश्रय अनिश्चित होने के कारण उन्हें मुद्रित कराने के लिए ग्रन्थकर्ताओं को सहसा धैर्य नहीं होता। जिस प्रकार इंग्लैण्ड में बड़े आदमी ग्रन्थकर्ताओं की श्रेणी में पाये जाते हैं उस प्रकार हमारे देश में इस समय एक भी नहीं दीख पड़ते, और वैसे लोग हमारे देश में कब उत्पन्न होंगे, इसकी ठीक-ठीक तर्कणा भी नहीं हो सकती। जिन आधुनिक विद्वानों के ग्रन्थकर्ता होने पर लोग उन्हें अवश्यमेव आश्रय दें, अथवा जिनसे ज्ञानवृष्टि के लाभ की चातकवत् आशा करते हैं, उन लोगों को स्वप्न में भी ग्रन्थ लिखने का विचार नहीं होता। इससे यही ज्ञात होता है कि हमारे यहाँ प्रायः वे ही लोग ग्रन्थकर्ता होते हैं जिनके पास बीसोंबिस्वा दरिद्रता के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। ऐसे पुरुष ने डरते-डरते बड़े ही साहस से कोई ग्रन्थ प्रकाशित किया और उसे यदि किसी ने भी न पूछा, तो बस वहीं उसके धैर्य का अन्त हो गया। एक तो पहले ही टुटपुँजिया, दूसरे ऊपर से व्यापार की भारी ठोकर लगकर जब आँख खुल गई तो फिर वह काहे को ऐसे बखेड़े में पड़ने जाता है? इस प्रकार वह तो हतोत्साह हो ही जाता है पर उसकी इस शोचनीय दशा को देख दूसरा भी गतधैर्य होकर इस कार्य से पीछे हटता है। सारांश हमारे आधुनिक ग्रन्थकारों की तो यह दशा है। ग्रन्थ की छपाई यदि दैव-वशात् वसूल ही हो गई तो प्रकाशक लोग समझ लेते हैं कि इस व्यवसाय में हमें आधा लाभ हो चुका, अब आगे को देखा जायगा। सौभाग्यवशात् यदि प्रकाशित सब ग्रन्थ बिक गये और प्रकाशक को कुछ लाभ हो ही गया तो पुनः द्वितीय संस्करण का अवसर उसे क्यों मिलने लगा? आजलौं जो सैकडों ग्रन्थ हमारी भाषा में लिपिबद्ध हुए हैं उनमें से जिन्हें सरकार की ओर से सहायता मिली है, उनके अतिरिक्त ऐसे वहुत ही थोड़े ग्रन्थ मिलेंगे जिन्हें द्वितीय आवृत्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। यदि होंगे भी तो वे इतने थोड़े (दो-चार) कि उनका होना नहीं ही माना जायगा। पाठक! देखिये यह कैसी विलक्षण बात है। जिस हमारे देश में सम्प्रति विद्याभिरुचि चारों ओर फैल रही है, जिस हमारे देश में प्रतिवर्ष नगर में मुद्रणालय, पुस्तकालय, समाचारपत्र, पुस्तकें, सभाएँ आदि नित्य नया स्वरूप धारण कर उत्पन्न हुआ करती हैं, जिस हमारे देश में देशाभिमान, विद्वत्त्व, कवित्व, वक्तृता आदि ही चारों ओर जहाँ-तहाँ दीख पड़ती हैं, जिस हमारे देश में नित्यप्रति नवीन नवीन धर्म स्थापित हो रहे हैं, देश के गत कला-कौशल को पुनः प्राप्त करने के लिए महत्-महत् प्रयत्न हो रहे हैं, कविता की नूतन शाखाएँ स्थापित हो रही हैं, नूतन-नूतन यन्त्र प्रस्तुत कर विलायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिए शतशः प्रयत्न किये जा रहे हैं—कहाँ तक कहें! जो बातें भारतवर्ष में और सम्पूर्ण एशिया खण्ड में कदापि किसी ने श्रवण भी न की थीं उनके प्रति अर्थात् डिमासथेनीस, प्रतिसिसरो और प्रतिपार्लियामेण्ट का यहाँ बनाना-इत्यादि महत् कार्यों के सिद्ध्यर्थ भी लोग आगे-पीछे नहीं देखते हैं उसी हमारे देश में इंग्लैण्ड जैसे सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थकर्ताओं का न दीख पड़ना, और वैसे ही सैकड़ों ग्रन्थवालों को प्रथम संस्करण के व्यतिरिक्त दूसरे संस्करण के प्रकाशित करने का धैर्य न होना, यह कैसे आश्चर्य की बात है? हमारी लोक-सभा की ओर से प्रेषित भारतवर्ष के प्रतिनिधि हाउस-आफ कॉमन्स में वहाँ के पार्षदगणों के साथ जब कुर्सी से कुर्सी लगाकर बैठेंगे, तब यहाँ की विधा की उक्त स्थिति को सुनकर वहाँ के सभ्यों को कितना आश्चर्य होगा। वे लोग जब ऐसा समझते हैं कि देश को गौरव प्राप्त होने के लिए उसकी भाषा उन्नत दशा को प्राप्त होनी चाहिए; उसमें सब प्रकार के विषयों के बड़े-बड़े ग्रन्थ होने चाहिए, लोगों को ऐसा विलक्षण धैर्य धारण करना चाहिए कि वे जिससे उनकी कीर्ति दिगन्त-व्यापिनी हो, यह नियम जो प्राय: सभी बड़े-बड़े राज्यों में पाया जाता है, पर इसे हमारे ही देश में न देख उन्हें कितना आश्चर्य होगा! नि:संशय जो लोग अपनी देश-भाषा की योग्यता हलकी समझते हैं, उसमें कोष व व्याकरण लिखने का विचार जिन्हें कभी स्वप्न में भी नहीं आता, वह जीवित रहे वा मरे, पर वे उसके लिए निश्चिन्त ही रहते हैं। जिनके यहाँ पाँच-पचीस वर्ष लौं भी रहने योग्य कविता नहीं होती; जिनके यहाँ के महान्-महान् वक्ताओं की वक्तृता एक बार ही सुनने से जी उकता उठता है, जिनकी भाषा में सर्वसाधारण को ज्ञान प्राप्त करने की कोई सम्भावना ही नहीं है, जिनके इतिहास, पदार्थ-विज्ञान, चिकित्सादि विषयों के ग्रन्थ मानों लड़कियों के खेल के तुल्य हैं, जिनके व्यापारियों के समाज-कौशल-शिक्षालय, भजन-पूजन समाज, पुस्तकालय आदि का समारम्भ देखा जाय तो योरोप से आये हुए नवीन साहब को पेट दबा-दबाकर हँसी आवे, उन्हीं लोगों को महान् सभा पार्लियामेण्ट में स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते देख ऐसा कौन है जो चकित न होगा और दाँतों में अँगुली न दबायेगा? अस्तु, सारांश हमारी भाषा की वर्तमान स्थिति और ग्रन्थप्रणेतृ गणों का आदर—ये दोनों देश-स्थिति के समीचीन सूचक हैं और इसी के साथ-साथ यह भी जान पड़ता है कि जबलौं ये चिह्न ऐसे ही निष्कम्प दृष्टिगोचर होते रहेंगे, तबलौं देश की उन्नति के लिए लोग कितना ही मरा करें, पर उनका सब प्रयत्न व्यर्थ होगा।

(3) हमें पूर्ण विश्वास है कि जो लोग यह निश्चयपूर्वक जानते हैं कि देश-भाषा का सुधार और उसमें उत्तमोत्तम ग्रन्थों की सृष्टि की अधिकाई आदि का देश-हित से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, उन्हें हमारा उक्त कथन यथार्थ ही ज्ञान पड़ेगा। अब उक्त बातें सम्पादित होने के लिए क्या होना चाहिए—इसका विचार करते हैं। यह तो हम कह चुके हैं कि ग्रन्थों के यथार्थ परीक्षकों का होना आवश्यक है क्योंकि उनके द्वारा भाषा को बहुत लाभ पहुँचता है। इस लेख में इसका वर्णन पीछे से करेंगे, सम्प्रति यह लिखते हैं कि आजकल ग्रन्थों के गुण-दोषों का विवेचन कहाँ तक होता है।

(4) प्राय: सब लोग यह जानते ही होंगे कि आजकल के हमारे कई समाचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों के अग्र भाग में अंग्रेजी पत्रों से उद्धृत कर एक लम्बी-चौड़ी प्रतिज्ञा लिखी रहती है कि अमुक-अमुक विषयों का वर्णन इस पत्र में रहा करेगा। इन विषयों में से (literature), अर्थात् साहित्य, की ही प्रतिज्ञा बहुधा पाई जाती है। परन्तु यदि सम्पूर्ण पत्र पढ़ के देखा जाय तो तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि उक्त प्रतिज्ञा संज्ञा शेष ही रहती है। यह अवस्था केवल एक-दो अंकों में ही नहीं रहती, वरन् इसी प्रकार से महीने-के-महीने और साल-के-साल व्यतीत हो जाते हैं। उक्त प्रतिज्ञा की पूर्ति में पत्र के दोनों ओर नवीन ग्रन्थों के जो विज्ञापन दिये जाते हैं अथवा "कौन कहता है हैजे की दवा नहीं है" आदि जो मजेदार चुटकुले दिये जाते हैं, यथार्थ में उनसे उनके पाठकों को भाषा का अथवा उसके ग्रन्थों का कितना ज्ञान होता होगा यह उक्त पत्रों के सम्पादक वा उनके पाठक ही जान सकते हैं। भला इसे जाने दीजिये, यह माना जा सकता है कि सम्पादकों का यह मुख्य विषय न होने के कारण और प्रति संख्या में उक्त प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए अवकाश का मिलना असम्भव होने के कारण उसकी पूर्ति वे नहीं कर सकते, पर महीने-दो-महीने में जब कोई नवीन ग्रन्थकर्ता अपना ग्रन्थ उन्हें समालोचनार्थ समर्पित करता है, तब तो उक्त प्रतिज्ञा पूर्ण करने का उत्तम अवसर उन्हें मिलता है! पर ऐसे समय पर भी हमारे सम्पादकगण जिस युक्ति का प्रयोग करते हैं, वह बहुत लोगों को विदित ही है। कोई-कोई सम्पादक महाशय 'प्राप्त' इस शीर्षक के नीचे उक्त ग्रन्थ-प्रणेता का नाम यथावत् छापकर उसे ग्रन्थ-प्रेषण के लिए अनेकानेक धन्यवाद दे देते हैं। बस, यही उसके ग्रन्थ की समालोचना है। कोई सम्पादक महाशय धन्यवाद प्रकाशित कर इतना और भी लिख देते हैं कि ग्रन्थ की छपाई और जिल्दबन्दी बहुत सुन्दर है, कागज बहुत बढ़िया है, इत्यादि मीठी-मीठी बहुत प्रशंसा कर देते हैं। इस प्रकार की गुणदोष-विवेचन-सम्पन्न समालोचना (रसीद) लिखने के लिए उन विद्वान् सम्पादक महाशयों को कितना अधिक परिश्रम न करना पड़ता होगा। सम्पूर्ण प्रशंसा कागज के कारखानेवाले को तथा छापने और जिल्दबन्दी करनेवाले को ही प्राप्त हुई और हमारे निज के लिए कुछ भी न रहा, यह देख उस बिचारे ग्रन्थ-रचयिता को कैसा सन्तोष होता होगा। अस्तु, यही दो प्रकार हैं कि जिनके द्वारा प्रायः नूतन ग्रन्थों पर सम्मतियाँ प्रकाशित की जाती हैं। पर इनके अतिरिक्त समालोचना करने की एक बढ़िया तीसरी रीति और भी है। वह यह कि "अमुक-अमुक ग्रन्थ हमें प्राप्त हुआ इसके लिए हम तद्रचयिता को बहुत धन्यवाद देते हैं, इसकी समालोचना आगामी अंक में प्रकाशित की जायगी।" यदि इतना भी अपने को बद्ध कर लेना मन में न रहा तो "समालोचना बारान्तर में प्रकाशित होगी" इतना छाप दिया कि गंगा नहाये। आगामी अंक आता है काहे को और उसमें समालोचना प्रकाशित होती है काहे को! इस बारान्तर या आगामी संख्या का आना मानो अगस्त की दूसरी फेरी ही है। भोले महात्मा बड़े-बड़ों से प्रणाम करा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें आश्वासन दे जैसे भुलाकर कहते हैं कि "बच्चा, जरा ठहरो। देखो, हम अभी रामेश्वर से आते हैं" ऐसा कह जो लम्बे हुए तो पुनः आपका आगमन होता ही काहे को है। इसी प्रकार हमारे उक्त सम्पादक महाशयों का भी समय मार ले जाने का ही अभिप्राय रहता है। सारांश जो कोई नवीन ग्रन्थ रचकर उसे पत्र-सम्पादकों की सेवा में समालोचनार्थ प्रेषित करता है, उसकी मनीषा उक्त तीनों रीतियों में से ही बहुधा किसी एक द्वारा पूर्ण होती है।

भला कहिये तो सही कि उक्त विचित्र स्थिति को देखकर मन में क्या आता है? बहुधा मन में यही आता होगा कि उक्त स्थिति का कारण लोगों के ग्रन्थावलोकन का आलस्य ही है या गुण-दोष-परीक्षा का काम लोगों को किंचित् भारी मालूम देता है। कुछ भी हो, निदान इतना तो सत्य ही है कि ग्रन्थ-रचयिता गणों का ऐसा अपमान होना हमारी विद्वत्ता और देशाभिमान को अत्यन्त लाञ्छन है, इसके अतिरिक्त उसके भाषा की और तद्द्वारा लोगों की बड़ी ही हानि होती है। ग्रन्थ की प्रशंसा करते समय अधिकांश उसके जिल्दबन्दी और छपाई आदि की ही प्रशंसा करना यह कितना अनुचित है? कसाई लोग जैसे पशुओं की परीक्षा उनके अंगों का स्पर्श कर किया करते हैं, वही हिसाब ग्रन्थों का भी है। क्या साधारण प्रार्थना के समान धर्म-पुस्तक या जुबिली-प्रमोदिका के समान ग्रन्थ को बहुत सुन्दर कपड़ा लगा उसकी जिल्दबन्दी उत्तम प्रकार की और उस पर सुन्दर मीना और जड़ाव का काम किया तो क्या वह पुस्तक यथार्थ में पढ़ने योग्य हो सकती है और 'तुलसीकृत रामायण' या 'सूरदासजी के पद' कैसे ही खराब कागज पर खराब अक्षरों में छपे हों और उनकी जिल्दबन्दी कैसी ही खराब हो तो भी क्या उनकी योग्यता कुछ कम हो गई? रद्दी लेनेवाला पंसारी या अत्तार पुस्तकों के बाह्य स्वरूप से यदि उनकी परीक्षा करे तो यह उसे फबती है; पर स्वयं अर्थज्ञ और अत्यन्त मार्मिक कहा के जो लोग किसी एक ग्रन्थ के गुणों की प्रशंसा करते हैं, वे ही यदि ग्रन्थ की परख पंसारी या अत्तार के समान करें तो यह कितनी हँसी की बात है? यह गुण-प्रशंसा क्या हुई, वरन् ग्रन्थकर्त्ता की मानहानि ही हुई, ऐसा समझना चाहिए। परन्तु उभय पक्ष में बहुधा यह वृत्ति दीख नहीं पड़ती, दोनों को बाह्य परीक्षा ही बस मालूम देती है। सारांश इस प्रकार की ग्रन्थ-परीक्षा से भाषा का नितान्त अहित होता है क्योंकि यथार्थ परीक्षक कोई भी न होने के कारण कैसा ही ग्रन्थ क्यों न हो "टके सेर भाजी टका सेर खाजा" इस न्याय से ही उसकी योग्यता प्रायः स्थिर की जाती है। 'मधुमालती' भी सुरस, चन्द्रकान्ता और भी सुरस। राजा लक्ष्मणसिंह-कृत 'शकुन्तला' का उत्कृष्ट अनुवाद जैसा वैसा ही 'ऐज़ यू लाइक इट' का एक सड़ा-गन्दा अनुवाद भी उत्कृष्ट! यह बात तो निर्विवादित है कि सब ग्रन्थ समान योग्यता के कदापि नहीं हो सकते, पर अमावास्या की घोर अँधेरी में जैसे प्रायः सब पदार्थ समान हो जाते हैं। इसके कहने की कोई आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि हमारे नूतन विद्वानों की स्वभाषा की ओर उपेक्षा-बुद्धि का होना ही उक्त कारणों में प्रधान है क्योंकि ग्रन्थ-परीक्षा करने का सामर्थ्य जितना इनमें हो सकता है उतना दूसरों में नहीं हो सकता। इसका कारण यही है कि अंगरेजी भाषा में जॉनसन, मैकाले आदि सुप्रसिद्ध ग्रन्थकर्ताओं के लिखे हुए उक्त विषय पर उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं, उनका परिचय कालेज के छात्रों को होता ही रहता है, इनके व्यतिरिक्त उन्हें और भी बहुत-कुछ बोध हो जाता है। इसीलिए किसी एक ग्रन्थ पर जैसी सारगर्भित सम्मति वे दे सकते हैं वैसी भाषा-पण्डित या व्युत्पन्न शास्त्री भी न दे सकेंगे। अस्तु, यह तो केवल उनकी शक्ति के विषय में कहा गया है अर्थात् इतना करने की उनमें शक्ति है या शक्ति नहीं तो योग्यता तो है। इससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि इतना वे सब करते ही हैं। शेक्सपियर साहिब की नायिका कहती है—

"If to do were as easy as to know what were good to do chapels had been churches and poor men's cottages princes palaces.[1]

वर्तमान समय में इसी न्याय की किंचित् रूपान्तर से प्रचुरता दीख पड़ती है। परन्तु इस उपेक्षा के कारण देश की जितनी हानि होती है, वह प्रसिद्ध ही है। ग्रन्थों का सच्चा प्रेमी कोई न रहने के कारण उत्तम ग्रन्थकर्त्ताओं को निकृष्टों की श्रेणी में दैवगति से रहना पड़ता है, अथवा अपनी योग्यता प्रकट करनी हो तो आत्म-श्लाघा का अश्लाघ्य कृत्य करने के अतिरिक्त उन्हें दूसरा मार्ग ही नहीं रहता। परन्तु इस मार्ग का अनुधावन सदैव फलदायक नहीं होता। इसी कारण बहुधा लोग उन्हें तिरस्कृत दृष्टि से देखने लगते हैं इसीलिए निष्पक्षतापूर्वक ग्रन्थों की योग्य प्रशंसा करनेवाले यदि थोड़े लोग भी रहें तो उत्तम ग्रन्थ-प्रणेताओं को उत्साह मिलता है, और उन लोगों को उदार आश्रय मिलने के कारण भाषा में उत्तमोत्तम ग्रन्थों की संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है और उसी प्रकार निकृष्ट ग्रन्थ अलग कर दिये जाते हैं, सुतरां उत्तरोत्तर उनका ह्रास होता जाता है। परन्तु यह जब नहीं रहता तब यथार्थ ही में सम्प्रति की नाईं क्या उत्तम और क्या अनुत्तम—दोनों एक ही हो जाने के कारण भाषा को अत्यन्त हानि पहुँचती है और लोगों को उत्तम ही उत्तम ग्रन्थ मिला करें और उनके योग से उनकी मानसिक शक्तियाँ बढ़ा करें, यह तो रहता है एक ओर; पर नित्यप्रति उन्हें उलटी हानियाँ ही उठानी पड़ती हैं।

---

1. अमुक कार्य का करना अच्छा है यह जान लेना जैसा सुगम है, वैसे ही उसका करना भी यदि सुगम होता, तो छोटे-छोटे शिवाले बड़े-बड़े कैलास बन जाते और दीन-दरिद्रों की झोंपड़ियों के विशाल राजभवन हो जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) यहाँ तक हमारी भाषा के ग्रन्थकर्त्ताओं की आधुनिक स्थिति के विषय में विशेषतः निरूपण हुआ। अब उक्त विषय पर सामान्यतः विचार करते हैं अर्थात् समालोचकगणों को कौन-कौन से गुण और साधन आवश्यक हैं, समालोचना करने की प्रथा कब से प्रचलित हुई, इससे हिताहित कौन-कौन से हैं—इत्यादि का वर्णन करेंगे।

(7) प्रथम इस प्रथा का वृत्तान्त। हमारे देश में यह प्रथा प्राचीन समय में जैसी चाहिए वैसी न थी और अर्वाचीन काल में तो लुप्तप्राय हो गई थी; पर अभी दस-पन्द्रह वर्षों में ही अंग्रेजी ग्रन्थकर्ताओं के परिचय से केवल कहीं-कहीं इसका प्रारम्भ हो चला है। अब आधुनिक स्थिति के विषय में लिखते हैं। यह तो अभी ऊपर लिख ही चुके हैं कि अंग्रेजी विद्या का फैलाव इधर-उधर होने के कारण ग्रन्थों के गुण-दोष विवेचना की प्रथा चल निकली। प्रतिवर्ष जो नवीन ग्रन्थ मुद्रित होते हैं, समाचारपत्रों द्वारा उनकी थोड़ी-बहुत चर्चा होती है, और इसी उद्देश्य से मासिक पत्रों की सृष्टि हुई। इन पत्रों का मुख्यतम विषय भाषा और विद्या ही है। समाचार-पत्रों के समान इन्हें अन्यान्य व्यवधान बिलकुल नहीं हैं अतएव उक्त गुण-दोष-विवेचना का काम वस्तुतः विशेषकर इन्हीं मासिक पत्रों का है। देश में प्रचलित राज्य, व्यापार और अन्यान्य लौकिक वार्ताओं के विषय में लोगों की चित्तवृत्ति को समान करना जैसे समाचारपत्रों का कर्त्तव्य है, वैसे ही मासिक पत्रों का विद्या के संबंध से है अर्थात् अनेकानेक विषयों के विषय में पाठकों को जिसके द्वारा थोड़े ही में उत्तम बोध हो, उसका अनुष्ठान ही उनका कर्त्तव्य है और इसी के साथ-साथ विधा की उन्नति के लिए सरकार वा लोगों द्वारा जो यत्न किये जाते हों उनकी चर्चा करना भी इन्हीं का काम है। अतएव जितने नवीन ग्रन्थ प्रस्तुत हों, उनमें से यथार्थ में लाभदायक कौन से और अपकारक कौन से हैं, इत्यादि लोगों को सूचित करना यह भी मासिक पत्रों के सम्पादक महाशयों का ही कर्तव्य है।[1] विलायत के मासिक और त्रैमासिक जितने पत्र हमारे दृष्टि-पथ में आते हैं उन सबमें यह विषय भलीभाँति सम्पादित किया हुआ दीख पड़ता है। किसी एक विषय पर नवीन ग्रन्थ लिखकर प्रस्तुत हुआ न हुआ कि उसके विषय में मासिक पत्रों के द्वारा चर्चा होने लगती है। यह तो क्या पर पुस्तकालय, वादविवादवर्धिनी सभा, चाय-पानी आदि पीने के स्थान, और तो क्या भोज-प्रसंग आदि में भी उक्त चर्चा जहाँ-तहाँ चलती ही रहती है। अस्तु, इससे यह सिद्ध हुआ कि नूतन पुस्तकों के विषय में निज-निज सम्मतियाँ प्रदर्शित कर उनमें से लोकाश्रय की पात्र कौन सी और अपात्र कौन सी हैं, इत्यादि निश्चित करने का अधिकार प्रधानतः मासिक पत्रों का ही है। परन्तु

1. यदि काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका इस ओर ध्यान दे तो भरोसा है कि अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी उसका अनुसरण करने लगेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी भाषा में जो पत्र हैं वा थे, उनमें से उक्त कार्य भलीभाँति जिसने किया वा जो करता हो, ऐसा हमें एक भी नहीं दीख पड़ता। अस्तु, उक्त सम्पादन से यह प्रतिपादित हुआ कि ग्रन्थों की समालोचना करने की प्रथा हमारी भाषा में अभी नई ही प्रारम्भ हुई है और अद्यावधि उसका प्रचार भी बहुत थोड़ा है। उसकी उन्नति भाषावृद्धि और सर्व-साधारण के हित के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(8) यहाँ तक समालोचना के इतिहास का वर्णन हुआ। अब समालोचना करने वाले लोगों को कौन-कौन से गुण आवश्यक हैं, उनके विषय में लिखते हैं। प्रथमतः मूल ग्रन्थ का ज्ञान। समालोचक चाहे कैसा ही विद्वान् हो, पर यदि उसे मूल ग्रन्थ का ज्ञान नहीं है तो उसका समालोचना करना व्यर्थ है। जिस मनुष्य को किसी एक वस्तु का पूर्व में ज्ञान नहीं रहता है, सुतरां वह उसे बिलकुल ही नहीं जानता; यदि वह उसके विषय में स्वकीय सम्मति प्रकाशित करे तो यह तो प्रकट ही है कि उसकी उक्त सम्मति शोभा को कदापि प्राप्त न होगी। परन्तु मनुष्य की मनोवृत्ति का ऐसा कुछ चमत्कार है कि उसे निज अज्ञान की तर्कणा तक सहन नहीं हो सकती। ऐसे सुविद्वान् बहुत ही थोड़े मिलेंगे कि जो यह निश्चयपूर्वक जानते हैं कि अमुक-अमुक विषय को हम भली-भाँति नहीं जानते, अतएव उस पर निज सम्मति प्रकाशित करने के लिए हम सर्वथैव अयोग्य हैं। पर अन्य लोगों में से किसी को भी किसी एक विषय में पूछिये, बहुत करके उत्तर में नाहीं तो कभी कहेगा ही नहीं। हर कोई अपने मन में यही समझता है कि जितना मैं जानता हूँ उससे अधिक अन्य कोई क्या जानता होगा? और मेरी सम्मति में त्रुटि हो कैसे सकती है? बहुतेरे लोगों के मन इस मूर्खतापूरित दुरभिमान से दूषित होने के कारण किसी एक विषय पर यथोचित सम्मति देने वाले लोग बहुत ही थोड़े मिलेंगे। बेकन ने कहीं एक मार्मिक वचन लिखा है कि ऐसे बहुत लोग दीख पड़ते हैं कि जो हम क्या नहीं जानते, यही नहीं जानते। अभिप्राय यह है कि उक्त प्रकार के समालोचकगण किसी अर्थ के नहीं। जिस ग्रन्थ के दोष-गुण लोगों को विदित करने हैं, वह ग्रन्थ स्वयं पूर्णतया समझ में आ जाय, तभी समालोचक को उचित है कि उसकी समा-लोचना करने का साहस करे। नोचेत् थोड़ा-सा समझ-बूझकर यदि समालोचना प्रारम्भ कर दी तो वह उक्त समालोचक के लिए विडम्बनामात्र होगी और लोगों में सत्य का प्रचार तो रहेगा एक ओर, पर मूर्खतागर्भित सम्मतियाँ मात्र चारों ओर फैल जायेंगी।

(9) दूसरा गुण सत्य-प्रीति है। यह गुण भी उक्त गुणों के समान समालोचना के लिए अत्यन्त आवश्यक है सुतरां इसकी योग्यता उक्त गुणों से भी अधिकतर है। पर यह गुण संसार में क्वचित् ही पाया जाता है। दूसरे के ग्रन्थों की समालोचना करने में सत्य का अवलम्ब ही समुचित है। और समालोचना करने का प्रधान अभिप्राय भी यही है कि उसके योग से सत्य का उत्कर्ष और असत्य का ह्रास हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह बहुत ही थोड़ा देखने में आता है। आजकल तो समालोचकगणों के सामान्यतः उद्देश्य द्वेषबुद्धि और मत्सरमय रहते हैं, वा यों ही विनोदार्थ ग्रन्थ-कर्ताओं का उपहास और उनकी फजीती करने के रहते हैं। यदि यह न रहा तो यह तो अवश्य ही रहता है कि हमारा नाम लोगों को विदित हो और उसी के साथ हमारी विद्वत्ता भी उन्हें प्रदर्शित हो। अब यह बात सत्य है कि उक्त दुष्ट मनो-वृत्तियों की प्रेरणा से किसी एक ग्रन्थ की चर्चा करने पर भी यदि उसमें असत्यता का लवलेश न भी रहा और वह दोषपात्र न भी हुई तो भी उक्त वृत्तियों का अव-लम्ब सर्वथैव निन्द्य एवं अश्लाघ्य है। सुविचार के योग से जिनके मानस उदार हो गये हैं वे तो अपने निर्मल अन्तःकरण में उन्हें कदापि आश्रय ही नहीं देते। जिस किसी को किसी एक ग्रन्थकर्ता के गुण-दोष संसार में प्रकट कर दिखाने के लिए लेखनी उठानी हो, उसे उचित है कि वह पहले सत्य का स्मरण कर उसी पर आरूढ़ हो निज सम्मति लिखने के लिए कृत-निश्चय हो। केवल परमार्थ बुद्धि के हेतु यह करना उसे उचित नहीं है, किन्तु उसे यह उत्तमतया जानना चाहिए कि स्वार्थ-साधन में भी यही मार्ग श्रेयस्कर है; क्योंकि यद्यपि वह अपने पाण्डित्य और कीर्ति-आधिक्य पर आरूढ़ हो असत्य सम्मतियाँ प्रकाशित कर उन्हें लोगों के मन में दृढ़ रूप से स्थित करे और इसी प्रकार कुछ काल तक लोगों को धोखा दे तथा उसे अपनी तात्कालिक कृतार्थता मान ले, तो भी उसे यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिए कि उसकी उक्त असत्यता कभी-न-कभी प्रकाशित हो ही जायगी। इस विषय में ह्यूम, जॉनसन, मैकाले आदि सर्वप्रसिद्ध उदाहरण हैं। पहले ने अपने इंग्लैण्ड के इतिहास में बहुत-सा झूठा वृत्तान्त लिखा है अतएव आजकल उसकी कीर्ति बहुतांश लुप्तप्राय हो गई है, और दूसरे दोनों ने भी कई प्रसंगों पर अपनी टेढ़ेपन की लहर में मग्न होकर मनमाना लिख मारा है इसीलिए यदि उनकी सम्मतियाँ ग्रहण करनी हों तो लोग उन्हें बहुत विचार एवं सावधानीपूर्वक ग्रहण करते हैं। सारांश, सत्यरूप देवता का प्रताप बड़ा ही प्रचण्ड है, उसकी प्रचण्ड शोभाग्नि में बड़े-बड़े उद्दण्ड ग्रन्थकर्ताओं की राख हो जाती है, फिर छोटे-मोटे ग्रन्थकर्ताओं की किधर क्या दशा हो जाती है उसे कौन जान सकता है। इससे अब यह तो भली-भाँति जान पड़ता है कि हमारी उक्त सत्यानुकरण की सूचना स्वार्थसाधन के लिए भी समुचित है। ग्रन्थों के विषय में जो यथार्थ विवरण करेगा—अर्थात् जितने गुण हों उतने गुण और जितने दोष हों उतने दोष यथावत् प्रदर्शित करेगा—उसी की समालोचना संसार में चिरकाल लौं मान्य होकर स्थिर रहेगी।

(10) तीसरा गुण शान्त स्वभाव है। समालोचकों के लिए यह गुण भी अत्यावश्यक है और उक्त गुण के सदृश यह भी क्वचित् ही दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण ऊपर ही कह चुके हैं। वह यही है कि समालोचकों की मनोवृत्तियाँ, जैसाकि कह चुके हैं, द्वेष-मत्सरादि वासनाओं से प्रायः लिप्त होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण, उक्त गुण को उनके निकट स्थान नहीं मिलता। क्रोध के वश हो जब चित्त क्षुब्ध हो जाता है, तब उसमें शान्तता कैसे रह सकती है? इस क्षोभ के भी उद्‌गार प्रकटित करने के लिए मन को कुछ थोड़ी-बहुत शान्ति आवश्यक है। उसके अभाव में चित्त को यदि अतिशय क्षोभ ही हुआ तो मनोव्यापार के यथावत् संचालन में कठिनाई पड़ेगी। अर्थात् जैसे जब मनुष्य अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है तब उसका गला भर आता है और उसके मुख से पूरे शब्द तक नहीं निकलते, वैसे ही जब मनुष्य क्रोधवश हो विवेक-शून्य हो जाता है तब उसकी बुद्धि भी गड़बड़ा जाती है। बोलना क्या है और लिखना क्या है, इत्यादि उसे जैसे दूसरे समय सूझ सकता है, वैसा उसे उस समय नहीं सूझता और वह बिलकुल बेसुध हो जाता है और विक्षिप्त की नाईं कुछ-का-कुछ बर्राने लगता है—वह यहाँ तक कि कुछ काल के पश्चात् स्वयं उसे ही अपनी विक्षिप्तता को देखकर विस्मित होना पड़ता है। सारांश, मनःशान्तता की इतनी आवश्यकता है कि क्रोध का बोलना वा लिखना कदापि युक्तियुक्त हो ही नहीं सकता, तो पुनः सहस्रावधि पाठकगणों को मान्य होने के योग्य ग्रन्थ-रचना करने के लिए उसकी जितनी आवश्यकता है वह सबको विदित ही है क्योंकि जब किसी विषय पर ग्रन्थ रचा जाता है तब पहले उसे आद्यन्त सोच-समझकर उसकी यथायोग्य व्यवस्था करनी पड़ती है, और वाक्य-रचनादि अन्य गुण जितने उत्कृष्ट हो सकें, साधन करने पड़ते हैं। और फिर यह वार्ता तो निर्विवादित है कि क्रुद्ध मनुष्य की अपेक्षा शान्त और स्थिर स्वभाव का मनुष्य उक्त साधना को अधिकतर साध सकेगा। दूसरी बात यह है कि यदि किसी ग्रन्थ पर सम्मति देनी हो और वह शान्त, गम्भीर और सभ्य रीति-पूर्वक दी जाय तो उसकी योग्यता कुछ निराली ही मानी जाती है और उसके योग से जो कार्य सिद्ध होता है वह क्रोध के आवेग में व्यर्थ चिल्लाहट, पागल कैसी उलटी-सीधी गालियों की बक-बक आदि से कदापि सिद्ध नहीं होता। उक्त दूसरे प्रकार के समालोचकों से लोगों का मन हट जाता है—और उसी के साथ-साथ उसकी नीचता और लड़कपन संसार में प्रकटित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उक्त गालि-प्रदान से उसके पक्ष को जो सबलता प्राप्त होनी चाहिए, वह तो रहती है एक ओर, पर उसकी दुर्बलता लोगों में भासित होने लगती है, क्योंकि लोग यह पूर्ण रूप से समझ लेते हैं कि जब इसने गालियों की वृष्टि इस प्रकार की है तब तो यही ज्ञात होता है कि इसके पास गालियों के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों का संचय बहुत ही कम होगा। इसके सिवा होलिकोत्सव में गाली बकने के समान गाली देना ही ग्रन्थकर्ताओं के लिए अत्यन्त अप्रशस्त है। मार्ग में कलह करनेवाले लोगों में जैसे मुँहजोरी से कलह का निर्माण होता है अर्थात् जो बहुत जोर से चिल्लाता है, उसी का पक्ष सच्चा है, यही आसपास के तमाशबीन लोग समझते हैं। ग्रन्थों के विषय में भी उसी नियम का अनुकरण करना निन्द्य एवं उपहासार्ह है। ऐसा करनेवाले को अपनी योग्यता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान पड़ती और दूसरे लोगों को यह ज्ञात हो जाता है कि समालोचना करने की योग्यता इसमें जरा-सी भी नहीं है क्योंकि जिसके पास युक्तियुक्त प्रमाण हैं वह शब्द-पाण्डित्य और गालि-प्रदान के बखेड़ें में कदापि न पड़ेगा। वह तो अपने सयुक्तिक एवं सबल प्रमाणों को देखकर आनन्दपूर्वक निश्चिन्त हो रहेगा और निज विपक्षियों की गालियों की तृणमात्र भी चिन्ता न करेगा, क्योंकि उनके ढोल के भीतर की पोल तो उसे भली-भाँति दीख पड़ेगी और इसके अतिरिक्त वह इसे भी निश्चयपूर्वक जान लेगा कि उक्त प्रकार की गालियों से जो पण्डित हैं उन्हें कदापि भ्रम नहीं होगा। अस्तु, सारांश मन की यह शान्तता समालोचकों के लिए नितान्त आवश्यक गुण है क्योंकि इसके योग से उनके लेख को एक विलक्षण प्रकार का गौरव एवं भव्यता प्राप्त होती है। जैसे कि उभय पक्ष के वकीलों के प्रमाण और उनके पक्षपात-पूरित उत्तर-प्रत्युत्तर सब सुनकर न्यायाधिकारी अपने उच्चासन से निष्पक्षपातपूर्वक स्वस्थ अन्तःकरण से उचित निर्णय सुनाता है, उसी तरह समालोचक की सम्मति वकील-कैसी एक पक्ष की कदापि न रहनी चाहिए, किन्तु न्यायाधिकारी के निर्णय के सदृश केवल सत्यतार्गभित ही रहनी उचित है।

(11) चौथा गुण सहृदयता। जिस ग्रन्थ की समालोचना करनी हो उसमें अन्तः-करण के पूर्ण अभिनिवेश की योग्यता को सहृदयता कहते हैं। यह योग्यता बहुधा सब मनुष्यों में नहीं पाई जाती, यदि पाई भी जाती है तो समानतापूर्वक नहीं पाई जाती। संसार में जिस मत की इतनी भिन्नता दीख पड़ती है उसका प्रधान कारण उक्त असमान सहृदयता ही है। यह तो नैसर्गिक ही है कि प्रत्येक मनुष्य की जन्म-सिद्ध प्रकृति निराली ही रहने के कारण और आगे को जो अवस्था में उसे प्राप्त होती जाती हैं, वे भी सब मनुष्यों में असमान होने के कारण, मनुष्य-मनुष्य में रुचि-भिन्नता उत्पन्न होती है परन्तु उनमें से भी कई मनुष्यों में उस सहृदयता का गुण अन्यों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है अर्थात् दूसरों की मनोवृत्तियों से वे अपनी मनोवृत्तियाँ बिना प्रयास मिला सकते हैं। इस गुण की स्थिति मन वा हृदय की उदारता की ज्ञापक है और इसका अभाव उक्त दोनों मन और हृदय की संकोचता का दर्शक है। अतएव जिस किसी को जब किसी ग्रन्थ की समालोचना करनी हो तब उसको प्रथम यह देख लेना चाहिए कि इससे सहृदयता पाने की मेरी योग्यता है वा नहीं, नोचेत् जो परिणाम होगा सो स्पष्ट ही है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' काव्य की, वा मराठी राज्य के रामजोशी समान कवि की सुरस लावनी की समा-लोचना करने के लिए शुक्राचार्य ऐसे परमहंस ने यदि लेखनी परिचालित की, अथवा वृद्धत्व वा सृष्टिप्रमाद से मदन-व्यापार-शून्य मनुष्य ने उक्त कार्य स्वीकृत किया तो समालोचना कैसी उत्तम होगी, इसका अनुमान सहज ही में हो सकता है। उसी प्रकार धर्म-प्रतिपादक वा वेदान्तविषयक ग्रन्थ की समालोचना करने का साहस यदि कोई विलासप्रिय पुरुष करे तो वह उसे कहाँ तक सिद्ध कर सकेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशप बटलर संज्ञक एक धर्माधिकारी ने अंग्रेजी भाषा में उक्त विषयक एक बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ निर्मित किया है। उसके विषय में कई लोगों ने ऐसी सम्मतियाँ दीं कि उन्हें देखते हमें दुःख और आश्चर्य होता है। शेक्सपियर के विषय में मिल्ल साहिब की ऐसी ही सम्मति है। कई अंगरेज कवियों तथा इतिहासों के विषय में जॉनसन की सम्मति, और हिन्दुओं की विद्यादि के विषय में मैकाले की सम्मति की योग्यता कितनी माननी चाहिए इसे सहृदय पाठकगण भलीभाँति जान सकते हैं। एलिजबेथ रानी के कोषाध्यक्ष कोई लार्ड बर्ले संज्ञक थे। स्पेंसर को उसके सर्वप्रसिद्ध काव्य के निमित्त रानी ने कुछ पारितोषिक दिया, इससे उक्त कोषाध्यक्ष को महदाश्चर्य हुआ और उससे यह कहे बिना न रहा गया कि एँ, यह क्या पागलपन है! एक न-कुछ गीतमात्र बनाने के लिए इतना भारी पारितोषिक! दूसरे एक समय पर किसी को किसी एक काव्य की अत्यन्त प्रशंसा करते देख एक तत्त्ववेत्ता ने कहा कि अः, इसमें क्या है? हमें यह बतलाओ कि इस काव्य के योग से बाजार में धान्य सस्ता हो गया है क्या? सारांश जिस विषय में अपनी गति ही नहीं उसमें पागल की नाईं प्रविष्ट होने से ऐसी विचित्र सम्मतियाँ उत्पन्न होती हैं अतएव किसी भी ग्रन्थ की समालोचना लिखने के लिए लेखनी उठाने के पहिले ही समालोचक को यह भली-भाँति सोच लेना उचित है कि समालोचना तो हम करेंगे ही, पर इस विषय में सहृदयता प्राप्त करने की हमारी कितनी योग्यता है। यदि योग्यता न हुई तो सम्मति वैसी ही निश्चित होगी जैसी अन्ध द्वारा चित्रपट की हो सकती है। यहाँ पर किसी को यह भ्रम उत्पन्न होगा कि प्रचुर पाण्डित्य के योग से चाहे कोई विषय क्यों न हो उसकी समालोचना हो सकती है। पर यह भ्रम उक्त जॉनसन, मिल्ल आदि के उदाहरणों से पूर्णतया दूर हो सकता है। तात्पर्य निरे पाण्डित्य की अपेक्षा इस सहृदयता गुण की अधिकतर योग्यता है। इसीलिए ग्रन्थ की समालोचना यदि प्रचुर पाण्डित्य-बल से भी की गयी हो तो भी उक्त गुण का अभाव होने के कारण वह अनादरणीय हो जाती है।

(12) इस प्रकार उत्तम प्रकार की समालोचना करनेवाले समालोचक के आवश्यक गुणों का यहाँ तक वर्णन हुआ। हम समझते हैं, इसमें अन्य लोगों का भी अन्तर्भाव हो सकता है। अब संसार में सामान्यतः जो ग्रन्थादिकों की समालोचना हुआ करती है वह कितनी योग्यता की रहती है और किस-किस प्रकार की दृष्टि-गोचर होती है, इसके विषय में थोड़ा-सा निरूपण करना आवश्यक है। प्रथमतः सब लोग यह सहज ही में समझ सकते हैं कि लोक-व्यवहार में लोगों की बहुधा स्तुति की अपेक्षा निन्दा की ओर ही विशेष प्रवृत्ति रहती है। किसी ने किंचित् ऊपर सिर उठाया, किसी की कहीं कुछ प्रशंसा हुई न हुई कि लोगों को वह असह्य हो जाती है और तत्क्षण चारों ओर उसके निन्दक उपस्थित हो जाते हैं। यही कारण है कि बड़े ग्रन्थप्रणेतृ गणों और विशेषतः सब कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भूमिका में खलों के दुश्चरित्रों का वर्णन किया है। अस्तु, इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि समालोचना के सामान्य स्वरूप का अर्थ मूल ग्रन्थ का दूषण वा उसका खण्डन है। किसी की प्रशंसा के निमित्त किसीने किसी एक ग्रन्थ की समालोचना की हो, ऐसा बहुधा विना स्वार्थ के कहीं भी दृष्टिपथ में नहीं आता। अब दूसरे का नाम रखने के लिए ही बहुधा सब लोगों की प्रवृत्ति क्यों हुआ करती है, इसका कारण किंचित् विचार करने से तत्क्षण विदित हो जायगा कि वह स्वाभिमान है। प्रत्येक मनुष्य यही समझता है कि यदि संसार में कोई चतुर है तो वह मैं ही हूँ, सबको उचित है कि वे मेरा ही गुण वर्णन करें, और जब वह देखता है कि कहीं किसी की प्रशंसा हुई तो (अल्पचेत होने के कारण) उसे यही जान पड़ता है कि उक्त प्रशंसा मेरी ही प्रशंसा से ली गई है। यही कारण है कि बहुधा हरएक मनुष्य दूसरे की निन्दा के लिए घात लगाये रहता है। कई लोग, जिन्हें कि लोग बुद्धिमान् और चतुर मानते हैं, ऐसा समझते हैं कि दूसरे की कृति को सर्वथैव उत्तम कहकर यदि उसमें कुछ दोष न निकाला तो अपना बड़प्पन ही क्या रहा ? आधुनिक विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में परीक्षकगणों का जो वर्ताव दीख पड़ता है, ठीक उसी का अनुकरण समालोचकगण भी करते हैं। विश्वविद्यालय के परीक्षक अपने हाथ से छात्रों को पूरे नम्बर कभी देते ही नहीं। दस-पाँच तो वे निज गौरव के निमित्त एक ओर निकालकर रख लेते हैं। बहुधा समालोचकगण ग्रन्थ-रचना में असमर्थ होने पर भी उसकी समालोचना करते समय गुणों का कुछ उल्लेख कर अन्त में कुछ-न-कुछ तो सच्चे-झूठ दोष निकालकर स्तुति और निन्दा को समान ही कर डालते हैं। यह व्यवहार मुक्त व्यवहार की अपेक्षा बहुत अच्छा है। पर इसी के साथ यह भी स्पष्ट ही है कि इसके योग से समालोचक की सत्यनिष्ठा कलंकित एवं दूषित हो जाती है। अपर कई लोग ऐसे रहते हैं कि जिन्हें गुण और दोष दोनों ही दिखाने ही पड़ते हैं, पर दोषों पर पाण्डित्य करना उन्हें जितना प्रिय लगता है, उतना ही गुणों का विवरण करना अप्रिय लगता है। इसीलिए पहले कुछ थोड़ा-बहुत गुणों का विवरण कर अंत में दोषों का पूर्ण रूप से उद्घाटन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि द्वेष-बुद्धि या मात्सरी स्वभाव के अतिरिक्त अन्य द्वारा यह घटना नहीं हो सकती। किसी-किसी के स्वभाव में पक्षपात की इतनी प्रबलता रहती है और प्रकृति ऐसी हठीली होती है कि गुण तो गुण ही नहीं, और दोष इसके व्यतिरिक्त उसे कुछ दीख ही नहीं पड़ता। स्वकीय मतानुसार प्रिय ग्रन्थों में उसे सब गुण ही गुण दीख पड़ते हैं और दोष का तो लेशमात्र दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु उक्त प्रकरण के विपरीत प्रसंग में सभी दोषमय दीख पड़ता है—गुण का लेश भी सहन नहीं हो सकता। इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि ऐसे समालोचकों में दुराग्रह सदा जाग्रत ही रहता है, कारण किसी वस्तु का केवल गुणमय या केवल दोषमय होना सृष्टि-नियम के ही विरुद्ध है। यदि ऐसा ही है तो वह प्रकट ही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उक्त समालोचकगणों को सत्य का उपमर्दन कर गुणों को दोषों और दोषों को गुणों का रूप देने के लिए बहुत-कुछ यत्न करना पड़ता है। अस्तु, इसी प्रकार बहुधा ग्रन्थों की समालोचना अनेक प्रकार की दीख पड़ती है।

(13) ऊपर जिन विषयों का वर्णन हो चुका है वे अहंकारादि दुष्ट मनोवृत्तियों के फल होने के कारण थोड़े-बहुत सब दूषणीय हैं। अब सच्चे समालोचकों के यथार्थ स्वरूप का यहाँ समास वर्णन करते हैं। यह तो ऊपर कह ही चुके हैं कि जिस ग्रन्थ की समालोचना करनी हो, उसका पूर्ण ज्ञान और, उससे सहृदयता—ये दोनों गुण समालोचक के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। पर इनके सिवा जो अन्य गुण हैं उनकी तो समालोचकों को अधिकतर आवश्यकता है क्योंकि उनके योग से समालोचना को सच्ची योग्यता और यथार्थ शोभा प्राप्त होती है और वह जगत् में सबको मान्य होती है। बहुत तो क्या, पर स्वयं ग्रन्थकार ही यदि सत्यप्रिय विद्वान् रहा तो वह भी उसे देखकर सिर हिलाये बिना न रहेगा। यह समालोचना ऐसी रहनी चाहिए कि इसमें यह स्पष्ट दीख पड़े कि वह निष्पक्षतापूर्वक की गई है और इसमें सत्य-निरूपण के व्यतिरिक्त समालोचक का अपर कोई उद्देश्य नहीं है। गुण-दोषों को दिखाना ही समालोचकों का कर्त्तव्य है अतएव उन्हें समुचित है कि वे शुद्धान्तः-करण से दोनों को प्रकाशित करें और उनका उल्लेख करने में यत्किंचित् भी अत्युक्ति न करें। दोष प्रकटित करते समय जहाँ तक हो सके, ऐसा लिखा जाय कि यह अनुमान न होने पावे कि मूल ग्रन्थप्रेणता के दोषों को प्रकाशित करना यही समालोचक का प्रधान अभिप्राय था; उसी प्रकार गुणों का वर्णन करती बार भी यदि वह उसका मित्र हो तो उसे उसकी व्यर्थ प्रशंसा करना अनुचित है। सारांश, जो दोष हों उनका निर्भयता एवं स्पष्टतापूर्वक कथन हो और वैसे ही जो गुण हों, उनके लिए ग्रन्थ-रचयिता की उचित प्रशंसा की जाय। जिस प्रकार सत्यनिष्ठ न्यायाधिकारी शत्रु-मित्र भाव को बिलकुल भूलकर केवल उदासीनतापूर्वक न्याय करता है, या सच्चा वणिक्-पुत्र सच्चे माप से अपने ग्राहकों को सच्चा तौल देता है, सच्चा एवं उत्तम चित्रकार मूलाकृति को जैसे ज्यों-की-त्यों चित्रपट पर उतार देता है, उसी प्रकार की समालोचना भी होनी चाहिए।

(14) यहाँ तक वर्तमान विषय की बहुत-कुछ विवेचना हुई। अब यहाँ पर आजकल के लोगों में वर्तमान विषय के सम्बन्ध में जो कई प्रकार के विलक्षण विचार दीख पड़ते हैं, उनके विषय में कुछ थोड़ा-सा वर्णन उचित जान पड़ता है। उन विचारों में से पहला बड़ा विचार यही दीख पड़ता है कि जो दूसरे लोगों के दूषण प्रकाशित करता है, वह अहंकार और द्वेष-बुद्धि के वश होकर ही उक्त कर्म करता है, अतएव वह बड़ा दम्भी एवं दुष्ट मनुष्य है। यह निश्चित होने का कारण क्या है सो पिछले लेख से हमारे पाठकों को ज्ञात हो ही चुका होगा। परन्तु यह विचार सदैव सत्य ही होता है ऐसा कुछ नियम नहीं है। अत्यन्त निकट सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समस्वभाववाले मनुष्यों में भी बहुधा मतान्तर दीख पड़ता है और यदि वह दीख पड़ता है तो भी कुछ विशेष आश्चर्य की बात नहीं है।

यहाँ पर इतना ही कहना अलम् है कि उक्त दोष-विवेचन उक्त हेतुओं से जैसे हो सकता है वैसे ही सत्यनिष्ठा से भी वह हो सकता है। इसलिए उक्त प्रकार के लेखक को केवल दो मनोवृत्तियों से अभियुक्त करना यह तो निरी जबरदस्ती है। जिस समालोचक ने अहंकृति या दुष्ट बुद्धि से दूसरे की बिना कारण निन्दा की है, उसकी उसी प्रकार निन्दा करने के लिए उस निन्दित पुरुष को या उसके सहायकों को क्या किसी ने मना किया है? जिसको यह जान पड़ता होगा कि हम उक्त निन्दा के पात्र नहीं हैं, उसे उक्त दोषारोपण को दूर करने के लिए यत्न कर स्वस्थ क्यों बैठना चाहिए? उक्त दूषण को दूर करने के लिए यदि हमने शिथिलता की तो हम उक्त दूषण के पात्र हैं ऐसा लोग समझ लेंगे—यह ऐसे जान नहीं पड़ता क्या? सारांश, यह तो स्पष्ट ही है कि द्वेषमूलक निन्दा से भी किंचित् अनर्थ होने की पूरी सम्भावना नहीं है। अस्तु, दूसरा विचार यह है कि अपने से जो बड़े हैं उनके दोष प्रदर्शित करने का अधिकार हमें नहीं है। यह विचार हमारे पुराने श्रद्धालु एवं भोले-भाले लोगों को यदि होता तो हमें उसका कोई बड़ा भारी आश्चर्य न होता, क्योंकि गुरुजनों के विषय में हम लोगों की पूज्यबुद्धि कैसी रहती है, सो सब लोगों को विदित ही है। पर पुरानी पागलपन की तर्कणाओं के दास्यत्व से नवीन रोशनी ने हमें मुक्त किया है। अतएव जो अपने को परम धन्य मानते हैं, "आजकल भारतवर्ष में इतने राजागण हो गए पर वर्तमान दयालु सरकार के समान प्रजा को मानसिक स्वाधीनता किसी ने भी न दी"—ऐसा जो रात-दिन गीत गाया करते हैं, अपने सम्मानित पूर्वजों की मनमानी निन्दा करने में जो आगा-पीछा कदापि नहीं देखते, हमारे प्रभु का धर्म शान्ति का सागर है, इसी कारण हमें आज्ञा है कि उसे बाहुबल से नहीं वरंच लोगों के मनों को आकर्षित कर फैलावें ऐसा जो चारों ओर ढिंढोरा पीटते फिरते हैं, वे ही मैकाले, मिल्ल जैसे ग्रन्थकारों की निन्दा पढ़ रोमांचित हो कानों में अंगुलियाँ डालें, डाक्टर विल्सन समान किसी एक व्यक्ति का किसी एक सम्बन्ध से नाम रखने को केवल छठा महापातक ही मानें, अपनी राजराजेश्वरी महारानी के चरणों पर उसकी समस्त प्रजा को उचित है कि वह अपनी धर्मनिष्ठा, सत्यप्रीति और ईश्वरप्रदत्त सदसद्विवेचना शक्ति आदि को निछावर कर डाले, ऐसा वे प्रकट में उपदेश करें यह कैसे आश्चर्य की बात है! परन्तु उक्त अधिकार मनुष्यमात्र को है या नहीं, इसका निर्णय जो क्षणभर विचारपूर्वक करेगा, उसकी समझ में सहज ही में आ जाएगा। केवल लड़कपन की बुद्धि को छोड़ मनुष्यों के गुण-दोषों के विषय में यत्किंचित् भी विचार करने की शक्ति जिसकी बुद्धि को है, उसे संसार का थोड़ा-सा ही अवलोकन करने से ज्ञात हो जायगा कि एक सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य का मिलना कठिन है, उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें अणुमात्र भी दोष न हो ऐसे मनुष्य का मिलना भी असम्भव है। दोषों का सर्वथैव अभाव तो एक परमेश्वर ही में पाया जाता है। मनुष्य के लिए उसकी स्पृहा करना, या उसकी स्थिति को अपने में मानना, इसके समान भयंकर मूर्खता और नहीं है। यदि ऐसा ही है तो कोई कैसा ही सम्मानित क्यों न हो, उसमें कुछ-न-कुछ दोष दीख ही पड़ेंगे, या कोई उन्हें प्रकाशित करे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है, पर कोई कदाचित् कहेंगे कि बड़ों में दोष रहे तो भी छोटों को उन्हें प्रकाशित न करना चाहिए। यह कथन तो चन्द्र को कलंकी कहना नहीं, सूर्य के बिम्बों पर के काले दाग देखना नहीं, इत्यादि के समान कैसा अप्रयुक्त ज्ञात होता है। क्या उक्त दोनों ज्योतियों का प्रकाश उनके दागों से कम होता है? या उन दागों का चित्र जो ज्योतिषी लोग बनाते हैं वे उसके द्वारा तेज की निन्दा करना चाहते हैं? यह कुछ नहीं उनका उद्देश्य इतना ही रहता है कि उनके यथावत् स्वरूप को प्रकट कर विद्या की उन्नति करें। उक्त कथनानुसार यह महद्दोष-विवरण केवल निर्दोष तो है ही, पर इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त प्रयोजनीय भी है। दूसरे यह, कि उसके योग से मनुष्य के वृथा दम्भ का उत्कृष्ट खण्डन हो जाता है, और उसी कारण परमेश्वर की पूर्णता की ओर उत्तमतया उसका ध्यान लगता है। कारण यह है कि उसे सुदृढ़ निश्चय हो जाता है कि मैं जिन्हें श्रेष्ठ मानता हूँ उनमें भी जब अपूर्णता दृष्टिगोचर होती है तब शेष यत्किञ्चित् क्षुद्र मनुष्यों को अपना वृथा दम्भ सहज ही में समूल त्याग देना चाहिए क्योंकि उनको तत्क्षण यह निश्चय हो जाता है कि निर्दोषी एवं सकल गुणैश्वर्यसम्पन्न सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के व्यतिरिक्त अन्य कोई नहीं है और तीसरा लाभ यह है कि बड़ों के दोषों से जो बड़ा भारी अनर्थ होता है, वह बन्द हो जाता है। किसी चतुर अंग्रेज ग्रन्थ-रचयिता ने कहा है कि "बड़े मनुष्यों के दोषों के समान भीषण एवं भयंकर अन्य कुछ नहीं है।" यह तो प्रकट ही है कि मनुष्य का स्वभाव अनुकरणशील होने के कारण बड़ों के दोषों का सहस्रावधि लोग अनुधावन करने लगते हैं और बहुतेरे तो समझने लगते हैं कि उन दुर्गुणों के अनुकरण में भी कुछ विलक्षण प्रतिष्ठा है; पर उन दुर्गुणों का ही एक बार पूर्णतया खण्डन हो गया तब उन लोगों को पुनः उसी प्रकार उसका बोध नहीं रहता। अस्तु, इसके सिवाय ऊपर हम यह कही चुके हैं कि कोई कैसा ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर उसके भी दोषों का प्रकाशित करना अनुचित नहीं है वरन् उससे कई लाभ हैं। तीसरा विचार यह है कि उक्त दोषाविष्करण द्वारा उनका उपमर्दन होता है यह समझ भी निरी मिथ्या ही है। ऊपर जो कुछ कह चुके हैं कि मनुष्य यदि अभिमान करे कि मैं सब गुण-सम्पन्न हूँ तो यह उसकी प्रचण्ड मूर्खता है। यह कथन यदि सत्य है तो उसे अपने दोषों के वर्णन का सहन न होना भी उक्त प्रकारान्तर्गत ही है। जिसकी इच्छा हो कि लोग हमारे गुणों की प्रशंसा करें, वही अपने दोषों की निन्दा श्रवण करने के लिए प्रस्तुत क्यों न रहे? क्या उसकी यही इच्छा रहा करती है कि लोग मेरे गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र को प्रकाशित कर दोषों को आच्छादित किया करें ? पर जिसने जनवृत्ति का यत्किंचित् भी अवलोकन किया होगा वह ऐसी विवेकशून्य आशा करेगा ही नहीं। इसके सिवा जैसे हम अन्यों के दोष प्रकाशित करने के लिए तृणमात्र भी संकोच नहीं करते, वैसे ही अन्यों को भी हमारे विषय में क्यों न करना चाहिए ? सबको सबके गुण-दोषों की चर्चा करने का पूर्ण अधिकार है, भेद इतना ही है कि कई बातों को स्पष्टतापूर्वक कह देने से निर्वाह हो जाता है और कई बातों से निर्वाह नहीं होता। क्या यह भले-बुरे की चुनावट यथार्थ में जग के सत्य आचरण के लिए अत्यन्त आवश्यक नहीं है ? निःसंशय यह अत्यन्त आवश्यक है, यदि लिखा जाय तो उसकी हितैषिता के विषय में एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है, और यही कारण है कि ज्ञानी पुरुष इस जनचर्चा का कभी बुरा नहीं मानते। जो गुण उनमें नहीं हैं उनकी व्यर्थ प्रशंसा होने की अपेक्षा, उनमें जो दोष हैं उनके लिए, निन्दित होना वे एक बार स्वीकृत कर लेंगे। उन्हें झूठी प्रशंसा से बहुत घृणा रहती है। तो फिर अपने यथार्थ दूषणों के लिए वे क्रुद्ध क्यों होने लगे ? अस्तु, उक्त कारणों से सहज ही ध्यान में आ सकता है कि ज्ञानी पुरुष में के यथार्थ दोष प्रकाशित करने से वे कदापि क्रुद्ध न होंगे, और दूसरे उनके प्रकाशित करने में किसीका उपमर्दन होता है, यह भी निरी झूठी समझ है।

परन्तु ग्रन्थ-प्रणेतागणों के लिए तो उक्त कथन विशेषकर आवश्यक है। यों तो व्यवहार में नातेदार स्नेही तथा अन्य सम्बन्धी आदिकों की मुरव्वत के कारण किसी व्यक्ति-विशेष के विषय में जो यथार्थ एवं उचित जान पड़ता है उसे भी स्पष्टतापूर्वक कहते नहीं बनता। उसी प्रकार सरकारी नाते से भी मनुष्य बद्ध हो जाता है। किसी का विचार (खयाल) किसी के विषय में कितना ही बुरा क्यों न हो, क्रोध, मत्सर, तिरस्कारादि से मनुष्य मन-ही-मन में कितना ही तड़पता क्यों न हो, तो भी सरकारी सम्बन्ध के कारण ऊपर से उभय पक्ष में हाँ से हाँ मिला ठकुर-सोहाती करना ही पड़ता है। ऐसा ही आईन का भी बन्धन है। प्रत्यक्ष प्रचण्ड शत्रु भी हों, वे ऐसे कि यदि एकान्त में भेंट हो जाए तो उभय शत्रु, एक-दूसरे की छाती पर बैठने से भी न चूकें, तो भी उन्हें समाज में निज-निज सम्मतियाँ स्पष्टतापूर्वक कहते नहीं बनतीं, क्योंकि उन्हें मानहानि की नालिश का भय बना रहता है। परन्तु कोई मनुष्य ग्रन्थ-प्रणयन द्वारा यदि समाज के सम्मुख आया तो उसके विषय में उक्त सब नियम परिवर्तित हो जाते हैं। उस बेचारे को आड़ के लिए वहाँ कुछ नहीं मिलता। उक्त ग्रन्थकार कैसा ही श्रीमान् हो, कैसा ही विद्वान् हो, कैसा ही मानी हो, पर जो उस पर शस्त्र उठावेगा उसके उक्त विभव से तिलमात्र भी भय मानने की आशंका नहीं है। उसके जो-जो दोष उसकी बुद्धि में आवें, उन्हें निर्भय हो लोगों पर प्रकाशित कर चाहे उस प्रकार से उसकी दुर्दशा करने के लिए वह पूर्णतया अधिकृत है। अब यह अवश्यमेव विचारणीय है कि यदि ऐसा ही है तो बिना कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी को दूषित करना, और व्यर्थ उस पर दोषारोपण कर लोगों में उसकी योग्यता कम करने के लिए यत्न करना नीचता एवं अधर्मता है। यह सत्य है कि ऐसा करने वाले लोग बहुत दीख पड़ते हैं, पर इससे उक्त अधिकार का सबको प्राप्त करना बुरा है; यह सिद्धांत कदापि नहीं हो सकता। सबकी भलाई और बुराई अपनी-अपनी भली-बुरी कृति पर निर्भर है। वही बात उक्त अधिकार की भी है। जो लोग सत्य के प्रेमी और सज्जन होंगे उनके द्वारा उसका उत्तम ही प्रयोग होगा, और जो हठीले एवं दुष्ट होंगे उनके द्वारा बुराई होगी। अस्तु, अब यदि कोई यह पूछे कि यह अधिकार सबको कैसे प्राप्त हुआ तो उसका संक्षेप में उत्तर यही है कि जैसे बाजार की चीजों को भला-बुरा कहने का अधिकार हर किसी को है वैसे ही ग्रन्थ के गुण-दोष विवेचन का अधिकार पाठक मात्र को है। हमारे कतिपय पाठकों को उक्त समता हास्यजनक जान पड़ेगी, परन्तु यथार्थ में ग्रन्थकर्ता की और दुकानदार की स्थिति बिल्कुल एक-सी है। अब इधर जब से मुद्रणालय चल निकले हैं, तब से उक्त सादृश्य अधिकतर दृढ़ हो गया है। पर बहुत प्राचीन काल से यदि देखा जाए तो समस्त संसार एक बाजार ही है और उसी बाजार में निज ग्रन्थ रूप वस्तु को लेकर कीर्ति रूप द्रव्य प्राप्त करने की आशा से ही सब ग्रन्थ-रचयितागण आते हैं फिर यदि ऐसा ही है तो बाजार में जो दशा दुकानदार को प्राप्त होती है वही यदि ग्रन्थकर्ताओं को प्राप्त हुई तो उन्हें खेद क्यों मानना चाहिए? सहस्रावधि ग्राहकगण और सहस्रावधि उनकी उक्तियाँ। उक्त दुकानदार को मूकभाव धारण कर उन सब लोगों की बातें जैसे सहनी पड़ती हैं, वैसे ही लोगों द्वारा निज ग्रन्थ की नानाविध आलोचनाएँ और सम्मतियाँ ग्रन्थकार को मूकभावपूर्वक श्रवण क्यों न कर लेनी चाहिए? अथवा रंगभूमिस्थ नाटक-पात्र के अभिनय की, वा किसी सभा में किसी वक्ता महाशय ने वक्तृता दी तो उसके व्याख्यान की परीक्षा करने का अधिकार सब दर्शकों तथा श्रोतागणों को नहीं है क्या और उक्त उभय व्यक्ति के निज-निज कलाओं में अत्यन्त निपुण होने पर भी सब लोगों ने यदि थपोड़ी पीटकर उनका उपहास किया, तो उससे हम अपमानित हुए, ऐसा जानकर उक्त उभय व्यक्तियों ने लोगों पर यदि मानहानि की नालिश की तो वह उन्हें कितनी फबेगी? न्यायाधिकारी उन्हें क्या समझावेगा? उक्त तीन दृष्टान्तों द्वारा हमारे पाठकों को तत्क्षण विदित हो जाएगा कि किसी के भी ग्रन्थ की मनमानी आलोचना करने को हर कोई पूर्णतया अधिकृत है। मानहानि का एक्ट हमने अद्यावधि तो पढ़ा नहीं है और आगे कभी पढ़ेंगे वा नहीं इसमें भी सन्देह है, पर हमें इतना स्पष्टतया ज्ञात होता है कि यदि मैकाले, जॉनसन आदि बड़े-बड़ समादृत ग्रन्थप्रणेतृगणों ने निज-निज ग्रन्थों में बड़े-बड़े कवियों, इतिहासलेखकों, तत्त्ववेत्ताओं आदि के विषय में मनमानी समालोचना की है तो क्या वह मान्य नहीं है? देखिए, स्वयं पोप कवि ने बेकन् को सम्बोधन दे—"The greatest, brightest, meanest of mankind" (सब मनुष्यों से अत्यन्त बुद्धि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्, अतिचतुर और अत्यन्त नीच) ऐसा कहा है, यदि पोप मानहानि के अभियोग से अभियुक्त नहीं होता और उस जगविदित अद्वितीय पण्डित की कीर्ति विद्वत्समाज में अणु मात्र भी कम नहीं हुई तो मैकाले, मिल्ल-सदृश ग्रन्थकर्ता कैसे ही श्रेष्ठ हों और उन्हें हमने कितनी ही गालियाँ दी हों, तो भी उक्त बात के समान ही दूसरी बात स्थिर नहीं हो सकती।

सारांश यह कि कोई कितनी ही योग्यता का ग्रन्थकार क्यों न हो, पर उसके ग्रन्थ की मनमानी चर्चा करने के लिए सभी अधिकृत हैं और जब तक हम किसी के घर-बार की चर्चा न उठाकर केवल लौकिक सम्बन्ध से उसके विषय में बोलते हैं तब तक उसकी यथेच्छ शोभा करने में कोई अपराध नहीं है। पर इसके साथ इतना तो आवश्यक ही है कि जो उक्त शोभा करने के लिए कृत-निश्चय होगा, उसे उचित है कि वह पहले ही अपनी रक्षा के लिए उत्तम सामग्री एकत्रित कर रक्खे, और मन को भी धीरज दे पक्का कर ले जिससे लोगों के द्वेष-भार से उसका मन दुःखित न होने पावे।

(15) अस्तु, अब अन्त में उक्त गुण-विशिष्ट समालोचकगणों की सृष्टि के कारण भाषा के और तद्द्वारा लोगों के कौन-कौन से हित होते हैं, उन्हें कहते हैं। भले-बुरे की विवेचना न कर मनमाना अन्न खाने से जैसे शरीर का पोषण होना तो एक ही ओर रहता है पर उलटे उसे नाना प्रकार के रोग लग जाते हैं, वैसे ही ग्रन्थों के पठन का भी है। जो ग्रन्थ यथार्थ में पढ़ने-योग्य हों अर्थात् जिनकी भाषा-प्रणाली उत्तम, विषय-प्रतिपादन प्रौढ़ एवं सुरस, जिनसे मनोरंजन वा उपदेश अथवा ये दोनों एक ही साथ प्राप्त होते हैं, उन्हें ही पाठकों को पढ़ना चाहिए। पर यह होने के लिए उक्त प्रकार के ग्रन्थ कौन से हैं सो पहले ही ज्ञात हो जाना चाहिए। यह ज्ञान पाठक को प्रथमतः बिल्कुल नहीं रहता। चिरकाललौं अनेकों ग्रन्थों के अवलोकन करने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि अमुक ग्रन्थ पढ़ने के योग्य नहीं है, इसका परिचय पाठकों को कराने वाले लोग वास्तव में दूसरे ही हैं। ये लोग समालोचकगण हैं। प्राचीन काल में श्रीमान् लोगों के यहाँ जैसे 'भोज-परीक्षक' रहा करते थे, और उनका यही कर्तव्य था कि पारस होने के पूर्व ही पदार्थ उत्तम बना है वा नहीं, इसकी परीक्षा कर लेना। यदि वह उत्तम हुआ तो अपने स्वामी को देने की अनुमति देना, अन्यथा नहीं। ग्रन्थकर्तृगण भी पाकाध्यक्ष के समान हैं। इन सबकी अनुमति वा बहुमति से जो पदार्थ उत्तम निश्चित हो, वही स्वामीगणों के योग्य होता है। अस्तु, इस प्रकार उत्तम गुण-दोष-विवेचकों के रहने से लोगों का हित होता है, और यदि एक बार उत्तम ग्रन्थरचयिता गण चुन लिए गए तो उन्हें ही प्रोत्साहन मिला करता है और तद्द्वारा भाषा का उत्तरोत्तर सुधार होता जाता है। वे उसके व्याकरण को यथावत् कर उसकी अव्यवस्थाओं को दूर करते हैं, और कई नये शब्द और नवीन प्रयोगादि प्रचलित कर उसकी समृद्धि करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस प्रकार उसकी ऊर्जित दशा का एक बार प्रारम्भ हुआ कि फिर कविजन-परम्परा के प्रसाद से उस पर अधिकाधिक कला दिखाई देती है, और कुछ काल में उपयुक्त भाषाओं की श्रेणी में स्थान मिलने का सौभाग्य उसे प्राप्त होता है। यह योग्यता प्राप्त होने पर वह भाषा लोगों में ज्ञान का प्रसार एवं संचार करने के लिए कितनी साधनभूत होती है और यह प्रसार देश के गौरव का कैसा कारण है, इत्यादि बातें सब विचारशील पुरुषों को पूर्णयता विदित ही हैं। अस्तु, यह भी एक बड़ा भारी लाभ मानना चाहिए कि निष्पक्षपाती और सहृदय ग्रन्थ-परीक्षकों के कारण बुद्धिमान् मनुष्यों को साधारण लोगों के समान मूर्ख एवं दुष्ट धनी लोगों की खुशामद करने को वा राजकीय उच्चपदाभिषिक्त जनों के सम्मुख हाँजी-हाँजी कर लघुता का बोझ उठाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, वरन् उनकी बुद्धिमत्ता के अत्यन्त अनुकूल, उचित और शोभादायक जो निःस्पृहता और स्वतन्त्रता है वह उन्हें स्वेच्छानुकूल प्राप्त होती है।[1]

1. जब से मुद्रणालयों का प्रचार हुआ तब से यह उत्तम व्यवस्था ग्रन्थकारों के अनुकूल हुई। इग्लैण्ड में एतद् द्वारा सम्पत्तिवान् हो पुनः जीवन के शेष दिन स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत करने वाला पहला कवि पोप हुआ है। होमर के महाकाव्य के अनुवाद द्वारा लगभग पचास हजार से अधिक मुद्रा उसे प्राप्त हुईं और उन्हीं के कारण घर-द्वार, बाग-बगीचे इत्यादि बड़े समारोह के साथ वह रहने लगा। उसने कहा है—"And thanks to Homer Since ! live and thrive Indebted to no prince or peer alive." ऐसे ही सर वाल्टर स्कॉट को व्यवहार में 15 लाख का घाटा आया था, उसे उसने निज उपन्यासादि की आय द्वारा एक-एक कौड़ी तक दे डाला। हमारी महारानी के सन्निकटवर्ती राजकवि टेनीसन की प्राप्ति भी ऐसी ही थी। वर्ष-दो वर्ष में एक-आध काव्य रचा कि उनके तीन-चार लाख हो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी-प्रचारिणी पत्रिका 1898 ई०

राष्ट्र-भाषा*

(पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा अनुवादित)

यद्यपि यह विषय बड़ा गम्भीर देख पड़ता है, तथापि हम इसे मुख्य चार भेदों में विभक्त करते हैं :

(1) राष्ट्रीयता के लिए एक भाषा की कितनी आवश्यकता है और उसका समाज पर क्या परिणाम होता है ?

(2) कौन-सी भाषा का एक भाषा (राष्ट्र भाषा) होना सम्भव है ?

(3) उसके सम्पादन में कठिनाई कौन-सी हैं ?

(4) शासक तथा जन समाज का इस विषय में क्या कर्त्तव्य है ?

इनमें से प्रथम पहिले भेद की आलोचना की जाती है—अर्थात् यह दिखलाया जाता है कि एक राष्ट्रीयता के लिए एक भाषा की, कितनी आवश्यकता है ।

एक राष्ट्रीयता के लिए (1) एक राज्य, (2) एक धर्म, (3) एक बोली या भाषा (4) और एक जाति—इन चार बातों की अत्यन्त आवश्यकता रहती है ।

---

* पण्डित वामन पेठे ने मराठी भाषा में पहिले यह लेख लिखा था और इस पर बम्बई प्रान्त के निम्नलिखित प्रसिद्ध पत्रों और गण्य-मान्य विद्वानों ने अपनी अनुकूल सम्मति प्रकाशित की थी । हिन्दी भाषा के हितैषियों की प्रसन्नता के हेतु तथा हमारी हिन्दी पर दूसरे लोगों के क्या भाव हैं इसको प्रकाश करने के लिए यह लेख उसके आश्रय पर लिखा गया है । (सन् 1895 ई०)

समाचारपत्र—विविध विज्ञान-विस्तार, केरल-कोकिल, शालापत्रक, श्रीवेंकटेश्वर समाचार, केशरी, सुधारक, इन्दुप्रकाश, मुम्बई-वैभव, करमणूक, प्रभाकर, नेटिव ओपिनियन, ज्ञानप्रकाश, उद्योग-वृद्धि, विक्षिप्त, जगद्धितेच्छु और निर्माण ।

विद्वान्-पण्डित बाल गंगाधर तिलक बी० ए०, एल् एल् बी०, प्रोफेसर राजाराम रामकृष्ण भागवत और पण्डित महादेव राजाराम बोडस एम० ए० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें से पहिली बात अधिकतर गुरुतापूर्ण है, उसके अभाव में एक राष्ट्र की कदापि सम्भावना नहीं हो सकती। हमारी दयालु अंग्रेज सरकार की असीम कृपा से आज हमें यह लाभ प्राप्त हो चुका है। यहाँ पर यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि एक राष्ट्रीयता के लिए ऊपर तीन बातों की भी पहिले की नाईं विशेष आवश्यकता है। यूनाइटेड स्टेट्स की बात से यह सहज ही में लक्षित हो सकता है। वहाँ भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी, भिन्न-भिन्न जातियों तथा भाषाओंवाले लोग बसते हैं, तो भी वे एक राष्ट्र संज्ञा पाने के योग्य हैं; साथ ही यह कहा जा सकता है कि उक्त सामग्री की अनुकूलता राष्ट्र की दृढ़ता का कारण होती है, इसकी जितनी-जितनी एकता अधिक पायी जाती है उतना ही राष्ट्र अधिक बलवान् होता है। इस कथन से यह बात भले ही निर्धारित हो कि, एकराज्यता के सदृश एक भाषा की योग्यता कदापि नहीं हो सकती, तो भी उसकी योग्यता बहुत बढ़के है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि जिन लोगों का एक राष्ट्र होता है, उनके सुख-दुःख समान होने के लिए उनके विचार-कलापों का एक होना अत्यन्त आवश्यक है। एक भाषा के अभाव में एक विचार का होना दुःसाध्य तो है ही, पर इसके व्यतिरिक्त कभी-कभी उसके परिणाम नितान्त भयंकर हुआ करते हैं। इसके उदाहरण में एक कानड़ी स्त्री और मराठे पति की कही जाती है, जो स्यात् बहुत लोगों को विदित होगी। केलि-मन्दिर में उक्त दम्पती की भेंट होने पर पत्नी ने प्रेम-पूर्वक निज प्राणवल्लभ से "ऐली मेली" (ताम्बूल) ग्रहण करने की प्रार्थना की। उक्त 'ऐली-मेली' का अर्थ उक्त पति ने यह समझा कि मेरी ऐली नाम की बहन मृत हो गयी, अतः वह रोने लगा और हाथ को कपाल पर रख 'हरिसत्ता' (इच्छा ईश्वर की) कह खेद करने लगा। उक्त 'हरिसत्ता' का अर्थ उक्त कानडी स्त्री ने यह समझा कि मेरा हरि नाम का भाई मृत्यु को प्राप्त हो गया और तदर्थ वह शोक करने लगी (क्योंकि उसकी भाषा में 'सत्ता' शब्द का अर्थ 'मृत होता है)। सारांश, उनकी भाषा भिन्न होने के कारण उनके सुख का दुःख हो गया। यह बात कदाचित् कल्पित हो, पर इसका तात्पर्य यथार्थ है। यह बात फेगन साहब के मुकदमे से और भी स्पष्ट हो गयी है। जब दूसरी भाषा का रहस्य न जानने के कारण ऐसे बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं, तो फिर एक विचार की तो बात ही बहुत दूर है।

अपना अभिप्राय दूसरे को न जान पड़े, इसलिए लड़के मिताक्षरी बोलते हैं। कुछ वर्णों के विपर्यय से यह भाषा बना ली जाती है। 'अ' के स्थान में 'क', 'ख' के स्थान में 'ग' आदि पर्याय रहता है।[1] जिसे यह व्यवस्था ज्ञात नहीं रहती, उसे

1. अकौ खगौ घङश्चैव चटौ तपौ परस्परौ।
यशौ रषौ लसच्चैव हवालांक्ष मिताक्षरी॥
अ=क, (आ=का, इ=कि इत्यादि) ख=ग, घ=ङ- चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ,)=टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण), तवर्ग=पवर्ग, य=ज्ञ, र=ष, ल=स, ह=व, ल=क्ष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलनेहारा स्वाभाषावाला होने पर भी कहीं कुछ नहीं समझ सकता। तो इस प्रकार से भाषा-भेद के कारण जानने के मार्ग में बाधा उपस्थित होती है। अंग्रेजी बोलनेवाले दो मित्रों का परस्पर में जितना समभाव होगा उतना केवल हिन्दी आदि भिन्न भाषा जाननेवालों में न होगा। यह बात हम लोग नित्य-प्रति देखते हैं। यह अंग्रेजी बोलनेवाले हैं, इनका और अपना मेल कदापि न मिलेगा, ऐसा मन में जानकर वह अपने को दूर कर लेते हैं। यही कारण है कि, उनके सहवास और एक विचार होने के लिए आपत्ति उपस्थित होती है। तिस पर से यह बात सिद्ध ही नहीं है कि, एक भाषा के कारण एक विचार होते ही हैं। एक भाषावाले लोग भी नाना प्रकार के वाद-विवाद करते हैं, पर उनका प्रधान अभिप्राय एकता करने का ही रहता है। जिनकी भाषा भिन्न होती है वे कारण-विशेष के व्यतिरिक्त परस्पर का सहवास नहीं करते। यह बात वक्तृता की सभाओं से और भी स्पष्ट हो सकती है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि इन सभाओं का मुख्य उद्देश्य वक्तागण प्रस्तुत कर समस्त देश का कल्याण करना ही रहता है। राष्ट्रहित की गम्भीर चिन्ता जिन्हें रहती है, ऐसे कई मनुष्य उक्त सभाओं में उपस्थित होने के लिए समर्थ होने पर भी उपस्थित नहीं होते, इसका कारण यही कहा जाता है कि वहाँ जिन भाषाओं में वक्तृता दी जाती है वह भाषा वे लोग नहीं समझ सकते और जिन शब्दों का अर्थ नहीं जान पड़ता उन्हें श्रवण करना मानो एक प्रकार का दण्ड भोगना ही है। कहो, यह किसे प्रिय होगा?

एक राष्ट्र होने के लिए जिन सामग्रियों की आवश्यकता है, उनके प्रचार करने के लिए हमारे देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं के पत्र-सम्पादकगण अपने-अपने चित्त के अनुसार भरपूर यत्न करते हैं, पर उनके प्रयत्न को यथोचित यश-लाभ नहीं होता। हमारी भाषा में दो-चार जो सुप्रसिद्ध समाचार-पत्र हैं, उनके ग्राहकों की संख्या 28 कोटि प्रजा में केवल हजारों पर ही शेष हो जाती है। यही भाषा यदि राष्ट्र-भाषा होती तो उक्त पत्रों के ग्राहकों की संख्या करोड़ों पर न पहुँचती तो लाखों पर अवश्य ही पहुँच जाती। भारतवर्ष के किसी विशाल नगर के राष्ट्रभक्तों की यदि अपने राष्ट्रीय विचार अन्य नगरस्थ लोगों पर प्रकाशित करने की इच्छा हो तो उन्हें प्रत्येक भाषा सीखकर अपने विचार लोगों पर प्रकाशित करने पड़ेंगे। यदि मान लिया जाय कि प्रत्येक भाषा सीखने के लिए पाँच वर्ष लगेंगे तो भारत में आज 100 भाषाएँ हैं, उन्हें सीखने के लिए उनको 10-12 जन्म तो अवश्य ही लेने पड़ेंगे। क्या ही अच्छा हो, यदि 28 कोटि प्रजा की एक भाषा हो जाय और काशी से रामेश्वर और पंजाब से आसाम पर्यन्त प्रत्येक मनुष्य को विचार करने का एक साधन उपलब्ध हो जाय तो यह समझ लेना चाहिए कि भारत की आधी विपत्ति दूर हो गयी। एक भाषा बोलनेवाले स्त्री-पुरुष में प्रायः जो कलह हुआ करता है और जूतों में दाल बँटा करती है, उसका कारण प्रायः यही कहा जाता है कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर के उद्देश्य भली-भाँति नहीं समझ सकते। भिन्न भाषावाले मनुष्य को द्वेष-भाव न होने पर भी मौन धारण करना पड़ता है। एतावता एक विचार होने के लिए बड़ी कठिनता उपस्थित होती है। उक्त प्रतिपादन से यह निर्धारित हो चुका कि, एक राष्ट्रीयता के लिए एक भाषा की नितान्त आवश्यकता है। उसके सम्पादित होते ही परस्पर के विचार समझने-बूझने के लिए मार्ग खुल जायगा। ऐसा होने पर यदि कलह भी होगा तो भी उसका परिणाम हितकारक ही होगा।

अब इस बात की मीमांसा करनी चाहिए कि एक भाषा का होना सम्भव है वा नहीं? पृथ्वी से सूर्य लोक को जाने के अर्थ यदि रेल बन जाय तो सूर्य लोक की यात्रा बड़ी सुगमता के साथ हो सकेगी, परन्तु यह बात असम्भव है। इसी प्रकार से लोग समझते हैं कि भारत की एक भाषा होना बड़ा दुःसाध्य है और कोई-कोई यह कहते हैं कि, एक भाषा होने पर भी उसकी बोलियाँ परस्पर विभिन्न बनी रहेंगी। तो इससे यही जान पड़ता है कि, एक भाषा करना सम्भव है। अपर लोग यह सोचते हैं कि यदि एक भाषा कर भी दी जाय, तो उसका चलना असम्भव है। इसमें सन्देह नहीं है कि, उक्त लोगों का अनुमान अंशतः सच्चा है, पर पूर्णतया यथार्थ नहीं है। एक विशेष हेतु की पूर्ति के लिए एक-एक भाषा का होना सम्भव है। इधर के एक विद्वान् ने घोर रूप से आन्दोलन किया है कि, सब विद्वानों की एक भाषा होनी चाहिए, और उसी भाषा में संसार के समस्त विद्वानों के ग्रन्थ लिपिबद्ध करने चाहिएँ, और भिन्न-भिन्न भाषा जाननेवालों को उन ग्रन्थों का अपनी मातृभाषा में अनुवाद करना चाहिए। इस प्रतिपादन द्वारा जगत् का ज्ञान बहुत शीघ्रता के साथ वृद्धि लाभ करेगा। इसके सीखनेवाले इने-गिने होने के कारण इसका होना सम्भव है।

समस्त जगत् के विद्वानों की भाषा यदि एक होना सम्भव है, तो केवल भारतवर्ष की एक भाषा होना उसकी अपेक्षा बहुलांश में सम्भव है। जिस प्रकार की एक भाषा करने के लिए हम लोग यत्न किया चाहते हैं, वह हमारा यत्न नवीन नहीं है। इस प्रकार का उद्योग सम्प्रति जगत् में किया जा रहा है। योरोप महादेश में रशिया बड़ा विशाल देश है। उसमें भारत की नाईं अनेक श्लेविश उपभाषाएँ प्रचलित हैं—(1) सर्वियन, (2) क्रोशियन, (3) स्लेहेनियन, (4) स्लेहेकिन, (5) वेंडिश, (6) रुथेनियन और (6) पोलिश आदि भिन्न-भिन्न भाषाएँ रशियन भाषा की सहोदर भाषाएँ हैं। उन सबको तोड़ के राजकीय सुधार करने के अभिप्राय से एक रशियन भाषा बनाने का उद्योग किया जा रहा है।

"Possibility of the common literary language for the slavnations."

इस लेख में रशियन एक भाषा किस प्रकार से करनी चाहिए, कठिनाइयों को कैसे दूर करना चाहिए, आदि के विषय में निरूपण किया गया है, और यह प्रदर्शित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है कि यह भाषा केवल राजभाषा ही नहीं होगी किन्तु समाज की भी होगी। उक्त लेख ही इस लेख की नींव है।[1]

क्या अंग्रेजी हमारी राष्ट्र-भाषा हो सकती है ? अपरिपक्व विचार वाले मनुष्यों के विचार में यही बात उठती है कि भारत की यदि एक भाषा होनी होगी तो वह अंग्रेजी ही होगी। पर किंचित् सूक्ष्म विचार करने और भाषाशास्त्र-विशारदों की मीमांसा का परिशीलन करने से यह बात तत्क्षण असम्भव बोध होने लगती है।

(अ) अंग्रेजी हमारे राजकर्तृकगणों की भाषा है। उसका फैलाव भारत में अत्यन्त शीघ्रता के साथ हो रहा है। प्रत्येक जिले में कम से कम एक अंग्रेजी की पाठशाला पाई जाती है। राज-भाषा होने के कारण इसके सम्पादित करने के अनेक साधन अनुकूल हैं। आजकल इसके द्वारा मनुष्य प्रतिष्ठा, सम्मान और द्रव्य-लाभ कर सकता है। राजकीय स्वत्व सम्पादित करने की बात हमको इसी भाषा द्वारा सूचित हुई है। इस भाषा की सहायता यदि न होती तो आज दिन हम निज स्वत्वों के प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करने के योग्य न होते। पार्लियामेंट महती सभा से

---

1. उक्त लेख के दृष्टिगत होने के पूर्व 'भारत की एक भाषा' करने की बात हमें असम्भव जान पड़ती थी क्योंकि भारत एक सामान्य राष्ट्र नहीं है किन्तु एक खण्ड है। इसकी आर्य देश-भाषाओं के विभाग आजकल के विद्वानों ने ये किये हैं 1 सिन्धी 2 काश्मीरी 3 पश्चिमी 4 पूर्वी पंजाबी 5 गुजराती 6 राजपुतानी 7 हिन्दी 8 मध्य पहाड़ी 9 खास वा नैपाली 10 बैसवाड़ी 11 बिहारी 12 मराठी 13 बंगाली 14 आसामी और 15 उड़िया। यूरोप महादेश के अंग्रेज, फ्रेंच आदि राष्ट्रों की नाईं इन पृथक् राष्ट्रों की राष्ट्रीयता नष्ट कर उन्हें एक भाषा की अमलदारी में लाना मृग-जल का अनुधावन करने का सा ही प्रतीत होता था। क्योंकि रशिया को छोड़ यूरोप के शेष राष्ट्रों की समता का अकेला भारत है। उक्त निबन्ध के पठन द्वारा रशिया की एक भाषा करने का विचार तत्रस्थ लोग कर रहे हैं यह जब ज्ञात हुआ, तब भारत बड़ा भारी देश दे यह को हौआ कैसा जान पड़ता था सो सहज जान पड़ने लगा। क्योंकि यूरोप और एशिया महादेश में जो रशिया फैला हुआ है, इसमें हमारे भारत ऐसे चार-पांच रक्खे जायें तो न जाने वे कहाँ समा जायेंगे और उसमें शेष स्थान बना ही रहेगा। क्षेत्रफल की बात को छोड़ पृथक् राष्ट्र का ही विचार किया जाय तो भी राष्ट्रों की रशियन एक भाषा किया चाहते हैं। उनकी संख्या, अनुमान से जान पड़ती है कि भारत के राष्ट्रों से कहीं अधिक होगी। इस विषय पर सविस्तार लेख लिखने का अवसर होने पर यह बात अधिक स्पष्टतया दिखलायी जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वत्व प्राप्त करने की जो अभिलाषा हम रखते हैं सो अंग्रेजी के सिवा पूर्ण नहीं हो सकती।

(आ) अंग्रेजी भाषा ज्ञान का अगाध समुद्र है। संसार भर का बहुत-कुछ ज्ञान अंग्रेजी में इकट्ठा किया गया है। हमें अपने ही वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी द्वारा मोक्षमूलर साहब की शरण लेनी पड़ती है। अंग्रेजी में नाना प्रकार के शास्त्र विद्यमान हैं, हमारी भाषा में जिनकी संज्ञा तक अभी स्थिर नहीं हुई है।

(इ) अंग्रेजी सुधार की मोहनी वा मदारी की लकड़ी है, जहाँ इसका प्रवेश होता है वहाँ सुधार आपों-आप हो जाता है। मनुष्य के स्वत्व का ज्ञान उसे अंग्रेजी द्वारा ही हुआ है। भारत की भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले लोग भारत के भिन्न-भिन्न राष्ट्र ही हैं। चिरकाल से इन लोगों में परस्पर में वैमनस्य और आक्रमण हुआ करते थे। इनकी एकता करने के लिए उनके पूर्व परिचय को पहले नष्ट करना होगा। विदेशी अंग्रेजी भाषा का यहाँ प्रवेश होते ही यहाँ की सब भाषा निज धाम को प्राप्त होंगी और नीचता का लोप होकर ऐक्य हो जायगा।

जो लोग अंग्रेजी भाषा को राष्ट्रभाषा किया चाहते हैं वे उसके पोषणार्थ उक्त बातें कहा करते हैं। विचार करने पर यदि उक्त बातें प्रतिपादित हो जायँ तो फिर आज के विषय के लिए और विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। फिर केवल अंग्रेजी के विशेष वृद्धि का उपाय सोचना मात्र शेष रह जायगा, उसे सोच लिया कि समस्त चिन्ता दूर हुई।

अंग्रेजी भाषा राज-भाषा है अतः वह समस्त भारत की भाषा हो सकेगी, यह बात विचार-संगत नहीं जान पड़ती। जिस समय जो राजा होता है, उस समय उसकी भाषा का समादृत होना तो प्रकृति-सुलभ ही है। भारत में मुसलमानों का राज्य अनुमान हजार-आठ सौ वर्ष लौं रहा, पर तो भी उनकी भाषा सम्पूर्ण भारत में नहीं फैली। उन लोगों ने हिन्दुओं के धर्म को नष्ट करने में अणुमात्र भी कसर बाकी नहीं रक्खी, वे मुसलमान होन वालों को बड़ी-बड़ी जागीरें दिया करते थे, पर तो भी उनकी अरबी व पर्शियन भाषा का भारत में प्रचार नही हुआ। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि उनके कुछ शब्द यहाँ की प्रधान बोलियों में मिल गये। जिस प्रान्त में ये शब्द अधिकता के साथ मिले हैं, वहीं की भाषा को लोग उर्दू के नाम से पुकारने लगे। इसके अनन्तर जब मराठों का प्रभाव बढ़ा तब दिल्ली से अटक-पर्यन्त उनके प्रताप की पताका फहराने लगी। साथ ही साथ पूर्व को ओड़ीसा में, दक्षिण को कर्नाटक में और उत्तर को दिहली-मालवे की ओर मराठी समादृत होती गई। उस समय वह यहाँ तक बढ़ी कि लोगों को जान पड़ने लगा कि स्यात् यही राष्ट्रभाषा हो पर शीघ्र ही उसकी वह अवस्था जाती रही अब अंग्रेजी का राज्य होने के कारण वही बात बोध होने लगी है। ईश्वर करे यह राज्य भारत में सदा बना रहे। पर यह जगत परिवर्तनशील है और इतिहास भी परिवर्तन ही के पक्ष में सदा से साक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता आया है, अतएव यह निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है कि सृष्टि के अन्त तक यहाँ अंग्रेजों के साथ अंग्रेजी भी राजभाषा बनी रहेगी ? यह बात तो स्पष्ट है कि जबलौं राज्य बना है, तबलौं अंग्रेजी का महत्त्व दृढ़ रूप से बना ही रहेगा। पर अब उच्च शिक्षा के मार्ग में बहुत कठिनाइयाँ उपस्थित हैं। अंग्रेजी सीखने वालों को पूर्व की नाईं सम्मान और द्रव्य की प्राप्ति अब नहीं होती। एतावता पहले के समान आगे लोग वैसे दत्त-चित्त हो अंग्रेजी पढ़ेंगे वा नहीं, इस विषय में शंका ही है। इसके अतिरिक्त अंग्रेज लोग बड़े विवेकी एवं विचारशील हैं। मुसलमानों के सदृश धर्म पर वे आक्रमण नहीं करते देशी भाषाओं को वे उत्तेजना देते हैं, और लिबरल एज्यूकेशन शीघ्रता के साथ देने का उसका मनोदय होने के कारण अंग्रेजी की अपेक्षा देशी भाषा ही शीघ्र उन्नति-लाभ करने वाली हैं। स्वदेश और स्वधर्म में हमारी प्रीति उत्पन्न होती जाती है, इसका कारण भी वही लोग हैं। हमारे देशी रजवाड़ों की उन लोगों ने बहुत-कुछ रक्षा की है। इस प्रतिपादन से यह स्पष्टतया लक्षित होता है कि हमारे स्वत्व की रक्षा और हमारी उन्नति के लिए वे हमारी देशी भाषाओं को नष्ट न करेंगे, अतः अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

(2) यह सच है कि अंग्रेजी ज्ञान का समुद्र है। पर साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि यह ज्ञान उसने सम्पूर्ण जग की भाषाओं से ग्रहण किया है। यह तो कोई बात ही नहीं है कि भारत की जो राष्ट्रभाषा होगी उसमें यह ज्ञान लाते न बनेगा। उस भाषा में अंग्रेजी और वैसे ही फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं से अनुवाद किये जाने पर उक्त हेतु बहुत सरलता से सफल होगा। अंग्रेजी में यद्यपि ज्ञान अथाह भरा है तथापि वह अन्य लोगों की भाषा होने के कारण हम नेटिवों को उसका सम्पादित करना कठिन कार्य है। यही कारण है कि हमारे देश-हितैषी विद्वान् लोग देश भाषा द्वारा शास्त्रीय शिक्षा देने के लिए प्रयत्नवान हो रहे हैं। अंग्रेजी की कठिनता निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है। 'कुत्ते' का अंग्रेजी द्वारा नाम बोध करने के लिए हमें स्वभाषा की अपेक्षा तिगुना परिश्रम उठाना पड़ता है। D, O, G, डी, ओ, जी, डाग अर्थात् कुत्ता, अर्थात् पहले स्पेलिंग, फिर उच्चारण और उसके अनन्तर देशी भाषा द्वारा ज्ञान। इस परिश्रम का कुछ पारावार है। एक अंग्रेजी भाषा सीखने के लिए देशी तीन भाषा सीखने के समान परिश्रम और व्यय उठाना पड़ता है। परन्तु उपायान्तर न होने के कारण बेचारे लोगों को यह सब करना ही पड़ता है और बारह वर्ष लौं लगातार परिश्रम कर अन्त में नेटिव के नेटिव ही कहाते हैं। हमारे अंग्रेजी के कृतविद्य एल० एल० बी० दिन भर के परिश्रम के परिहारार्थ अपनी प्रिया को My dear come here कहकर बड़े प्रेम से पुकारते हैं। प्रिया को अंग्रेजी की बास तक नहीं सुहाती। वह उक्त प्रेम-गर्भित पुकार को सुनकर कहती है : आग लगे इस अंग्रेजी में। यहाँ इसका क्या प्रयोजन है ? मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता, न जाने डियर किसे कहते हैं ? इस पर प्राण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति कहते हैं : डियर का अर्थ, तुम हमारी प्राणप्रिया हो। भला कं कं क्या है ? तुम इधर आओ उसका यह अर्थ है। बलिहारी है तुम्हारी। क्या ये बातें अपनी बोली में नहीं बोलते बनतीं ? मैं तो समझी थी कि आज मुझे कुछ गालियाँ मिल रही हैं। अब हमारे विवेकी पाठकों को यह बात अपने विचार-क्षेत्र में लेनी चाहिए कि जब एल० एल० बी० के प्राणप्रिय मित्र की यह दशा है तो फिर अपर लोगों को यह भाषा कितनी कठिन बोध होती होगी। हिन्दी भाषा यद्यपि अधीत नहीं रहती, तथापि उसका भाव उसे शीघ्र ही ज्ञात हो जाता है—हे मेरी प्यारी इधर, आओ। यह शब्द उसकी मातृभाषा के निकटवर्ती होने के कारण उसे तत्क्षण विदित हो जाते हैं। सारांश, अंग्रेजी भाषा अन्य लोगों की भाषा होने के कारण और उसके सम्पादनार्थ प्रचण्ड परिश्रम की आवश्यकता होने के कारण स्त्री-बालकों से भिन्न श्रेणी के लोग पर्यन्त इसका सब जाति की भाषा होना दुःसाध्य है। अब पूर्व के दोष भाषा के नाश से विस्मृत न होंगे, किन्तु वे ज्ञान-वृद्धि से ही विस्मृत होंगे।

(3) अंग्रेजी भाषा यद्यपि सुधार की मोहिनी है, तथापि उसके शब्दों में सुधार करने वाला गुण अणुमात्र भी नहीं पाया जाता। वैदिक काल के लोगों का विश्वास था कि अमुक शब्द का उच्चारण करने से अमुक फल प्राप्त होता है, पर अब इधर वैसे भोले लोग नहीं रहे, और यदि कहीं पाये भी जाते हैं, तो अपठित समाज में ही पाये जाते हैं—विद्वन्मण्डली में उनका सर्वथा अभाव ही रहता है। सुधार जो होता है, सो अंग्रेजी भाषा से नहीं होता, किन्तु उसके विचार-कलापों से होता है। वे विचार भारत की किसी एक भाषा में प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

अब इस बात की आलोचना की जाती है कि यदि कोई हठात् कहे कि हमारी राष्ट्र-भाषा अंग्रेजी ही होनी चाहिए तो उसके सम्पादित करने में कितना समय लगेगा। भारत में अंग्रेजों का शासन आरम्भ हुए अभी कहीं सौ और कहीं डेढ़ सौ वर्ष बीते हैं। 1881 की मनुष्य-गणना की विवरणी से ज्ञात होता है कि उस समय तक भारत की 25 कोटि प्रजा में केवल दो लाख अंग्रेजी बोलने वाले थे। 1981 की मनुष्य-गणना से जाना गया कि 3 कोटि लोग बढ़े। तो इन सब बातों की मीमांसा करके पण्डित लोगों ने अनुमान किया है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजी भाषा प्रचलित होने के लिए 75 से ले 50000 (पचास हजार) वर्ष लौं लगेंगे। परन्तु नितान्त सरल एवं सुबोध हिन्दी को एक भाषा बनाने के लिए लगभग सात आठ सौ वर्ष लगेंगे। भारत की विपत्ति को दूर करने तथा लोगों के एक विचार होने के लिए एक भाषा की परम आवश्यकता है—और यह जितना शीघ्र हो उतना ही भला है। राजकीय विचारों की भाषा आज अंग्रेजी हो गई है वैसे ही मुसलमानों के राज्य में फारसी हो गई थी। पर समाज की एक भाषा हुए बिना जाति को दृढ़ता नहीं प्राप्त होती। उसके सम्पादनार्थ हमें आज ही बीजारोपण करना उचित है। अंग्रेजी द्वारा हमारा अभिप्राय 50 हजार वर्षों में सफल होगा। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी ऐसी देशी भाषा द्वारा वह एकहजार वर्ष के भीतर ही हो जायगा। एतावता सामाजिक भाषा अंग्रेजी न हो सकेगी, यह प्रदर्शित करने के हेतु काल्डवेल-सरीखे विद्वानों ने लेख लिपिबद्ध किये हैं।[1] और इसके सिवाय इह्वानजलिस्टिक कागज

---

1. देखिए द्राविड भाषा का व्याकरण बनाने वाले सुप्रसिद्ध काल्डवेल साहिब क्या कहते हैं।

"I do not think, howover, that English is likely ever to become the vernacular of any class of the Hindus or even that it is likely to be used to any considerable extent as a lingua frama beyond the circle of Government employes and the alumini of the Universities. Before we can reasonably anticipate the employment of English as conventional language, like Latin in the middle ages, or French in the more morden period in Europe, or like Hindustani in the greater part of India since the period of Mahomedan supremacy, the number of the English residents in India should bear a muck Larger proportion to the mass of the inhabitants. That proportion is at present infinitisimally small, E., G., the population of the two collectorates or provinces in southern India with which I am best acqainted; Tinivelly and Madura amounts to very nearly four millions ; the number of Englishmen and Americans resident in those two province is under a hundred and fifty ; and that number includes the judge and Magistrates, who administer justice in those provinces, the officers of a single regiment of Seooys, a few planters and merchants, and the missinories belonging to three missionary Societies : including women and children, the number is considerably under two hundred, with which handful of English people we have to contrast four millions of Hindus."

(क) नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुसन्धानानुसार उर्दू हिन्दी की अपर बोलियों में से एक बोली है।

(ख) तृषा लगने के कारण जल की उत्कण्ठा से होंठों का संघर्षण होने लगता है, और पृप् सा बात ध्वनि निकलता है। उसी से पिब धातु का रूप बना है। इससे रशियन पिस, मराठी पिणें और हिन्दी पीना आदि बने हैं। इसी प्रकार से मानवी भाषा के धातु बनकर भाषा प्रचलित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हिन्दी उर्फ उर्दू को (क) ही राष्ट्र-भाषा बनाने के विषय में एक लेख निकाला है। अतः अंग्रेजी का नाम छोड़ किसी देशी भाषा की ही शरण लेना समुचित है।

जब अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती तो अब हमको समुचित है कि हम अपनी देश भाषाओं में से ही किसी एक को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए चुन लें। अतः भिन्न-भिन्न प्रान्तों की देशी भाषाओं का स्वरूप, उनका इतिहास, उनकी उत्पत्ति और वर्तमान अवस्था आदि की नीचे आलोचना की जाती है। हिन्दुस्तान में भिन्न-भिन्न प्रकार की 100 भाषाएँ हैं और उनकी बोलियाँ तो स्यात् ढाई सौ तक होंगी। अकेली हिन्दी की ही 5.—6. बोलियाँ पाई जाती हैं (ख)। परन्तु ऐसी भाषाएँ बहुत थोड़ी हैं जिन्हें कोटि से अधिक मनुष्य बोलते हों। भारत की वर्तमान भाषाएँ दो भेदों में विभक्त हैं—(1) आर्य भाषा और (2) द्राविड़ी भाषा वा तुरेनियम।

आर्य्यभाषान्तर्गत भाषाओं का विचार

वर्त्तमान आर्य्य भाषाओं का उद्भव संस्कृत से हुआ है, यह लोगों का अनुमान युक्ति-संगत बोध नहीं होता। प्राकृत शब्द मूल वाचक प्रकृति शब्द से हुआ है। ये भाषाएँ संस्कृत के पूर्व थीं, संस्कृत की समकालीन थीं और उसके अनन्तर भी हैं। मनुष्य को जब से वाणी का संस्कार हुआ तब से उनकी यही स्थिति है। आर्य लोगों के समूह एक के पश्चात् दूसरे इस देश में आये और जहाँ-तहाँ वास स्थिर किया। उनके स्थल और काल के कारण भेद पड़ता चला गया। स्त्री, बालक और शूद्र से आर्य भाषा का यथोचित उच्चारण न बनने के कारण उनके रूप परिवर्तन ग्रहण करने लगे। वैदिक काल के लोगों ने परमेश्वर की स्तुति की भाषा में भ्रष्टता न रहने पावे, इस अभिप्राय से तत्कालीन उत्तमोत्तम शब्द और धातुएँ चुनकर संस्कृत भाषा को धार्मिक भाषा बना लिया और संस्कृत का अर्थ भी उत्तम प्रकार से किया हुआ है। यह उत्तमता नष्ट न होने पावे अतः वर्णों का शुद्ध उच्चारण करने वाला ब्रह्मवृन्द उन्होंने स्थिर किया; वर्त्ताव की भाषा प्राकृत ही थी। पुश्त-दर-पुश्त उनमें भेद पड़ता ही जाता था। संस्कृत के नाटकों में नायक की भाषा संस्कृत पाई जाती और स्त्री तथा परिचारकों की प्राकृत वा बाल भाषा रहा करती है। ईसवी सन् के छः सौ वर्ष पूर्व संस्कृत प्रचलित थी, अनन्तर वह प्राकृत में लीन हो गई। वर्तमान समय की आर्य भाषाएँ इसी से वनी हुई हैं।

इसी लाग पर गौतम बुद्ध और जैन ने हिन्दू धर्म में हेर-फेर किया। उनकी भाषाएँ प्राकृत थीं। उनके धर्म के फैलाव के साथ-साथ वे भाषाएँ उत्तर को तिब्बत और दक्षिण को सिलोन पर्यन्त फैलीं। ई० सं० के पूर्व 300 वर्षों के पश्चात् अलेक्जांडर ने जब हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था, उस समय यहाँ के लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत बोलते थे। ई०सं० 200 वर्ष के पूर्व के अशोक राजा के समय के जो शिला-लेख हैं उनमें आंटिओकस और अपर ग्रीक बादशाहों का जो वर्णन पाया जाता है वह प्राकृत भाषा में ही है। वैसे ही ब्रैक्ट्रिया के ग्रीक और हिन्दू सिक्कों पर जो लेख हैं वे भी प्राकृत भाषा में ही हैं। ई० सं० के पूर्व : 6 वें वर्ष उज्जैन में विक्रमादित्य राज्य करता था। उसके समय में भी लोगों की बोलचाल की भाषा प्राकृत ही थी। प्राकृत भाषाएँ ई० सं० के 8 या 9 सौ वर्ष पर्य्यन्त प्रचार में थीं। वे भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोली जाती थीं। वे अनुमान 22 प्रकार की थीं और उनमें 5 प्रधान थीं।

1. महाराष्ट्री—इसका विस्तार बहुत बड़ा था। यह विक्रमादित्य की भाषा थी। उसके शकों के पराजित करने पर उसका शक प्रचलित हुआ सो अभी लौं चला जाता है। यह भाषा उज्जैन के निकटवर्ती मालवा और दक्षिण राजपूताना में बोली जाती थी। शक-प्रवर्तक विक्रमादित्य का आश्रित वररुचि बड़ा व्याकरण-प्रणेता हो गया है। उसने प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखा है। उसमें प्राय: महाराष्ट्री की ही आलोचना की। मराठी भाषा उक्त महाराष्ट्री से ही उत्पन्न हुई है। पर संप्रति उसमें मागधी-प्राकृत भाषाओं के शब्द अधिकता के साथ पाये जाते हैं। जैन लोगों ने इस भाषा में बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं।

2. मागधी—यह भाषा बिहार आदि प्रान्तों में बोली जाती थी। ई० सं० के अनुमान 500 वर्ष पूर्व बिहार में गौतम बुद्ध का उत्कर्ष हुआ। उसने ब्राह्मणों के धर्म को नष्टप्राय कर डाला। पाली[1] भाषा मागधी भाषा से बनी है।

3. शौरसेनी—यह भाषा मथुरादि प्रान्तों में बोली जाती थी।

4. पैशाची—पिशाच शब्द से यह शब्द सिद्ध किया गया है। जंगलों, पहाड़ों पर रहने वाले भूतों कैसे लोग इसे बोला करते थे।

5. अवभ्रंशी—यह सिंध और पश्चिमीय राजपूताना में बोली जाती थी।

इन प्राकृत भाषाओं का प्रचार उठकर वर्तमान आर्य भाषाएँ अनुमान कबसे प्रारम्भ हुईं, सो नीचे प्रदर्शित किया जाता है।

1. हिन्दी और उसकी गुजराती, पंजाबी प्रभृति बोलियाँ 11वीं शताब्दी में प्राकृत से भिन्न हुईं। 14वीं शताब्दी लौं गुजराती और हिन्दी में कोई भेद न था।

2. मराठी—यह 12वीं वा 13वीं शताब्दी पर्य्यन्त प्राकृत थी।

3. उड़िया—यह 14वीं शताब्दी से उत्पन्न हुई है।

---

1. बिहार प्रान्त का पलाश नाम था उससे पाली भाषा का नाम उद्भूत हुआ। पलाश से (बिहार) जो लोग ग्रीस देश को गये उन्हें पलास्जियन नाम प्राप्त हुआ।

—India in Greece

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. बँगला—यह हिन्दी से 17वीं शताब्दी में विलग हुई।

5. सिंधी—ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। लिखने की प्रथा नहीं है। इसकी उत्पत्ति का विद्वानों को अभी लौं पता नहीं लगा है।

सारांश, आर्यभाषाओं की प्रधान भाषाओं का उक्त संक्षिप्त इतिहास है।

द्रविड़ भाषाओं का विचार

हिन्दी, बँगला, सिन्धी और मराठी आदि आर्यभाषाओं का परस्पर में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध तो स्पष्ट है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि ग्रीक, लैटिन, और तद्भूत अंग्रेजी[1] और रशियन[2] प्रभृति भाषाओं के शब्दों से हमारी आर्य भाषाओं के बहुत शब्द मिलते हैं। परन्तु द्रविड़ भाषाओं के शब्दों से नहीं मिलते। अत्यन्त महत्त्व संयुक्त निम्नलिखित दो शब्दों के रूप इन भाषाओं में, देखिये, कैसे पाये जाते हैं—

1. अंग्रेजी आदि आर्य भाषान्तर्गत बहुतेरे शब्द तो समान पाये ही जाते हैं, पर इसके सिवाय जब आर्य लोगों के समूह परस्पर से हजारों कोस की दूरी पर निवास करने लगे तब उनके मूल शब्द के आगे जो अपभ्रष्ट शब्द बने वे भी परस्पर में प्रायः समानता रखते हैं।

जैसे अंग्रेजी Mother, संस्कृत Mater, ग्रीक Meter, लैटिन Mater हिन्दी के 'मादर...' इस गालि-प्रदान का मादर शब्द अंग्रेजी के मदर शब्द से और मराठी के 'मात्रा गमनी' का मात्रा शब्द ग्रीक के मेटर शब्द से कैसी सन्निकटता रखता है सो सहज ही में अनुमित हो सकता है।

उसी प्रकार से अंग्रेजी का वाइफ शब्द गुजराती के बायडी शब्द से बहुत सन्निकटता प्रदर्शित करता है।

2. रशियन का संस्कृत हिन्दी से जो निकट-सम्बन्ध है सो निम्नलिखित सारणी से लक्षित होता है।

रशियन		संस्कृत		हिन्दी
पिब्र	...	पिब	...	पीना
दिन	...	दिन	...	दिन
अगन	...	अग्नि	...	आग
मर्त	...	मृत्यु	...	मृत्यु
प्रांश्चित	...	पृच्छ	...	पूछना

[शेष पृष्ठ 59 के नीचे]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य भाषा

मराठी	......	मनुष्य	......	तीन
हिन्दी	......	मनुष्य	......	तीन
संस्कृत	......	मानुष	......	त्रि
लैटिन	......	मार्तलीस	......	त्रेस
अंग्रेजी	......	म्यान	......	थ्री
जर्मन	......	म्यान	......	द्री

द्राविड़ी भाषा

त्रमिल	...	अल	...	मुनरु
तैलंगी	...	अल	...	मुड़
कानड़ी	...	अलु	...	मुरु
मलयाली	...	अल	...	मुनु

तो इस प्रकार का आर्य और द्रविड़ भाषा में भेद पाया जाता है। द्रविड़ भाषा महाराष्ट्र और उड़िया के दक्षिण में सिलोन-पर्य्यन्त बोली जाती है। इस भाषा के बोलने वाले लोग भी आर्य लोगों की नाईं बाहर से आये हुए हैं। जान पड़ता है कि यह आर्य लोगों के पूर्व आये हों। हिन्दुस्तान के मूल निवासी कोल और भिल्लों को आर्यों की नाईं इन लोगों ने पद-दलित कर बाहर निकाल दिया। सब द्रविड़ी भाषाएँ तुरानी भाषा से उत्पन्न हुई हैं। चीनी और तुर्की भाषा भी तुरानी हैं।

[पृष्ठ 58 का शेष]

विदित	...	विद्	...	जानना
एतत्	...	एतत्	...	यह
सत	...	शत	...	सौ
मुइश	...	मूषक	...	मूष
दो	...	द्वि	...	दो
त्रि	...	त्रि	...	तीन
चत्वायर	...	चत्वारि	...	चार
पियाज	...	पंच	...	पाँच
शष्ठ	...	षष्ठ	...	छः
मात	...	माता	...	माँ
संदुक	...	संपुट	...	संदूक
सुतई	...	शुष्	...	सूखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान भारत में संस्कृत भाषा की समकालीन द्रविड़ भाषा अनुमानत: 12 हैं। इनमें से चार बड़े महत्त्व की हैं, वे तमिल, तैलंगी, कानड़ी और मलयाली हैं।

इन सब में तमिल बहुत सुधार-संपन्न है। वह पुरानी और नई तमिल ऐसे दो भेदों में विभक्त है। वे परस्पर में विभिन्न हैं।

इधर की द्रविड़ भाषाएँ आठवीं शताब्दी से 12 वीं पर्य्यन्त प्रारम्भ हुई हैं।

भारत की वर्तमान भाषाओं का स्वरूप

भारत में आज दिन यद्यपि अनेक भाषाएँ विद्यमान हैं तो भी 50 लाख से अधिक लोग जिन भाषाओं को बोलते हैं वे केवल 10 ही हैं। इन में आर्य भाषाएँ 6 और द्रविड़ भाषाएँ 4 हैं।

आर्य भाषाओं में (1) हिन्दी वा उर्दू (2) बँगला (3) मराठी (4) पंजाबी (5) गुजराती और (6) उड़िया और द्रविड़ भाषा में (1) तैलंगी (2) तमिल (3) कानड़ी और (4) मलयाली ऐसी सब 10 भाषाएँ हैं।

आर्य्य भाषा

(1) हिन्दी[1]—हिमालय, विन्ध्य, पंजाब और आसाम के अन्तर्गत देशों में यह भाषा बोली जाती है। दो लाख पचास हजार वर्गमील धरती पर वास करने वाले लोगों की यह मातृभाषा है। उर्दू वा हिन्दुस्तानी इसकी एक बोली का नाम है। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ पर्यन्त उर्दू का कोई पता-ठिकाना न था। शासन-कर्त्ता मुसलमान लोग फारसी और अरबी बोलते थे और पराजित हिन्दू लोग हिन्दी बोलते थे।

'The Hindu Rajas under the Mughals' नामक पुस्तक में लिखा है कि दीर्घ काल लौं मुसलमान हिन्दी बोलते थे। उन लोगों ने हिन्दी में फारसी के शब्दों का प्रचार नहीं किया, किन्तु जब टोडरमल ने जमाबन्दी की नई व्यवस्था शुरू की, तदर्थ हिन्दुओं को फारसी पढ़ना पड़ा और उन्हीं लोगों ने हिन्दी में फारसी शब्दों का बर्त्ताव करना प्रारम्भ किया। उर्दू स्वतन्त्र भाषा नहीं है। भाषा शास्त्र-वेत्ता लोग उसे हिन्दी का उर्दू रूप कहते हैं क्योंकि—

"That Grammer is the most essential, and therefore the ground of classification in all languages which have produced a definite grammatical articulation." —Max Muller.

---

1. इन भाषाओं का सविस्तार वृत्तांत जानने की इच्छा रखने वाले पाठकों को उचित है कि वे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के सुयोग्य सभ्य बाबू श्यामसुन्दर दास जी० बी० ए० लिखित 'भारतवर्षीय आर्य्य देश भाषाओं का प्रादेशिक विभाग और परस्पर संबंध' संज्ञक लेख अवश्य पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Grammar of Urdu is unmistakeably the same as that of the Hindi, and it must follow therefore, that the Urdu is a Hindi and an Aryan dialect pedantic Maulavis may string togetherend-less services of adjectives, and substantive, and even, but they can never be put in accord without indenting on the services of Hindi verbs, Hindi inplections, Hindi Case marks. Hindi pronouns, and Hindi prepositions. —'Indo Aryans'

इनशा अल्ला खां ने उर्दू में एक कहानी लिखी है। इसके विषय में कहा जाता है कि इसमें अर्वी व फारसी का एक भी शब्द नहीं पाया जाता। उर्दू के ग्रन्थों में प्रायः सेमेटिक भाषा के सौ पीछे 40-50 शब्द से अधिक शब्द नहीं उपलब्ध होते, अतः आर्य्य भाषा के प्रति सैकड़ा 50-60 शब्द होने के कारण हिन्दी की सहायता लिये बिना उर्दू में एक वाक्य भी न बनाते बनेगा। अतः बीम्स साहब कहते हैं कि—

"It would be quite impossible in Urdu to compose a single sentence witout using Aryan words though many sentences might be composed in which not a single persian word occurred.

(Camparative Grammar of Aryan Languages)

हिन्दी की सहायता लिये बिना उर्दू का वाक्य भी न बनाते बनेगा, पर बिना उर्दू के हिन्दी में कई वाक्य रचे जा सकते हैं। यही कारण है कि हिन्दी और उर्दू का विचार एकत्र ही किया जाता है। वह बिहारी वा पूर्व हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी इन दो भेदों में विभक्त है। काशी की आज की हिन्दी में संस्कृत के शब्द अधिकता के साथ पाये जाते हैं। वैसे ही आगरे की हिन्दी में फारसी के शब्दों की प्रचुरता दीख पड़ती है। सीमान्त हिन्दी में उस प्रान्त के शब्द प्रविष्ट हो गये हैं। हिन्दी जैसे ही अधिकतर लोगों की भाषा है वैसे ही उसमें सुरसता और मृदुतादि गुणों की विपुलता पायी जाती है। उसमें फारसी के शब्द पाये जाने के कारण उसे विशेषकर पुरुष रूप प्राप्त हुआ है। तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं है क्योंकि डार्विन साहब का मत है कि क्लिष्ट एवं दुर्बोध शब्द और जटिल रचना कालगति द्वारा सरल अथवा सुबोध होती जाती है। इस नियम को अनुकृत कर संस्कृत गुत्थमगुत्थे शब्दों के सरल एवं सुबोध रूप ही हिन्दी के शब्द बने हैं, और बँगला, पंजाबी, गुजराती आदि उसकी शाखाएँ होने के कारण और इसके सिवाय मुसलमानों के शासन-काल में फारसी शब्द-जाल के हिन्दुस्तान भर में फैल जाने के कारण प्रायः सब लोग न्यूनाधिक प्रमाण से इसे जानते हैं। 28 कोटि जनसंख्या में 10 कोटि लोगों की यह जन्मभाषा है और 10 कोटि लोग इसे बहुधा समझ-बूझ सकते हैं। इस भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अक्षर नागरी वा देवनागरी[1] नाम से परिचित हैं। इसका ग्रन्थ-विस्तार बहुत बड़ा है। 12वीं शताब्दी में चंद भाट ने 'पृथ्वीराज का रासा' लिखा। यह इतिहास का ग्रन्थ है। अपर भाषाओं में धर्म-संबंधी ग्रन्थ इतिहास पर नहीं पाये जाते, पर इस भाषा में यह विशेषता है। 1888 में उर्दू और हिन्दी में 2270 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई। हिन्दुस्तान की अपर सब भाषाओं के ग्रन्थों की संख्या के समान उक्त ग्रन्थ-संख्या है। सुबोधता इस भाषा का प्रधान गुण है।

(2) **बँगला**—भारत में दूसरे नंबर की भाषा बँगला भाषा है। यह अनुमान 4 कोटि लोगों की जन्मभाषा है। इस भाषा के ग्रन्थ 2-3 सौ वर्ष के हैं। वैष्णव धर्म सम्बन्धी प्रथम ग्रन्थ को चैतन्य ने 1590 ई० में लिखा। संप्रति यह भाषा अत्यन्त शीघ्रता के साथ उन्नति लाभ कर रही है। इसमें संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता अधिकता के साथ पायी जाती है और अब इधर के ग्रन्थ-प्रणेतृगण अधिकतर संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते जाते हैं। अतः पुस्तकीय भाषा बर्त्ताव की भाषा से बहुत भिन्न हो गई है। 1810-20 पर्यन्त केवल 27 ग्रन्थ इस भाषा में छपे थे, परन्तु गत 10 वर्षों में 15 हजार ग्रन्थ छापे गये। समाचारपत्र भी इस भाषा में अधिक हैं, और उनकी बहुत संख्याओं की खपत होती है। 'वंगवासी' की

---

1. श्रीयुत पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने " 'नागरी' तेरी यह दशा!" शीर्षक लेख में लिखते हैं :

(2)

माता त्वदीय सुचि संस्कृत देवबानी। वर्णावली तव मनोहर रूपखानी।।
अत्यन्त शुद्ध लिपि होति सदैव तेरी। अल्प प्रयास महं सिद्धि सधै घनेरी।।

(3)

अत्यन्त बालकहु मास गये छः साता। होवै प्रवीण सिखि तोहि छिपी न बाता।।
मूढ़ाति मूढ़ जिन दीख न पाठशाला। तेऊ पढ़ैं तुहिं बिना श्रम सर्व्वकाला।।

(4)

एतादृशी सरल, सुन्दर, शुद्ध सोई। तू नागरी जननि जानत सर्वकोई।।
तोहू तुहौ चहहिं जे न जडत्वपागे। ते कामधनु तजि आक दुहैं अभागे।।

(5)

तेरी समान रुचिरा, सरसा, रसाला। शोभायुता, सुमधुरा, सगुणा, विशाला।।
भाषा न अन्य यहि काल अहो दिखाई। बोलें निशंक हम पौरुव भुजा उठाई।।

इस छोटे पर सारगर्भित लेख को उक्त पंडित जी ने 21 पद्यों में शेष किया है। जिन काव्यप्रिय लोगों को काव्यरसामृत पान करने की पटुता प्राप्त हो चुकी है वे उक्त सम्पूर्ण लेख को 'काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के तीसरे भाग की पहली संख्या को मंगाकर अवश्य पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्ताह में सुनते हैं, 20-25 हजार प्रतियाँ खपती हैं। यहाँ स्वत्व का बहुत अभिमान है। 1888 में 1400 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई।

(3) **मराठी**—यह महाराष्ट्र देश में बोली जाती है। 330 मील लम्बे और 40 मील चौड़े प्रदेश में यह बर्त्ती जाती है। अनुमानतः दो कोटि मनुष्यों की यह जन्मभाषा है। तुकाराम, मोरो पंत आदि आधुनिक कवियों ने इस भाषा को बहुत अलंकृत किया है। 1888 में 304 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई। इस भाषा के ग्रन्थ प्रायः धर्म-सम्बन्धी हैं। अब इधर कुछ शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुवाद हुए हैं, पर उन्हें ग्राहकों का आश्रय जैसा चाहिए वैसा नहीं है। 100 ग्रन्थ में से 40-50 खप जायें तो प्रकाशक अपने को धन्य मान लेता है। 'केसरी', 'सुधारक' जैसे सुप्रसिद्ध और सस्ते समाचार-पत्र इस भाषा की सेवा में बद्ध-परिकर हैं, पर तो भी इनके 3-4 हजार से अधिक ग्राहक नहीं हैं। उपन्यास और प्रहसन आदि की लोगों को अधिक चाह रहती है।

(4) **गुजराती**—खंभात की खाड़ी के निकटवर्त्ती गुजरात प्रान्त में यह भाषा बोली जाती है। बम्बई में भी इसका अधिक प्रचार है। अनुमान एक कोटि लोगों की यह भाषा है। इसकी लिपि देवनागरी के मेल की है, पर लिखावट माथा बाँध के नहीं की जाती है। 1888 में 408 ग्रन्थों की रजिस्टरी की गयी। इस भाषा में दैनिक पत्रों की संख्या बहुत अच्छी है। पारसी लोगों ने इस भाषा के रूप को बिलकुल बिगाड़ डाला है। मराठी की अपेक्षा यह भाषा अधिक उन्नत है।

(5) **पंजाबी और सिन्धी**—ये भाषाएँ इन्हीं नाम के प्रान्तों में बोली जाती है। अनुमान दो कोटि मनुष्यों की ये भाषाएँ हैं। पुरा काल में मुसलमान लोगों ने जब सिन्ध प्रान्त को अपने आधीन कर लिया था तभी से इस भाषा में फारसी के बहुत शब्द मिल गये हैं। सतत आक्रमण होते रहने के कारण सिन्धी भाषा का सुधार नहीं होने पाया। इस प्रान्त में प्रायः ब्राह्मण नहीं पाये जाते, क्योंकि बहुत लोग पूर्व ही में मुसलमान हो चुके हैं। सिन्ध की आदि लिपि फारसी है पर अब इधर वे लोग अपने ग्रन्थ देवनागरी लिपि में छापने लगे हैं। धर्म-सम्बन्ध से लोग इस का विरोध करते हैं। पंजाब की लिपि भी देवनागरी ही है परन्तु उसमें थोड़ा-सा विपर्यास है।

देवनागरी			**पंजाबी (गुरमुखी)**
ध	...	...	प
फ	...	...	ढ़
व	...	...	ह
र	...	...	ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से बहुत-कुछ वर्ण-विपर्य्यास हो गया है। ग्रन्थ संख्या भी ऐसी कुछ अधिक नहीं है।

(6) **उड़िया**—यह भाषा उड़ीसा नाम के प्रान्त में बोली जाती है। 63 लाख लोग इस भाषा का बर्ताव करते हैं। इसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है, यह बँगला की उपभाषा वा बोली है, इसे उठाकर बँगला कर देने के लिए बहुत बंगाली विद्वानों ने अपनी सम्मति प्रदर्शित की है। हिन्दी में जिस प्रकार से बहुतेरे शब्दों के रूपांतर हो गये हैं वैसे इस भाषा में नहीं हुए हैं। संस्कृत के शब्द ज्यों-के-त्यों बोले जाते हैं। जिस भाषा के शब्दों के रूपों को विशेष भिन्नता प्राप्त हो गयी है, उसकी योग्यता अधिक मानी जाती है। इसके दृष्टान्त स्वरूप में यह कहा जाता है कि सजीव प्राणियों में क्षण-क्षण पर भेद लक्षित होता है, पर पत्थर ज्यों-का-त्यों ही रहता है। इस न्याय से इस भाषा की योग्यता न्यून निश्चित होती है।

उक्त प्रतिपादन से यह निर्धारित होता है कि आर्य भाषाओं में आज दिन बँगला अधिक उन्नत है, उससे कुछ कम हिन्दी, हिन्दी से कम गुजराती, गुजराती से कम मराठी, मराठी से कम उड़िया और सबसे कम पंजाबी और सिन्धी हैं। तो वर्त्तमान अवस्थानुसार इनकी अनुक्रम-संख्या उक्त प्रकार से निश्चित होती है।

द्रविड़ भाषा

आर्य्य भाषाओं से जिस प्रकार ये भाषाएँ भिन्न हैं उसी प्रकार इनकी लिपि भी उनसे बहुत भिन्न है। संस्कृत की लिपि की अपेक्षा इन भाषाओं की लिपि के अक्षर अधिक हैं। इन सब भाषा बोलने वालों की संख्या 5-6 कोटि है।

(1) **तमिल**—पलिकत से केप कामोरियन पर्य्यन्त यह भाषा बोली जाती है। अनुमान डेढ़ कोटि लोगों की यह मातृभाषा है। 1888 में इस भाषा के 429 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई। आर्य्य भाषाओं का इन भाषाओं से कुछ भी सम्बन्ध न था, परन्तु जैन लोगों ने आर्य-विद्या का जब से इस देश में प्रचार किया, तब से इस भाषा में संस्कृत के बहुत से शब्द मिल गये। ये लोग अगस्त्य ऋषि को समस्त शास्त्रों के प्रणेता मानते हैं। जैन लोगों ने 8वीं 9वीं शताब्दी में ग्रन्थ लिपिबद्ध किये। इस भाषा में संस्कृत शब्द सैकड़े पीछे 40 पाये जाते हैं। आजकल जो ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं उनकी खपत प्रायः शिक्षा-विभाग में होती है। दक्षिण भारत की भाषा उत्तर भारत की भाषाओं की नाईं शीघ्रता के साथ उन्नति लाभ नहीं करती।

(2) **तैलंगी**—समस्त द्रविड़ भाषाओं में तैलंगी बोलने वालों की संख्या अधिक है। अनुमान दो करोड़ लोग इसे बोलते हैं। यह भाषा पिलकत से चिकाकोल पर्यन्त बोली जाती है। यह भाषा बहुत कर्णमधुर है। 1888 में इसमें 221 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई। कण्व ने संस्कृत में ग्रन्थ लिखे। 12वीं शताब्दी में नाना प्या ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत भागवत को अनुवादित किया । इसकी लिपि कानड़ी की सी ही है । इसकी मधुरता के कारण लोग इसे Italian of the East कहते हैं ।

(3) **कानड़ी**—वेदर, मैसूर (महीसूर) और कर्नाटक प्रान्तों में यह भाषा बोली जाती है । बोलने वालों की संख्या एक कोटि के लगभग है । 1888 में 154 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई । लिपि तैलंगी की ही सी है । कानड़ी के पुराने लेख संस्कृत में हैं । इस भाषा में जैन लोगों ने चौथी शताब्दी में ग्रन्थ लिखे तथा 12वीं शताब्दी में केशव कवि ने कविता रची है । ग्रन्थ-संख्या 154 है ।

(4) **मलयाली**—यह तमिल की एक बोली है । इसका ग्रन्थ-संग्रह दो-तीन सौ वर्ष के भीतर का ही है और वह है भी बहुत थोड़ा । 1888 में केवल 700 ग्रन्थों की रजिस्टरी हुई । अनुमान 60 लाख लोगों की यह भाषा है । इसमें संस्कृत के शब्द अधिक हैं । भारत भागवत पुराने ग्रन्थ हैं ।

अब व्याकरण के सम्बन्ध से इन भाषाओं की आलोचना की जाती है

(1) **लिपि**—हिन्दी और मराठी भाषाओं की लिपि देवनागरी है । गुजराती की लिपि भी वही है । सिन्धी में 12-13 उस भाषा के और शेष अक्षर अरबी के हैं । अनुमान 14 करोड़ लोगों की लिपि देवनागरी है ।

पंजाबी, बँगला और उड़िया भाषाओं की लिपि देवनागरी की अपेक्षा बहुत भिन्न है । पंजाबी की लिपि को गुरुमुखी कहते हैं । इस लिपि के 35 अक्षर हैं । नागरी के ऋ, ॠ, ऌ, ॡ श और ख इस लिपि में नहीं पाये जाते । इन तीनों भाषाओं की लिपि स्कुटील के नाम से पुकारी जाती है । ताड़पत्र पर लोहे की कलम से लिखने के कारण उक्त भेद हो गया है ।

तमिल, तैलंगी और कानड़ी भाषाओं की लिपि नागरी से बहुत ही विभिन्न है और इसके सिवाय उनके अक्षर भी नागरी की अपेक्षा अधिक हैं । नागरी में ह्रस्व और दीर्घ स्वर दिखलाने के लिए कि, की, आदि अक्षर हैं परन्तु इनमें कि, को और की ऐसे तीन प्रकार हैं, वैसे ही उकार, एकार और ओकार के भेद हैं ।

वाणिज्य की लिपि प्रत्येक भाषा में प्रायः निराली ही रहती है । सिन्धी का लेख तभी पढ़ा जाता है जब उसका लेखक स्वयं पढ़े । सारांश, वाणिज्य की भाषा न्यूनाधिक प्रमाण से सब ही क्लिष्ट हैं । कैथी मुड़िया और मारवाड़ी लिपि में लिखे हुए पत्रों के पढ़ने में कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं और कभी-कभी कैसी-कैसी चिन्ता और आपत्ति-शल्यों का लक्ष्य बनाना पड़ता है सो सब लोगों पर विदित ही है ।

(2) **शब्द-विचार**—पुराकाल में द्राविड़ी भाषाएँ यद्यपि आर्य्य भाषाओं से पृथक् थीं, तो भी उनमें संस्कृत के बहुत शब्द प्रविष्ट हो गये हैं । इसके सिवा उनमें संस्कृत के प्रत्यय भी प्रविष्ट हो गये हैं ।

कानड़ी में मराठी की अपेक्षा संस्कृत के शब्द अधिक हैं । संस्कृत शब्दों के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन भाषाओं में ज्यों-के-त्यों बने हैं। वे 'तत्सम' कहे जाते हैं। यथा—राजा, कवि, दर्शन, आदि। ऐसे शब्द प्रायः सब भाषाओं में पाये जाते हैं। किसी-किसी भाषा में उनके उच्चारण में कुछ फर्क रहता है। यथा—दर्शन का उच्चारण 'दरशन' करते हैं। इसका कारण बौद्ध धर्म कहा जाता है।

तद्भव—अर्थात् संस्कृत शब्दों से बने हुए शब्द। यथा अक्षि से आँख, गर्दभ से गधा आदि। यह शब्द-जाल बहुत बड़ा है। हिन्दी भाषा के बहुतेरे शब्द तद्भव हैं।

देशज—अर्थात् आर्य लोगों के इस देश में आने के पूर्व यहाँ के निवासी लोग जो भाषाएँ बोलते थे, उन भाषाओं के शब्द। वे भी इन सब भाषाओं में थोड़े-बहुत मिल गये हैं।

अरबी और फारसी—मुसलमानों के हिन्दुस्तान पर अधिकार जमा लेने के कारण, अदालती पहेराव और व्यावहारिक वस्तु-बोध के अनेक शब्द सब भाषाओं में मिल गये हैं। वर्त्तमान अंग्रेजी के शब्द सब भाषाओं में निसर्गतः अपना प्रवेश करते जाते हैं।

इन दसों भागों में ये 4 प्रकार के शब्द सामान्यतापूर्वक पाये जाते हैं।

संज्ञा

सं०	प्रा०	सिं०	हिं०
देवालय	देउल्ल	देवली	देवल
फुफ्फुस	फुफ्पुसो	फिफ्हिु	फेफड़ा
म०	बं०	पं०	उ०
देवल	देवल	देवाला	आडाणीओ
फोफीस	फेंफड़ा	फँसफँस	फाईफाई

दहन, दर्शन, तरन, चन्दन और जीवन प्रभृति अनेक संज्ञाएँ 'न' और 'अन' प्रत्यांत आर्यभाषाओं में परस्पर से मिलती-जुलती पायी जाती हैं।

लिंग-विचार

संस्कृत में लिंग तीन हैं—पुंलिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। प्राकृत में भी इतने ही हैं। पर मराठी और गुजराती को छोड़कर सिंधी, पंजाबी और हिन्दी में केवल पुंलिग और स्त्रीलिंग ये ही दो लिंग हैं। बँगला और उड़िया में जो संस्कृत के बहुत शब्द हैं उनके अतिरिक्त कोई लिंग-भेद ही नहीं माना जाता। बँगला में छोटे बालक को 'छोट बालक', छोटी लड़की को 'छोट बालिका' और छोटी वस्तु को 'छोट वस्तु' कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाम

यह भी बहुधा परस्पर से मिलते-जुलते पाये जाते हैं। यथा—

हिं०	पं०	सिं०	उ०	म०	बं०
कौन	कोण	कोहु	केकु	कोण	के

उक्त रूपों को देख इन भाषाओं की परस्पर की सन्निकटता का सहज ही में बोध हो सकता है।

क्रिया

आर्य भाषाओं की हुआ, किया, गया, खाया, मरा और मारा आदि क्रियाएँ ऐसी हैं जिन्हें लोग सहज ही में समझ सकते हैं। 'होना' धातु के रूप प्रत्येक भाषा में कैसे होते हैं सो नीचे लिखे जाते हैं—

हिं०	पं०	सिं०	गु०	म०	उ०	बं०
होऊँगा	होवाँ	हुआँ	होऊँ	होईन	होंग	होइ

तो उक्त प्रकार से आर्य भाषाओं की संज्ञाएँ, विशेषण, क्रिया और उनके प्रत्ययादि में बहुत समानता लक्षित होती है। साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका समझना दूसरी भाषा वालों को कठिन पड़ता है। द्रविड़ भाषा की क्रियाओं में बहुत भिन्नता रहती है।

हिन्दुस्तान की एक भाषा करने में कई आधुनिक विद्वानों की सम्मति यह है कि सब भाषाओं की खिचड़ी करनी चाहिए—अर्थात् प्रत्येक भाषा में उसके सीमान्त वासी लोगों की भाषा के समानार्थक शब्दों का बर्त्ताव करना चाहिए। जैसे पुस्तक शब्द के वाचक गुजराती और कानड़ी भाषा के कोश में देने चाहिए। इस प्रकार से जब वे बर्त्ताव में आने लगेंगे तो कुछ काल के अनन्तर सब भाषाओं की एक भाषा बन जाएगी। पर यह विचार हमें मान्य नहीं है। क्योंकि इसमें खींचा-तानी बहुत है और इसके सिवाय इसमें अव्यवस्था बहुत होगी। मराठी का शिखावाचक 'शेडी' शब्द गुजराती में पुरुषोपस्थेंद्रिय-वाचक है, वैसे ही 'कुण्डी' शब्द का अर्थ कानड़ी मे स्त्रीजननेंद्रिय माना जाता है; 'एली मेली', 'हरिसत्ता' पीछे उदाहृत हो ही चुके हैं। अतः इस घोर चिन्ता-पूरित अश्लाघ्य कार्य का सर्वथा त्याग ही योग्य है। और प्रत्येक मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य है कि अपनी मातृभाषा की रक्षा कर सर्वसाधारण की भाषा बनाये जाने का जिसका अधिकार है, उसे स्वीकृत करना चाहिए। ऐसा करने से अल्प परिश्रम और अल्प काल में एक भाषा हो जाएगी, यही अनुमान मे जाना जाता है।

उक्त कथन से ही निर्धारित होता है कि भारत की जो एक भाषा बनायी जावे वह उक्त छः आर्य और चार द्रविड़ भाषाओं में से ही बनायी जावे। भारत में आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा बोलनेवालों की संख्या अनुमानत: 22 करोड़ और द्रविड़ भाषा बोलनेवालों की संख्या अनुमानत: 6 करोड़ है। अतः यही समुचित जान पड़ता है कि राष्ट्रभाषा के लिए आर्य भाषा में से ही किसी एक की चुनावट करनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपनी मातृभाषा का अभिमान होने के कारण वह अपनी ही मातृभाषा का अनुरोध करेगा। पर जब वह न्यायारूढ़ होकर विचारेगा कि जिसमें सर्वसाधारण का लाभ है वही उदारचेता का परम कर्त्तव्य होता है तब उसका उक्त हठ दूर हो जाएगा और समस्त देश-हितैषी लोगों की सम्मति से जो भाषा राष्ट्रभाषा का आसन पाने के योग्य समझी जाए, उसी को वे लोग अंगीकार करें। पीछे जिन भाषाओं का संक्षिप्त वर्णन हो चुका है उनकी आलोचना करने से यही निश्चित होता है कि सर्वांग-सुन्दर हिन्दी भाषा ही राष्ट्रभाषा का आसन पाने के योग्य है क्योंकि उसका एक भाषा किया जाना सुहितावह है।

कारण

1 ला—उसका फैलाव—हिन्दी का विस्तार बहुत बड़ा है। 28 करोड़ लोगों में से अनुमान 10 करोड़ लोगों की वह जन्म-भाषा है। पंजाबी, बँगला, सिन्धी और गुजराती आदि से उसका अत्यन्त निकट सम्बन्ध होने के कारण अधिकतर लोग उसे समझ सकते हैं, अर्थात् यह कहना अनुचित साहस न समझा जाएगा कि भारत में आज दिन 20 करोड़ लोग बसते हैं जो हिन्दी को सरलता से समझ सकते हैं। शेष 18 करोड़ लोगों के विषय में यह सहसा नहीं कहा जा सकता कि वे लोग उसे नहीं समझ सकते। द्रविड़ भाषा में हिन्दी का जो रूप उपलब्ध होता है, उसे दक्खिनी कहते हैं, उसे वे लोग समझ-बूझ सकते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज स्थापित कर उसके कार्य-सम्पादन की प्रथा हिन्दी भाषा में प्रचलित की। स्वामी जी की यह दूरदर्शिता परम स्तुत्य है। पलटन के लोग बहुधा हिन्दी वा उर्दू बोलते हैं। इस देश की भाषाओं में से अंग्रेज लोग प्रायः इसी को सीखते हैं। यह भाषा विलायत पर्यन्त पहुँची है। अंगरेज लोग अपने बालकों के लिए जो दाई नौकर रखते हैं वे प्रायः यही भाषा बोलते हैं। उनके सहवास से अंगरेज लोगों के बालक, जो कालान्तर में हमारे शासक होते हैं, इसे बहुत सरलता से सीख लेते हैं। इन सब कारणों से जाना जाता है कि भारत का बड़ा भारी जनसमूह आज ही उसे समझ-बूझ सकता है, और थोड़ा-सा परिश्रम करने से लोग उसे भली-भाँति समझने लगेंगे। सारांश यह है कि उसका फैलाव उसे राष्ट्रभाषा के आसन पर आसीन कराने के लिए महान बलिष्ठ कारण है।

2 रा—सुलभता—हिन्दी भाषा जैसी सुलभ एवं सरल भाषा भारत में आज दिन दूसरी कोई भी नहीं है। सबसे क्लिष्ट अंग्रेजी और सबसे सरल हिन्दी भाषा है। 15-20 हजार वर्षों के अनन्तर कदाचित् अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकेगी, तबलौं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डार्विन साहब के उत्क्रान्ति-मतानुसार मानव जाति के अवयवों में कदाचित् हेर-फेर हो जाएगा। पर हमारे राष्ट्र की एकता उसके पूर्व ही होनी उचित है। क्योंकि 'का वर्षा जब कृषी सुखाने' के समान फिर यह भाषा क्या काम आवेगी? हमें तो वह भाषा चाहिए कि जिसके द्वारा हम अपने दुःख, अपनी आवश्यकता और अपने अभिप्राय को अपनी परम कृपालु सरकार पर प्रकाशित कर सकें। मराठी और बँगला ऐसी भाषाएँ हैं जिन्हें उन-उन प्रान्तों के लोगों के अतिरिक्त अपर लोग नहीं समझ सकते। परन्तु सकल-गुण-आगरी हिन्दी सुबोध एवं सरल होने के कारण सर्व-साधारण उसे समझ सकते हैं। आगे लिखे हुए हिन्दी और मराठी वाक्य से उसकी सुलभता अनुमित हो सकती है। 'मैं नहीं कर सकता' यह हिन्दी का वाक्य मराठी के 'मौकरुं शवत नाहीं' वाक्य से कितना सुलभ है? बँगला और गुजराती का तो हिन्दी से बहुत ही निकट-सम्बन्ध है। भाषा में क्लिष्ट भाग कविता का होता है सो हिन्दी की कविता भी बहुत सुबोध है।

जब लौं जाकी अवधि है, पूरी नहीं करार।
तब लौं ताकों माफ है, अवगुन करै हजार॥

जातीय सभा में यदि गुजराती आदि भाषा में वक्तृता दी जाए तो उसे तादृश लोग नहीं समझ सकते, जैसे हिन्दी में समझ सकते हैं। और क्या, पर-अपर भाषा बोलने वाली स्त्रियाँ और बालक भी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिकतर हिन्दी ही समझते हैं। इस बात को बम्बई प्रान्त के लोग भली-भाँति जानते हैं। वहाँ के कुरमी, माली और पारसी सभी हिन्दी को समझ सकते हैं।

3 रा––उसकी उत्तमता—राष्ट्रभाषा का सम्मान पाने के योग्य वही भाषा है जो अपर भाषाओं की अपेक्षा प्रौढ़ होती है। प्रौढ़ भाषा को छोड़ एक सामान्य भाषा को सीखना निरा पागलपन है। भारत की समस्त भाषाओं में हिन्दी, मराठी और तमिल यही भाषाएँ प्रौढ़ हैं। इन तीनों में हिन्दी की योग्यता श्रेष्ठ है। गगनभेदी हिमालय से ले विन्ध्याचल-पर्यन्त आर्यावर्त्त में पहले जो महान-महान शूरवीर और बलवान हिन्दू और यवन राजे हो गए हैं, उन सबके विचारे कार्य-कलाप जिन शब्दों द्वारा व्यक्त हुए हैं उन सबका खजाना हिन्दी में भरा हुआ है। जिस संस्कृत भाषा ने संसार[1] को अपना असामान्य ज्ञान प्रदर्शित कराया और नाना प्रकार के कला-

1. संस्कृत भाषा बोलने वाले भारत के आर्य लोगों के भिन्न-भिन्न समूहों ने भिन्न-भिन्न काल में जग भर में अपना फैलाव किया। बेहरिंग मुहाने से भारत के आर्य्य लोग अमेरिका को गए, और पेरू, मेक्सिको आदि देशों में उपनिविष्ट हुए, इनकी भाषा में संस्कृत के शब्द अधिक पाए जाते हैं। अमेरिका को ढूंढ़ निकालने का अभियान उसके सहायकों का था, पर शब्द शास्त्र ने वह सम्मान भारत के प्राचीन आर्यों को दिया है। पासिफिक महासागरान्तर्गत [शेष पृष्ठ 70-71 पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ 69 का शेष]

द्वीपों के समुदाय को कोई पांचवां खण्ड कहते हैं। तदन्तर्गत जावा (यवद्वीप) और मलयद्वीप के लोगों की भाषा के बहुत-कुछ शब्द संस्कृत हैं। यथा—

संस्कृत	मलै	जवानीज (जावा)
धनुष्य	पन	गांडीव
देव, देवी	देव, देवी	देव, देवी
धर्म	आगम	आगम
स्वर्ग, नरक	स्वर्ग, नरक	स्वर्ग, नरक
ब्राह्मण	ब्राह्मण	ब्राह्मण
राक्षस	राक्षस	राक्षस
अंक	अंक	अंक
दोष	दोष	दोष
साक्षी	साक्षी	साक्षी
शपथ	शपथ	शपथ
पंडित	पंडित	पंडित
नगरी	नाग्री	नाग्री
देश	देश	देश
मुकुट	मुकुट	मुकुट दोपांग
गज	गज	गज
गुरु	गुरु	गुरु

उनकी भाषा में धनुष के लिए गांडीव शब्द पाया जाता है, यह विचार करने के योग्य है। गांडीव शब्द अर्जुन के धनुष का वाचक है सो सब लोग जानते ही हैं। बभ्रुवाहन और अर्जुन के देश-भ्रमण का वर्णन पुराण-प्रसिद्ध ही है। आफ्रिका महादेशान्तर्गत मिश्र देश के लोग हिन्दुस्थान से गए हैं। यह बात उनकी भाषा और चाल-चलन द्वारा स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है। ईरान के लोग हम से लड़कर विभक्त हुए। उनकी भाषा से संस्कृत का निकट सम्बन्ध पाया जाता है। कृष्णावतार में यहां से लोग ग्रीस देश को गए थे उनकी ग्रीक भाषा से संस्कृत का इतना निकट सम्बन्ध लक्षित होता कि उसके प्रत्यय तक संस्कृत से मिलते है। पोपाक साहब ने अपने 'इण्डिया इन ग्रीक' नामक ग्रन्थ में हिन्दुस्तान के पहाड़, नदी, नगर आदि के नामों का ग्रीस देश में पाया जाना सविस्तार वर्णित किया है। रोमन लोगों की लैटिन भाषा से भी संस्कृत का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। है। रशियन भाषा का संस्कृत से जैसा निकटसम्बन्ध है सो पीछे उल्लिखित हो ही चुका है। ब्रिटेन पर्यन्त भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य लोग उपनिवेश करते चले गए हैं, और हमारी संस्कृत भाषा वहां की देशी भाषाओं में मिलती चली गई है। सारांश यह कि अमरीका, पासिफिक द्वीप, एशिया, अफ्रीका और यूरोप—इन पांचों महादेशों में संस्कृत के मेल का पाया जाना उसकी विश्वव्यापकता का स्पष्ट प्रमाण है। संस्कृत कलाकुशलता का स्रोत कैसे कहा जा सकता है, यह जानने की जिन्हें इच्छा होवे वे 'चिप्स फ्राम दी जर्मन वर्कशाप' वा अलबरुनी लिखित 'हिन्दू लोगों की कलाकुशलता का इतिहास' को देखें।

आजकल की नई रोशनी वाले बाबू लोग पुराणों का उपहास भले ही किया करें पर आधुनिक अनुसंधानशील पुरुषों को यह भली-भाँति लक्षित हो चुका है कि उनका बहुलांश यथातथ्य है। विष्णु पुराण में लिखा है कि—

म्लेच्छादि पुराकाल में क्षत्रिय थे उन लोगों ने सगर के पिता का राज्य हरण कर लिया था। सगर ने उनका वध करने की प्रतिज्ञा की थी। पर उन लोगों ने शीघ्र ही कुलगुरु वशिष्ठ जी की शरण ली तब वशिष्ठ जी ने कहा कि इनका जीवित रहना और मरना एक-सा ही है। क्योंकि हमने तुम्हारी प्रतिज्ञा सत्य करने के हेतु इनसे छात्र धर्म का परित्याग करा दिया है और ब्राह्मणों से इनका सम्बन्ध तोड़ दिया है। इसके अनन्तर गुरु की आज्ञानुसार सगर ने उनके वेश-चिह्नों में परिवर्तन किया।

"यवनान् मुंडिताशिरसः अर्धमुंडान् शकान् प्रलबकेशान् पल्लवांश्च श्मश्रुधरान् निःस्वाध्यायवषद्कारान् एतानन्याश्च क्षत्रियांश्चकार। तेच निजधर्म्मे परित्यक्त्वा ब्राह्मणेभ्यश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः।"

अर्थ उसने यवनों के मूड़ मूड़े जाने की आज्ञा दी। शकों को अधमुण्डा किया। पारदों को बाल बढ़ाने की आज्ञा दी, और पल्लवों को दाढ़ी रखाने को कहा। उसी प्रकार से उसने उनके और अन्यों के लिए यह निश्चित कर दिया कि वे स्वाध्याय और वषट्कार न करें। उन्हें धर्मभ्रष्ट देव ब्राह्मणों ने उनका परित्याग किया। तब से वे म्लेच्छता को प्राप्त हो अन्य देशों में परिभ्रमण करने लगे।

मिश्र देश के लोगों में इस अभिप्राय की आख्यायिका पायी जाती है कि हम लोग भ्रष्ट होकर भारत से यहां आये हैं। 'Jges' के देखने से उक्त मत और भी परिपुष्ट होता है। उक्त कथन से यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि सभी लोग भ्रष्ट हो गए। जावा द्वीप में शंकर का शिवालय है। वैसे ही कास्पियन समुद्र के बाकू नगर में प्राचीन काल का गणेश जी का देवालय है, वहाँ अभी लौं ब्राह्मण रहता है। स्वधर्म्म की रक्षा कर वाणिज्य के निमित्त उक्त देशों को आर्य्य लोग गये होंगे, ऐसा अनुमान जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशलता का स्रोत मानी जाती है, उस संस्कृत भाषा की यथार्थ उत्तराधिकारिणी अन्य भाषाओं की अपेक्षा केवल हिन्दी ही है और इसने अपने राष्ट्र-समानार्थक नाम की पूर्ण रूप से रक्षा की है। अतः यदि हिन्दुस्तान की कोई भाषा राष्ट्रीय भाषा हो सकती है तो उसकी अधिकारिणी एक हिन्दी मात्र है।

4 था —अन्तिम और परम गुरुतापूरित कारण—प्रथम तो उसका नैसर्गिक झुकाव राष्ट्रभाषा होने का दीख पड़ता है। और विद्वानों की तर्कना है कि जिस प्रकार से अनेक ईश्वर एक ईश्वर में मिलकर वर्तमान जाति बनी है, और अनेक तत्त्वों के कारण एक तत्त्व में एकत्रित होने लगे हैं उसी प्रकार से जगत् की समस्त भाषाएँ अनन्त काल में एक हो जायेंगी। और जान भी ऐसा ही पड़ता है कि क्रमशः बोलियाँ प्रधान भाषा में लीन होकर प्रधान भाषाएँ स्वभावतः एक हो सब भाषाओं के क्षुद्र भेद नष्ट होते जाते हैं। इसीसे विद्वानों ने अनुमान कर भविष्य-कथन किया है कि कुछ काल के अनन्तर मुख्य भाषाओं की धीरे-धीरे एकवाक्यता हो जाएगी। इसके सिवाय भाषाशास्त्र-वेत्ताओं का कथन है कि रेल और व्यापार के कारण परस्पर में जो आदान-प्रदान होने लगा है उसके योग से भाषा की भिन्नता नष्ट हो जाएगी। पंजाब, राजपूताना आदि देशों की बोलियाँ, और वैसे ही अपर बोलियाँ भी, इस परस्पर के हेलमेल के कारण थोड़े ही काल में हिन्दी में लीन होकर उसी का रूप धारण कर लेंगी। गुजराती भी हिन्दी में मिल जाएगी। हिमालय से लेकर विंध्याचल-पर्यन्त की भाषाएँ और बोलियाँ नष्ट हो इस भाषा के किंचित् बलिष्ठ होते ही निकटवर्तिनी अपर भाषाओं पर वह अपना आधिपत्य दृढ़ रूप से स्थित कर लेगी। सिंधी भाषा को उसमें लीन होते कुछ देर ही न लगेगी। हाँ बँगला को हिन्दी में मिलने के लिए कुछ काल अलबत्ते लगेगा। और मराठी को हिन्दी का रूप ग्रहण करने के लिए बँगला की अपेक्षा कुछ अधिक दिवस लगेंगे। ऊपर जो बातें कही गईं सो सब प्रकृति-सुलभ हैं। 'सरव्हाइव्स आफ दी फिटेस्ट' इस न्यायानुसार परम बलवती हिन्दी वही शेष रहेगी और समस्त भाषाएँ तद्द्वारा ग्रसित हो जाएँगी। आकर्षण शक्ति का जैसे नियम होता है कि बड़े पदार्थ छोटे पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं वही न्याय भाषाओं के लिए भी चरितार्थ होता है।

सारांश यह कि भाषाओं की एकरूपता होने का यह प्राकृतिक नियम है। धर्म और राजकाज के सम्बन्ध से भी अनेक भाषाओं का एक रूप हुआ करता है। वेदों के समय अनेक प्राकृत भाषाओं की एक संस्कृत भाषा बनायी गयी थी। बौद्ध और जैन लोगों ने धर्म के सम्बन्ध से द्राविड़ी भाषाओं पर अपना आतंक जमाकर अपना धर्म और अपनी सामाजिक बातें स्वीकृत करने के लिए उन्हें बाध्य किया था। संप्रति राजकाज के निमित्त एक भाषा करने के लिए विचार किये जा रहे हैं। स्लेव जाति की एक एशियन भाषा संप्रति बन ही रही है। नेशनल कांग्रेस में भी समस्त भाषाएं बोलने वाले लोगों को उपस्थित होना पड़ता है। जबलों अंग्रेजी का आधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्य है तब लौं वह चलती रहेगी। परन्तु हमारी राष्ट्रीयता के लिए जो एक भाषा होनी चाहिए वह हिन्दी ही होनी चाहिए। उसका प्रकृतिजात झुकाव ही राष्ट्रभाषा होने की ओर है। उसकी किंचित् सहायता करने से और वैसे ही समस्त भिन्न भाषा बोलने वालों के राष्ट्र-हितार्थ त्यक्ताभिमान हो दत्तचित्त से उसका आंदोलन करने से वह राष्ट्रीय भाषा बहुत शीघ्र बनकर 28 करोड़ प्रजा के विचार एकत्र करने के लिए तुरन्त ही उपयोगी होगी।

हिन्दी राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए आपत्तियाँ कौन-सी हैं

यद्यपि हिन्दी आज ही बहुधा राष्ट्रभाषा-सी हो रही है, तथापि हिन्दुस्तान के सब लोगों के बर्त्ताव की भाषा होने के लिए अभी उसके मार्ग में बहुत-कुछ बाधाएँ हैं। प्रत्येक भाषा में लिखने और बोलने-चालने के कारण दो भेद पाये जाते हैं। अत: हिन्दी जिनकी मातृभाषा नहीं है उन्हें उचित है कि वे लेखन भाषा द्वारा उसे अभ्यस्त करें। हिन्दी भाषा के ग्रन्थ समूह के शब्द अनेक भाषाओं में पाये जाते हैं, तो भी यह स्वभाषा से भिन्न होने के कारण, इसके ग्रन्थों का पठन-पाठन प्रथम किंचित् कठिन जान पड़ेगा, यह एक प्रचण्ड आपत्ति है।

वर्तमान अवस्थाओं में उक्त आपत्तियाँ क्योंकर दूर करनी चाहिए ?

(1) एक लिपि।

प्रथम तो हिन्दुस्तान की समस्त भाषाओं की लिपि एक करनी चाहिए[1] बहुतेरे लोगों को देवनागरी लिपि का परिचय बना ही है। एतावता इस नागरी लिपि में ही

1. हिन्दी को रोमन अक्षरों में लिखने का प्रचार प्रारम्भ करने के विषय में कई अँगरेज विद्वानों ने ग्रन्थ लिखे हैं। उक्त लोगों का यह उद्योग यदि सुफल हुआ ही तो केवल योरोपियन वासियों और विशेष रूप से पादड़ियों को ही उससे लाभ पहुँचने की सम्भावना है। परन्तु उक्त प्रचार हमारे भावी राष्ट्र के हित का घोर शत्रु है।

 जबकि योरोपान्तर्गत जर्मन देश के लोग ही रोमन लिपि को स्वीकार नहीं करते तो हम दूर देश निवासी उसको स्वीकार क्योंकर करें? इसके सिवाय रोमन अक्षरों में ऐसा कोई गुण भी नहीं है कि जो हमारी सर्वांग-सुन्दर देवनागरी से बढ़कर हो। देवनागरी के गुणों का क्या देशी क्या विदेशी सभी एक स्वर से गान करते हैं। मिस्टर बडन कहते हैं कि नागरी लिपि का कोई कितना ही बड़ा विरोधी एवं घोर शत्रु क्यों न हो, वह यह कदापि नहीं कह सकता कि इसमें किसी प्रकार की ऊनता है। वैसे ही प्रोफेसर मोनियर विलियम्स ने भी कहा है कि देवनागरी अक्षरों से बढ़कर पूर्ण और उत्तम

[शेष पृष्ठ 72 पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक भाषा के शब्द लिखे जाने से बहुत-कुछ कठिनाई दूर हो जायगी। लिपिभेद के कारण हमारी ही भाषा के शब्दों को हम समझ नहीं सकते। जो केवल हिन्दी ही पढ़ा है उससे उसका अँगरेजी में लिखा हुआ नाम नहीं पढ़ते बनता। हिन्दी भाषा योरोप के लोगों को समझने के अभिप्राय से अंगरेजी लिपि में लिखी जाती है। अब कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि गुजराती भाषा नागरी अक्षरों में लिखी होने के कारण बहुत लोग उसे पढ़ और समझ सकते हैं। अतः यदि एक लिपि हो जायगी तो राजा, कवि, दर्शन आदि तत्सम शब्द, जो सब भाषाओं में उपलब्ध होते हैं, उनका लोगों को सहज ही बोध होने लगेगा। धर्म-सम्बन्ध सब लोगों में प्रायः एक-सा होने के कारण संस्कृत के बहुतेरे शब्दों का लोगों को यों ही बोध होने लगेगा। उसी प्रकार से देशी, अरबी, फारसी और अँगरेजी के शब्दजाल को भी लोग सहज ही में जान लेने लगेंगे। अब रही बात तद्भव शब्दों की, सो यह भी थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ प्रत्येक भाषा में न्यूनाधिक पाये जाते हैं अतः वे भी अगले-पिछले सन्दर्भ के योग से बहुत शीघ्र ही समझ में आने लगेंगे। सारांश, अकेली एक लिपि प्रचण्ड कठिनता को दूर करने का प्रधान साधन है।

(2) उक्त प्रकार से एक लिपि हो जाने पर समस्त भाषाओं के शब्दों का परस्पर बोध होने लगेगा। हिन्दी के बहुतेरे शब्द ऐसे हैं जिन्हें बहुत लोग यों ही जानते हैं परन्तु प्रत्येक प्रान्त में जो विशेष प्रकार के शब्द पाये जाते हैं उनका बोध होना थोड़ा कठिन है अतः उनके ग्रन्थों का पठन-पाठन प्रारम्भ कर देना चाहिए।

[पृष्ठ 73 का शेष]
अक्षर दूसरे नहीं हैं। बम्बई सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस सर अर्स किन पेरी ने Notes to Oriental cases की भूमिका में लिखा है कि एक लिखित लिपि की सर्वांग पूर्णता यही जान पड़ती है कि प्रत्येक शब्द का उच्चारण उसके देखने से ही ज्ञात हो जाय और यह गुण देवनागरी अक्षरों में जिनमें संस्कृत लिखी जाती है तथा दूसरे भारतवर्षीय अक्षरों में अधिक पाया जाता है। इस गुण से लाभ यह है कि हिन्दू बालकों ने जहाँ अक्षर पहिचान लिये कि वे सुगमता से और बिना रुकावट के पढ़ने लग जाते हैं। इससे जिस विद्या के सीखने में योरोप में बहुधा कई वर्ष लग जाते हैं वह भारतवर्ष में केवल तीन मास में आ जाती है।

रोमन लिपि का उच्चारण अपूर्ण है। विवक्षित वर्ग द्वारा विवक्षित ध्वनि का बोध करने की शक्ति उनमें नहीं है। ऐसी अवस्था में देवनागरी जैसी निर्दोष एवं पूर्ण लिपि को छोड़, सदोष और अपूर्ण रोमन लिपि का स्वीकार करना ठीक वैसा ही है जैसे कोई दूध की अभिलाषा से गौ या भैंस को छोड़ आक दुहने के लिए प्रवृत्त हो। सारांश हमारी राष्ट्र भाषा की एक लिपि का स्थान पाने की योग्य अधिकारिणी केवल देवनागरी ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर करे कौन ? यही एक बड़ा भारी प्रश्न है । सुधार-सम्पन्न पाश्चात्य लोग तीन-तीन, चार-चार भाषाएँ जानते हैं । केवल पुरुष ही नहीं, किन्तु स्त्रियाँ भी उन्हें सीखती हैं । पर हमारे यहाँ के लोग जब अपनी मातृभाषा की ही उपेक्षा करने में नहीं हिचकते तो अन्य भाषाओं को अधीत करने का उत्साह उन्हें क्यों होने लगा ? उपायान्तर न होने के कारण विचारों को अँगरेजी पढ़नी पड़ती है । परन्तु ज्ञानाभिरुचि की लालसा से परभाषा सीखनेवाले लोग कहीं कोई स्यात् ही हों । हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा होनेवाली है, उससे हमारी भलाई होगी, अतः हमको उचित है कि हम उसे सीखें, ऐसा कहनेवाले लोग बहुत ही थोड़े होंगे । यद्यपि वर्तमान अवस्था ऐसी है तथापि हमारे देशहितैषियों को शिथिल प्रयत्न न होना चाहिए वरन् हिन्दी सीखने के लिए फलप्रद युक्तियों की शरण लेनी चाहिए । हिन्दी की ओर लोगों का चित्त आकृष्ट करने के लिए सांसारिक लाभ और आवश्यकता बहुत प्रयोजनीय होगी ।

हमारे शासकों का कर्त्तव्य

आजकल कालेज, हाईस्कूल और पाठशालाओं में अँगरेजी अत्यन्त अधिकता के साथ पढ़ायी जाती है, इसका कारण सब लोग जानते ही हैं कि पहिले तो उसके सीखने की आवश्यकता रखी गयी है, दूसरे आगे उससे हित होता है । इसी लाभ से आबद्ध हो विद्यार्थीगण उसे अधीत करते हैं । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आज दिन हमारे परम कारुणिक एवं दूरदर्शी शासक भिन्न-भिन्न देशी भाषाओं को उत्तेजना दे रहे हैं । उन भाषाओं में ग्रन्थ, देश-विवरण, चित्रपट छपवाते जाते हैं । इस सराहनीय कार्य में उनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से यही झलकता है कि उन-उन भाषावाले लोगों को तद्द्वारा लाभ पहुँचे ।

यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जायगी तो हमारी सरकार के बहुत परिश्रम बचेंगे । जब हिन्दी एक भाषा हो जायगी तब हमारी सरकार को प्रत्येक भाषा में थोड़े-थोड़े ग्रन्थ छपवाने की आवश्यकता न रहेगी । जैसे सरकार लोकलसेल्फ गवर्नमेंट, म्युनिसिपलिटी आदि बनाने का उद्योग करती है, उसी प्रकार से हमारी एक भाषा कर देने के लिए उद्योग करना और सहायता देना भी हमारी सरकार का कर्त्तव्य है । विश्वविद्यालय और हाईस्कूलों में द्वितीय भाषा पढ़ाने की प्रथा है, यह दूसरी भाषा एक हिन्दी ही कर दी जाय तो परिणाम बहुत उत्तम होगा । वर्तमान विषय की उपयोगिता पर दृष्टि दी जाय और विचार किया जाय तो यह कहने में तनिक भी अनौचित्य न जान पड़ेगा कि संस्कृत से तादृश लाभ की आशा नहीं की जा सकती, जैसी कि हिन्दी से की जा सकती है । इसका कारण संस्कृत की कठिनता और हिन्दी की सुगमता है यह तो सब लोग जानते ही हैं । ट्रेनिंग कालेज में यदि हिन्दी पढ़ायी जाय तो छोटे-छोटे ग्रामों में अध्यापकों का पद पाने वाले लोगों को बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ पहुँचे और उनसे उनके विद्यार्थियों तथा इष्ट-मित्रों को हिन्दी का ज्ञान बहुत शीघ्र प्राप्त हो। इस भाषा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के हेतु छात्रवृत्ति नियुक्त करनी चाहिए। विश्वविद्यालय में लेख लिखनेवालों के लिए जैसे 200/- 300/- का पारितोषिक नियत रहता है, उसी प्रकार से हिन्दी के प्रोत्साहनार्थ कुछ पारितोषिक नियत करना चाहिए। कई प्रान्तों की हिन्दी में संस्कृत और फारसी के शब्द अधिक पाये जाते हैं, अतः इन दोनों शब्दों के सम्मेलनार्थ व्याकरण और कोश बनवाने चाहिए।

लोगों का वर्त्तमान कर्त्तव्य

किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त होने के लिए जीभ और कान को उसका भली-भाँति संस्कार होना चाहिए। यद्यपि यह बात सच है कि भारत को 28 करोड़ जीभ और 56 करोड़ कानों में से बहुतेरी जीभ और बहुतेरे कानों को हिन्दी का संस्कार होता रहता है, परन्तु उसकी उन्नति के लिए विद्वान् लोगों को यत्नवान् होना ही चाहिए। उन लोगों को समुचित है कि वे लोग हिन्दी के पाठकों से परिचय और ग्रन्थों का सतत अवलोकन किया करें। इसके अतिरिक्त—

1. यह नियम ही हो जाना चाहिए कि जातीय सभा के सभ्यों (डेलिगेटों) को हिन्दी का ज्ञान अवश्यमेव होना चाहिए।

2. हिंदी के नाटक खेलनेवाले तथा हरि-कीर्त्तन करने वाले लोगों को अर्थ-सहायता देनी चाहिए, और निज की पाठशालाओं में हिन्दी की पढ़ाई बाध्य करनी चाहिए।

3. प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी तथा बाबा सूरदासजी प्रभृति परम भागवतों ने हिन्दी में रामायण और सूरसागर ऐसे उत्तम धर्मग्रन्थ रचे हैं कि जिनके श्रवण-पठन से बहुत लाभ पहुँच सकता है। उक्त ग्रन्थों तथा आधुनिक विद्वानों के ग्रन्थों को पुराणों की नाईं श्रवण करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

4. सभाओं और समाजों में हिन्दी में वक्तृता देने का प्रबन्ध करना चाहिए।

इस विषय का लोगों के चित्त पर थोड़ा-बहुत संस्कार होने लगा था कि पूना के लोगों ने इस विषय को सभा में उपस्थित किया। पूना के लोग देशहित के काम-काज करने में अगुवा हुआ करते हैं सो बात सर्वप्रसिद्ध ही है। अतः उन लोगों को उचित है कि वे लोग अपनी वक्तृता की सभा में प्रति वर्ष हिन्दी के विषय के लिए एक पारितोषिक दिया करें और अपर सभाएँ भी इस विषय में राष्ट्रहितार्थ उनका अनुकरण करें।

सम्प्रति के लिए केवल उक्त बातों का ही सम्पादित होना अलग होगा। लिबरल ऐजूकेशन का बखेड़ा चला ही जाता है। लड़के-लड़कियों को शिक्षा देने की ओर लोगों की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जाती है। कालेज, हाईस्कूल और पाठ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालाओं में हिन्दी पढ़ बहुत से लोगों के हिन्दी अध्यापक बनकर प्राथमिक शिक्षा में कामकाज चलाने लायक हिन्दी शिक्षा देने की सामर्थ्य होते ही हिन्दी की उन्नति अत्यन्त शीघ्रता के साथ होने लगेगी। हिन्दी की दो-तीन पुस्तकें पढ़ लेने से काम-काज चलाने योग्य हिन्दी का ज्ञान सहज ही में प्राप्त हो सकता है। लड़के-लड़कियाँ जब थोड़ी-सी हिन्दी सीख लेंगे—और घर में उनके माता-पिता हिन्दी में वार्त्तालाप करेंगे—तो सम्भव है कि उनके बच्चे[1] आगामी पीढ़ी में बहुत अच्छी हिन्दी बोलने लगें और आगे कालान्तर में हिन्दी एक भाषा हो जाय।

उपसंहार

आजकल भारत के नाम से जो देश प्रसिद्ध है वह 'एक राष्ट्र' संज्ञा को कभी प्राप्त नहीं हुआ। पुराकाल में इस प्रदेश में छोटे-छोटे बहुत राष्ट्र थे, उन सबकी अब एकता होने का ढंग दीख पड़ता है। मराठी, गुजराती, कानड़ी आदि भिन्न-भिन्न भाषाएँ परस्पर को अपरिचित होने के कारण इन सब लोगों की एकता होने के लिए किसी एक भाषा का राष्ट्रीय भाषा होना नितान्त प्रयोजनीय है। भारत की वर्त्तमान समस्त भाषाओं को विचार-क्षेत्र में लेने से लक्षित होगा कि हिन्दी का ही 'लिंग्वाफ़्का' या राष्ट्रीय भाषा होना सम्भव एवं उपयोगी है।

पर कई लोग समझते हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए अपर भाषाओं को तिलांजलि देनी होगी। अन्य भाषाएँ शीघ्रता के साथ उन्नति ग्रहण कर रही हैं, उनके अधःपतन का समय अभी बहुत दूर है, अतः हिन्दी का सर्वत्र प्रचलित होना असम्भव है, ऐसा भी बहुतेरों का अनुमान है। परन्तु हमने जो उपाय सूचित किये हैं उन्हें प्रचलित करने से उक्त भय की तनिक भी शंका नहीं रहने पाती। प्रत्येक मनुष्य यदि निज मातृभाषा की रक्षा कर लेगा, तो अल्प काल ही में हिन्दी सर्व-साधारण की एकमात्र भाषा हो जायगी। एक भाषा का होना कोई सुलभ कार्य नहीं है। एक-दो दिन या एक-दो महीने में यह कार्य सम्पादित नहीं हो सकता। इन गुरुतर कार्यों के लिए कई शताब्दियों की आवश्यकता है। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हजारों वर्ष लगेंगे, पर हिन्दी का सर्वत्र प्रचार होने के कारण प्रचण्ड उद्योग करने से वह कई सौ वर्ष में राष्ट्रभाषा हो जायगी। अब यह बात प्रस्फुटित ही है कि आगे होनेवाली सर्व-साधारण की राष्ट्रीय भाषा में और आज की हिन्दी में आकाश-पाताल का अन्तर हो जायगा। और जो लोग यह आक्षेप करते हैं कि आगे

---

1. मध्यप्रदेशान्तर्गत सागर, जबलपुर और होशंगाबाद आदि जिलों में रहनेवाले आजकल के दक्षिणी लोग उक्त सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन लोगों के चार-चार-पाँच-पाँच वर्ष के बच्चे ऐसी हिन्दी बोलते हैं कि सुननेवाले को तनिक भी शंका नहीं होने पाती कि वे दक्षिणी लोगों के बालक होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाली राष्ट्रीय भाषा (हिन्दी) आजकल की हिन्दी से यदि भिन्न होगी तो उससे लाभ ही क्या होगा ? उनका उक्त आक्षेप व्यर्थ है। क्योंकि आजकल की हिन्दी और जगत् की अपर प्रचलित भाषाओं का रूप उनके प्राचीन रूप से बहुत विभिन्न पाया जाता है। 'पद्मावत' की भाषा-प्रणाली में और 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' की भाषा-प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर लक्षित होता है। वर्त्तमान हिन्दी जानने वाले को यही बोध होता है कि 'पद्मावत' की भाषा हमारी भाषा से निराली ही है। यही बात मराठी में अभी सौ-डेढ़-सौ वर्ष के पूर्व जो बखर (इतिहास के छोटे ग्रन्थ) लिखे गये हैं उनके विषय में भी पायी जाती है। सारांश यह कि काल-गति के अनुसार भावी हिन्दी में फरक पड़ जायगा। उसका भय न मान हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए यत्नवान् होना सब भारतवासियों का परम कर्त्तव्य है।

उक्त प्रतिपादन का अभिप्राय यही है कि हिन्दुस्तान का हित-साधन करने के लिए एक राष्ट्रभाषा की परम आवश्यकता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना सम्भव अथच हितावह है। उसके सम्पादनार्थ मार्ग में कंटकप्राय जो कठिनाइयाँ आयेंगी, वे क्योंकर दूर हो सकती हैं, यह पीछे उल्लिखित हो ही चुका है। उक्त प्रकार से भारत में जब एक भाषा बन चलेगी तब भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एकता होती जायगी। वे लोग अपने सुख-दुख का विचार करने लगेंगे, और 28 करोड़ प्रजा या आगे होने वाली 28 करोड़ की वर्द्धमान प्रजा एक चित्त से अपने राजा को सहायता दे सुखशान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत करेगी। इन सब कार्यों की सिद्धि के लिए विद्वानों को सतत परिश्रम करना चाहिए। प्रत्येक देशहितैषी का परम कर्त्तव्य है कि उक्त गुरुतर कार्य का भार अपने ऊपर लेकर उसके संपादनार्थ उद्योग करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्धमालादर्श, 1899

अभिमान

अभिमान धनस्य गत्वरैरसुभिः स्थानुयशश्चिचीषतः ।
अचिरांशुविलासचंचला ननु लक्ष्मीः फलमानुषंगिकम् ।।[1]

(किरातार्जुनीय)

यह विषय मानस शास्त्र का है। मानस शास्त्र उसे कहते हैं जिसमें मनुष्य के मन और हृदय की भिन्न-भिन्न वृत्तियों का वर्णन किया जाता है। शारीरिक में जिस प्रकार से मानव-शरीर के घटक अवयव रक्त, मांस और अस्थि—आदि की विवेचना रहती है उसी प्रकार से उक्त शास्त्र में मानसिक धर्मों की आलोचना की जाती है। हमारे देश में इसके पूर्व इस शास्त्र के ग्रन्थ स्यात् ही प्रणीत हुए हों, पर अंगरेजी भाषा में अपर शास्त्रों की नाईं इस शास्त्र के भी सर्वजनमान्य अनेक ग्रन्थ पाये जाते हैं। सारांश, जिसे-जिसे यह शास्त्र अधीत करने की इच्छा हो, उसके लिए संप्रति अंगरेजी भाषा के व्यतिरेक अन्य साधन नहीं हैं।

(2) इस लेख में उक्त मनोवृत्ति का विवरण शास्त्ररीत्यनुसार नहीं किया जायगा अर्थात् उसके स्वरूप-विषयक सूक्ष्म विचार, उसकी उत्पत्ति का कारण, उसके प्रतिकार के उपाय आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा जायगा। यहाँ केवल व्यवहार प्रथानुसार उसकी आलोचना की जायगी अर्थात् उसका मनुष्य में रहना योग्य है वा अयोग्य है, उससे लाभ-हानि क्या है—आदि के विषय में सर्व-साधारण में जिस प्रकार से चर्चा हुआ करती है, वैसे ही यहाँ इस विषय पर कुछ विचार प्रदर्शित किये जायेंगे।

(3) अब आदि में इस विषय पर सर्वसाधारण की जो सम्मति पायी जाती है उनका संक्षेपतः उल्लेख होना चाहिए। हम यह पूर्णतया जानते हैं कि इस लेख

---

1. नश्वर प्राण-पण से चिरकाल लौं रहनेवाले यश के प्राप्ति की इच्छा करने वाला मानी मनुष्य सम्पत्ति को तृणप्राय मानता है क्योंकि एक तो वह तड़ित् के समान चंचल है और इसके सिवा वह उसकी वीरता का केवल आनुषंगिक फल ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय का उक्त नाम देखते ही हमारे बहुतेरे पाठक यह विचारेंगे कि इस विषय पर लिखने योग्य नई बात कौन सी है ? यह तो आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं कि अभिमान बुरा होने के कारण सर्वथा त्याज्य है, तो फिर उसके विषय में लम्बी-चौड़ी विवेचना कर और अधिक क्या सिद्ध होगा ? जिस मनुष्य को सब लोग अभिमानी समझते हैं, उसका वे तिरस्कार करते हैं, और उस दुर्गुण के कारण उसके अपर गुण भी बहुधा लुप्त हो जाते हैं। संसार में इस बात के प्रमाण ठौर-ठौर पर पाये जाते हैं और यही कारण है कि वयोवृद्ध अनुभवी लोग युवा लोगों को सदा यही उपदेश प्रदान किया करते हैं कि वे सबसे नम्रता पूर्वक बर्त्ताव किया करें सो सबको विदित ही है। प्राचीन तत्त्ववेता लोगों ने मनुष्य के जो छः रिपु बताये हैं उन्हीं में से एक उक्त अभिमान भी है। इन सब बातों को जानबूझकर अब इस मनोविकार की युक्ततायुक्तता के विषय में और क्या विचार किया जायगा। इसकी अयुक्तता तो 'विकार' शब्द में भलीभाँति झलकती है। एतावता वह मनुष्य के अहित का कारण है सो स्पष्ट ही है। अब इससे अधिक भलाई-बुराई की मीमांसा होने को और क्या शेष है। सारांश, यह दूसरा प्रतिपादन भी उक्त जैसा ही निरर्थक हुआ। अस्तु, इस प्रकार से इस विषय पर सब लोग पूर्व ही से निर्णय कर चुके हैं और अब अधिक विचारने योग्य कुछ है ही नहीं, प्रायः सब लोग ऐसा ही विचारेंगे।

(4) परन्तु उक्त निर्णय बहुतांश में सर्वथा सत्य ही नहीं है और इस विषय पर सविस्तार उपपादन करने के लिए अभी बहुत-कुछ बाकी है, सो सब हमारे विज्ञ एवं विवेकी पाठकों का निम्नलिखित प्रबन्ध द्वारा ज्ञात हो जायगा। इस आगे के प्रतिपादन में आज पर्यन्त के परम्परागत कतिपय प्राचीन मत और सर्वसाधारण की सम्मति में बहुत स्थान पर विरोध लक्षित होगा। अब प्रथमतः इसी बात का विचार किया जाता है कि अभिमान को मद का पर्याय जान इसकी रिपुषट्क में जो गणना की गई है वह कहाँ लौं यथार्थ है। कामादि षड्रिपु को आज-पर्य्यन्त सभी लोग यह कहते आये हैं कि यह मनुष्य के हित के बाधक हो उसे घोर आपत्ति में फँसाने वाले हैं। पर किंचित विचार करने से सबको यह ज्ञात हो जायगा कि उक्त कथन केवल एकदेशीय है। अब यह बात सत्य है कि काम-क्रोधादि मनोविकृति की प्रबलता जब मनुष्य को अपने आधीन कर लेती है, तब वह उसके अनर्थ का कारण हो सकती है। पर मान लो कि उसका संसार में अभाव ही हो गया, तो जगत् की क्या अवस्था होगी ? सबमें अग्रगण्य जो काम उसका ही यदि अभाव हो जाय तो सृष्टि का लय ही हो जायगा। उसके पश्चात् क्रोध। क्रोध को नष्ट कर यदि सब लोग धर्मराज की वृत्ति धारण कर लें, सच्चे ईसाई जैसे एक गाल पर तमाचा लगने पर दूसरा गाल भी सामने कर दिया करें, तो न जाने संसार में क्या अनर्थ हो। इसी प्रकार से शेष विकारों के बारे में भी समझ लेना चाहिए। तो उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादन से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उक्त छहों संसार के केवल शत्रु नहीं हैं, किन्तु यह कहना स्यात अनुचित साहस न समझा जायगा कि वे जग के हितैषी मित्र भी हैं और हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य की देह के अन्यान्य अवयव जैसे निष्प्रयोजनीय नहीं हैं, और उनकी कोई क्रिया निरर्थक नहीं है, ठीक वही बात मन की भी है। परमेश्वर ने मन को भिन्न-भिन्न शक्तियाँ प्रदान की हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न वृत्तियों से संलग्न किया है। उन्हें अहेतुक वा अनर्थ करने वाली मानना धर्मानुसार पाप और न्यायानुसार मूर्खता है। अब इस पर यदि कोई यह शंका उपस्थित करे कि यदि ऐसा ही है तो सब देशों के बड़े-बड़े ज्ञानी और विवेकी पुरुषों और हमारे शास्त्रप्रणेता महर्षियों ने उक्त मनोवृत्ति का एक स्वर से निषेध क्यों किया? उक्त शंका का समाधान करना कोई कठिन बात नहीं है। क्योंकि ऊपर जो निषेध कहा गया है वह तत्तद्वृत्ति की अधिकता का ही कहा गया है, स्वयं उस वृत्ति का ही निषेध नहीं किया गया है। और यह यदि ऐसा न होता तो विवाह करना पाप कर्म[1] माना गया होता, 'काम' तीसरा पुरुषार्थ न माना गया होता, और काम की हिन्दू ग्रीक आदि पुरानी जातियों में पूजा न हुई होती। इसके सिवा महात्मागणों की कथाओं में उनके क्रोधावेश प्रभृति का प्रशंसा-पूरित वर्णन भी उपलब्ध न होता। इसके सिवा संसार के व्यवहार में सामान्यतः उक्त काम-क्रोधादि वृत्तियों का योग्य आकलन हुआ हो ऐसे बहुत थोड़े उदाहरण प्राप्त होते हैं, उनकी दुराधर्षता तथा अनर्थहेतुकता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनके अनर्थक होने के प्रचुर उदाहरण पाये जाने के कारण ही लोगों ने उन पर कटाक्ष कर उक्त प्रकार से उनका एकदेशीय वर्णन किया है। तनिक विचार करने से जाना जा सकता है कि उक्त मनोविकार अनर्थ कारक कदापि नहीं हैं। परम चतुर परमेश्वर ने मनुष्यों में उनकी स्थिति यों ही नहीं की है। मनुष्यों के लिए उनका अस्तित्व अत्यंत प्रयोजनीय है। पर बात इतनी ही है कि, मनुष्य सदा उन्हें अपने अधीन बनाये रखा करे, और ऐसा कभी न होने पावे कि वह उनके अधीन हो जाय। जैसे घोड़े पर बैठना। घोड़ा अपना सामर्थ्य और द्रुतगति को बिलकुल मनुष्य के अधीन कर देता है, और सवारी करने वाला यदि चतुर एवं दक्ष हुआ तो उक्त अधिकार को बहुत उत्तमतया काम में लाता है सो सब पर विदित है। पर सवारी करने वाला यदि अनभिज्ञ हुआ तो घोड़े के उक्त दोनों गुण उसके नाश का कारण होंगे, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है।

(5) ऊपर कामादि छः मनोविकारों के विषय में साधारणतया जो प्रतिपादन किया गया है वही वर्तमान लेखके विषय स्वरूप अभिमानके विषयमें भी चरितार्थ

---

1. यह प्रथा रोमन कैथोलिक पन्थानुयायी लोगों में अभी लौं प्रचलित है। उनके धर्माधिकारी को विवाह कदापि न करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। अर्थात् वह स्वयं अनर्थ का कारण नहीं है किन्तु उसकी भलाई-बुराई पर ही सर्वथा निर्भर रहती है। तो अब इससे यह सिद्ध हुआ कि उक्त मनोविकार दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो विज्ञ एवं चतुर लोगों में पाये जाते हैं और दूसरे वे जो अबोध एवं मूर्ख लोगों में दृष्टिगत होते हैं। आगे इन विषयों की यथाक्रम विवेचना की जाती है।

(6) प्रथमतः मूर्ख लोगों की बात। पहले इन्हीं का वर्णन करने के कारण 'दुर्जनं प्रथमं वंदे' सर्व प्रसिद्ध ही है, और इसके सिवा दूसरी बात यह भी है कि जगन्नियंता की इच्छानुसार संसार में इन्हीं की संख्या अधिक है। तो पहले बहु पक्ष को समादृत करना ही हमें उचित बोध होता है। इतने बड़े जन समूह को गर्व एक ही प्रकार से बाधा नहीं करता किन्तु भिन्न-भिन्न द्वारों से प्रविष्ट हो वह अन्तःकरण रूप गढ़ को अपने आधीन कर लेता है। किसी को अपने बल का अभिमान रहता है। वह यही समझता है कि संसार में यदि कोई बलवान है तो वह मैं ही हूँ। लोगों को मुझसे बहुत सावधानीपूर्वक बर्ताव करना चाहिए, मुझे किसी की कटु उक्ति सहन न होगी, पर मैं जिसे जो चाहूँ सो सहूँ, ऐसा बहुतेरे समझा करते हैं। यह दोष विशेष रूप से हमारे मल्लविद्याप्रिय लोगों में अधिक पाया जाता है। कोई एक महीने अखाड़े में यों ही क्यों न जाए और वहाँ जाकर कुछ बल प्राप्त करे वा न भी करे पर तो भी उसके बातचीत करने और चलने आदि में एक विशेष प्रकार की ऐंठ दिखायी देने लगती है। पर मान लो कि वहाँ जाकर कोई महान बलिष्ठ हो ही गया, और लोहे की बड़ी-बड़ी सब्बलें यों ही हाथ से नवा देने लगा, वा पानी भरे हुए बड़े हंडे दाँतों से उठाने लगा, तो भी उसके उक्त साहस कार्य प्रशंसा के पात्र नहीं हो सकते। क्योंकि—

"जरहिं पतंग विमोहवश, भार बहहिं खरवृन्द।
तो नहिं शूर कहावहीं, समुझ देखु मतिमंद।।

अस्तु, उक्त लेख का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि अखाड़े में जा मल्लविद्या के सेवन द्वारा शरीर सामर्थ्य सम्पादित करना बुरा है, किन्तु वर्तमान समय में तो वह अनेक कारणों से अभीष्ट ही है, हमारे कथन का तात्पर्य यही है कि जो सम्पादित किया गया है उसका सदा गर्व मानना मूर्खता का चिह्न है। दूसरा प्रकार सम्पत्ति का है। यह उक्त कारण की अपेक्षा अभिमान का कहीं बढ़के कारण होती है। मनुष्य कैसा ही बलवान क्यों न हो, पर उसके पास कुछ माया और उसकी लोगों में मान्यता न होने के कारण अकेले बल को कोई नहीं पूछता। पर एक सम्पत्ति हुई तो समस्त जन समूह पर उसका आतंकसा जम जाता है। थोड़ा बहुत अधिकार और लक्ष्मीजी की सहायता मिल जाने पर बापुरे गरीबों का नाश करना तो उक्त पुरुषों के लिए एक सहज बात हो जाती है। अतः बहुतेरे लोग उनसे नितान्त नम्र रहा करते हैं और अपर आशाबद्ध लोग उनके निकट ठाकुरसोहाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए निरन्तर उद्यत् ही रहा करते हैं : "आप बड़े उदार हैं, आप महान् गुणवान् हैं, आपके दिये इतने लोगों की जीविका होती है", आदि सच्ची-झूठी प्रशंसा के सिवा उनके कर्णकुहर में और कोई ध्वनि ही नहीं पहुँच पाती, हमारे पीछे हमारे कृत्रिम कार्यों को देख लोग हमारे विषय में पीछे क्या कहते-सुनते होंगे—आदि का विचार जिन्हें स्वप्न में भी नहीं होता, ऐसे लक्ष्मी के लाड़ले सपूत यदि अभिमान के आगर बन जायँ तो आश्चर्य ही क्या है ? इन लोगों में से जो लोग निजके परिश्रम द्वारा ऐश्वर्यवान एवम् विभवशाली हुए हैं, उन्हें उक्त अभिमान कुछ अंश में फबता भी है। पर जो लोग भूतपूर्व पुरुषोपार्जित सम्पत्ति को पा अभिमान करते हैं उन्हें तो वह बिल्कुल ही शोभा नहीं देता। क्योंकि भले कुल में जन्म पाना तो दैवाधीन बात है, अतः उसका अभिमान मानना व्यर्थ ही है। ऐसे कुलीन पुरुषों का अपनी कुलीनता के लिए गर्व मानना ईसाब कथा संग्रह के खच्चर की नाईं हास्योत्पादक है। वा यदि ऐसा ही माना जाय कि उनके पूर्वजों की समुज्ज्वल कीर्ति ही उनकी दुष्कीर्ति का विशेष रूप से कारण होती है, तो स्यात अनुचित साहस न कहावेगा। क्योंकि स्वच्छ शुभ्र वस्त्र पर जैसे कोई छोटा सा दाग भी तुरन्त ही दिखाई देने लगता है, वैसे ही अभिमान का विषय जो कुलीनता, वही इन वंशजों को अपकीर्ति प्रदर्शक होती है। इन लोगों का वस्त्रालंकार विषयक गर्व भी ऐसा ही होता है। इस अभिमान की व्यर्थता सोलन नाम के एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता ने एक स्थान पर जैसी उत्तमतया प्रदर्शित की है वैसी बहुत ही थोड़े लोगों ने प्रदर्शित की होगी। किसी एक राजा ने अपना अतुल विभव उसे बड़े अभिमान के साथ दिखलाया जिसे देख उसने एक दो शब्दों में ही उसके अभिमान का पूर्ण रूप से खंडन कर दिया। उसने कहा, "राजा, तेरी अपेक्षा मोर मुझे अधिक विभवशाली प्रतीत होता है, और उसका अभिमानी होना भी अधिकतर यथार्थ है।" अस्तु, तीसरा प्रकार रूप लावण्य का है। एतद्विषयक अभिमान पुरुषों को बिलकुल शोभाप्रद नहीं होता, वह सर्वथा स्त्रियों का ही विषय है। पति की प्रीति अपने पर दृढ़ स्थित करने के लिए वह उनका एक प्रचण्ड साधन है। अतः उसे धारण करने तथा बढ़ाने की चेष्टा उन्हीं को शोभा देती है। पुरुषों को अपनी शूरता, चतुरता आदि का गर्व जैसे शोभाप्रद होता है वैसे ही स्त्रियों को उनका रूपगर्विता होना फबता है, क्योंकि वह स्त्री जाति के लिए एक बढ़िया भूषण माना जाता है। पर उनकी मृदुता, भीरुता प्रभृतिगुण जैसे पुरुषों को दोषरूप होते हैं, वैसे ही सुभगता का अभिमान और अंग विक्षेपादि की अभिरुचि पुरुष जाति के लिए नितांत निन्द्य है। अब अन्तिम और सबसे बड़ा प्रकरण विद्या का रह गया है, उसके विषय में सविस्तार लिखना अभीष्ट जान पड़ता है। क्योंकि संप्रति हमारा देश मानो घोर निद्रा से सहमा जाग्रत हुए जैसा जान पड़ता है, और उसी का प्रभाव है कि धरोहर विद्वत्ता के नगाड़े बजते से दिखाई देते हैं। हमारे यहाँ हमें ज्ञानामृत पिलाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जो चारों ओर उद्योग प्रारम्भ किये गए हैं, उनके अभी से जो फल दृष्टि-पथ में आने लगे हैं, उनसे अनुमान होता है कि हमारे शिक्षा गुरु लोगों की इच्छा शीघ्र ही सफल होगी। ज्ञानामृत का पात्र योंही होठों से लगा हम लोगों ने उसका एक घूंट स्यात ही पिया हो, पर इतने ही में चारों ओर कैसे-कैसे आश्चर्य एवं कौतूहल दृष्टिगत होने लगे हैं। देखिए, स्वयं कालिदास, होमर और मिल्टन आदि के मुंह में तमाचे लगाने वाले महान् कवि, ईसा मसीह, मुहम्मद जैसों को एक ओर रख धर्म स्थापित करने वाले आचार्य, डिमास्थनीस, सिसरो प्रभृति भी जिनकी सुरस वक्तृता को सुन चित्रार्पित से हो रहें ऐसे प्रचण्ड वक्ता वैसे ही महान् महान पण्डित शिल्पज्ञ आदि का समुदाय प्रादर्भूत हो उसने चारों ओर घोर आन्दोलन-सा मचा दिया है। इतने थोड़े से समय में ही इन सब उलट फेरों को देख आगे क्या होगा सो कुछ नहीं जान पड़ता है। जब एक समयावच्छेद द्वारा सहस्रों महाकवियों का निनाद धरती पर होने लगेगा, और सहस्रावधि प्रचण्ड वक्ताओं की वक्तृता की एक साथ ही गर्जना होने लगेगी तब क्या आश्चर्य कि आकाश मण्डल वसुन्धरा पर न आ जाए। सारांश उक्त विलक्षण अवस्था को देख यह कल्पना होती है कि बैबल में जो लिखा है कि संसार के अंत में प्रभु ईसामसीह एक हजार वर्ष लौं शासन करेगे सो क्या वह परमसुख का समय नगचाने तो नहीं लगा है। उन प्रभु ने अपना पहला अवतार हमारे एशिया महादेश में ही लिया था, तदनुसार अन्तिम बार यदि उन्होंने यहीं अवतीर्ण होना विचारा हो तो ईश्वर ही जाने। तात्पर्य, हमारे देश में इस अल्पकाल में विद्वता आदि का जो फैलाव हुआ है सो कुछ अपूर्व ही है। परन्तु इस विस्तार के अनुसार लोगों में ज्ञान एवं विवेक की वृद्धि कहाँ लौं हुई है, यह जो जानना चाहेगा तो उसे एक निराले ही प्रकार से संतोष मान लेना पड़ेगा। हमारे लोगों की बुद्धि का विलास और तज्जात साहस कार्यकलाप जो ऊपर कहे गये हैं उनकी यर्थाथता का विचार करने से विज्ञ लोगों को ज्ञात हो जायगा कि हम लोगों को अभी जो थोड़े काल से ज्ञान का संस्कार हो चला है, तज्जन्य यह दुर्विकार बहिर्गत हो रहे हैं। मनुष्य के तिमिराच्छादित मन में ज्ञान भास्कर की किरणों का जब प्रवेश होने लगता है तब आदि में गर्वादि दुष्ट मनोवृत्ति उसे किस प्रकार से दबाना चाहती है उसका नीचे सविस्तार वर्णन किया जाता है। महर्षि भर्तृहरिजी अपने नीतिशतक में लिखते हैं—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्वभवदवलिप्तं ममम मनः।
यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

"जब मैं योंही कुछ थोड़ा बहुत समझने बूझने लगा था, तब हाथी की नाईं मदांध (मद शब्द द्व्यर्थी है) हो गया था, और यही अभिमान रखता था कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वज्ञ हूँ। पर आगे जैसे-जैसे मुझे पण्डित लोगों के सत्संग में थोड़ा-थोड़ा ज्ञान प्राप्त होता गया, वैसे-वैसे मुझे विश्वास होता गया कि मैं मूर्ख हूँ। इस प्रकार से मेरा वह मद ज्वर की नाईं क्रम क्रमशः उतर गया।"

कहना नहीं होगा कि उक्त पद्यकी सृष्टि कवि के आत्मानुभव से हुई है। और जिन लोगों की दृष्टि यर्थाथ ज्ञान लौं पहुँच चुकी होगी उन सबको उक्त बात का प्रत्यय आ ही गया होगा। इनके सिवा जो मनुष्य सम्यक् विचार करेगा कि अधीन करने के विषय कितने हैं, मानव बुद्धि कैसी अल्प है, उसे तुरन्त ही बोध हो जायेगा कि मनुष्य का ज्ञानके लिए अभिमानी होना प्रचण्ड मूर्खता है। आदि में जब मनुष्य अध्ययन करने लगता है तब वह यह सोचता है कि मुझे जितना पढ़ना है उतना पढ़ लेने पर फिर पढ़ने के लिए कुछ भी शेष न रहेगा; पर वही मनुष्य जब आगे अधिका धिक ज्ञान लाभ करने लगता है तब उसे ज्ञानका प्रदेश विस्तृत होता हुआ दिखायी पड़ने लगता है। इस प्रकार अंत में उसे दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ज्ञान की सीमा आकाशवत् अनन्त है।[1]

---

1. इसका निरूपण पोप कविने एक स्थान पर नितांत सरस दृष्टि स्वरूप से किया है—

Fired at first sight with what the muse imparts In fearless youth we empt the heights of art, while from the bounded level of our mind, short views we take, nor see the tengths behind, But more advanced, behold with strange surprise ri New distant scence of endless science rise! So pleased at first the towering Alps are try, mount o'er the vales, and seen to tread the sky, The enternal snows apppear already past. And the first clouds and mountains seem the last. But those attaimed, we tremble to survey, the growing labours of the lengthend way, the increasing prospect tries our wandering eyes, Hills peepores hills, and Alps on Alps arise.

—Essay on critisim.

ऊपर लिखित अंग्रेजी पद्योंको काशी निवासी श्रीयुत जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' बी.ए. ने यों अनुवादित किया है—

बानिदान सों उत्तेजित है आदि मांहि नर,
निडर जवानी मैं, ललचात कला श्रंगल पर,
औ अपने परिमित चित की पुहुमीसों देखैं
निकट दृश्य ही, पीछे को प्रस्ताव न पैखें, [शेष पृष्ठ 86 पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त बात जिनके मन में पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित हो गयी होगी वे समझ गये होंगे कि मनुष्य का ज्ञान केवल सापेक्ष है, अर्थात् जब हम यह कहते हैं कि अमुक मनुष्य बड़ा चतुर वा विद्वान है तो उसका यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए कि वह किसी अपर पुरुष की तुलना करने से वैसा जान पड़ता है। और बिना तुलना किये उसे ज्ञान विशिष्ट कहना वैसा ही अनुचित है जैसाकि धरतो के किसी पदार्थ के विषय में निर-पेक्षतापूर्वक उसके ऊँचाई का विधान किया जाय। अर्थात् जैसे किसी वृक्ष, मीनार वा पर्वतकी ऊँचाईका कारण उसके आस-पास के पदार्थों को निचाई होती है, समस्त पृथ्वी के विषय में विचारा जाय तो वास्तव में ऊँचे पदार्थ और धरती पर रेंगनेवाली चिउटी दोनों एक से ही जान पड़ेंगे, उसी प्रकार से इतर मनुष्यों का सम्बन्ध यदि न विचारा जाय तो प्रचण्ड विद्वान और अक्षर शत्रु मनुष्य दोनों एक से ही लक्षित होंगे विद्या प्रिय लोगों को यह विदित ही है कि पृथ्वी पर सबसे ऊँचा अचलराज हिमालय का एवरेस्ट नामक शिखर माना जाता है और उसी प्रकार हिंद महासागर का कुछ भाग सबसे निम्न माना जाता है, पर इतनी बड़ी पाँच मील की ऊँचाई और पाँच मील की निचाई विद्यमान होने परभी यह धरातल खासा गोलाकार ही दिखाई देता है ! इसका प्रत्यक्ष अनुभव चन्द्रबिंब द्वारा होता है, अर्थात् चन्द्रपर धरतीकी नाई ही पर्वत आदि होने पर भी यहाँ से उसका किनारा एकसा गोल दृष्टिगत होता है। वा पृथ्वी का ही पृष्ठ भाग देखना हो तो वह चन्द्रग्रहण के समय चन्द्र बिंबों पर छाया-रूप से सबको दृगोचर होता है। हिमालयादि नगाधिराजों ने अपने-अपने उत्तुंग एवं गगनभेदी हजारों शिखरों को यद्यपि आकाश में उपस्थित कर रखा है तथापि उक्त ग्रहण के समय चन्द्र बिम्बों पर धरातल की छाया खासी गोलाकार हो पड़ती है। ऐसे प्रचण्ड एवं विशाल पर्वतों के योग से भी उसकी आकृति में कहीं कुछ अणुमात्र शाखा

[पृष्ठ ८5 की शेष पादटिप्पणी]

पै विचित्र विस्मयजुन अवलोकत आगे बुढ़ि
अमित शास्त्रके दूर दृश्य नूतन आवत कढ़ि।
प्रथम रीझित्यों हम हिमगिरि चढ़िबो अभिलाखैं,
खाडिनपै चढ़ि जान लेत नभ पै पग राखैं !
ज्ञात होत हिम दल सदैव थाई पछियाने,
प्रथम शृंग औ मेघ परत अंतिम से जाने,
पाय उन्हें पै हम इत उत कातर है देखैं,
वर्द्धमान श्रम परिवर्द्धित मगको जब पेखैं,
अति अधिकौहैं दृश्य चपलचल चखहि थकावैं,
श्रृंगन उपर श्रृंग गिरिन पै गिरि पै गिरिचलि आवैं।"

—समालोचनादर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी भी नहीं दिखायी देती। तात्पर्य, उक्त दृष्टांत द्वारा हमारे विज्ञ एवं विवेकी पाठकोंको लक्षित हो सकता है कि पदार्थों की ऊँचाई जैसे सदा सापेक्ष ही रहती है, ठीक वही बात मनुष्य के ज्ञान की भी है।

उक्त उपपादन से एक बड़ी भारी बात यह निर्धारित होती है कि ज्ञान अनन्त है, एतावता मनुष्य कैसे अल्पज्ञ एवं क्षुद्र जन्तु को ज्ञान का गर्व मानना बिल्कुल शोभाप्रद नहीं होता। अपने से जिसे कम ज्ञान है उसके समीप चाहे जैसा अभिमान चल जा सकता है, पर उसकी यथार्थकता विचारी जाय तो यही सिद्ध होगा कि उक्त अभिमान मानना वैसा ही तुच्छ एवं नीच हृदय का साक्षी है जैसेकि एक चिमटा मैं चिमटी से बड़ा हूँ मानकर अभिमान करे। यथार्थविद् लोग इसी बात को जानकर अपने ज्ञानका अभिमान नहीं मानते और अपर लोगों की अवहेलना वा अपमान कदापि नहीं करते। वे अपने ज्ञानकी सीमा तथा अपरपारताकी पूर्णरूपसे जान लेते हैं। इस प्रकार का मनोनिग्रही तत्वविज्ञता का सच्चा चिह्न है, और इसके विपरीत का प्रत्यय अत्यन्त मूर्खता का सूचक है। इसलिए किसी चतुर ग्रंथकार ने कहा है कि तत्ववेता अपनेको ज्ञान-शून्य माना करता है और मूर्ख अपनेको सर्वज्ञ माना करता है। इन दोनों प्रकारके उदाहरणभी बहुत कुछ उपलब्ध हो सकते हैं। हमारे बहुतेरे पाठकों को साक्रेटीस की बात विदित ही होगी। उसने जब सुना था कि डेलभाप के देवता ने लोगों को विश्वास दिलाया है कि समस्त ग्रीस देश निवासी लोगों की अपेक्षा साक्रेटीस अधिक चतुर है तब वह बड़ी उलझनमें पड़ गया था। वह यह बात विचारता था कि, मुझे तो जान पड़ता है कि मेरा ज्ञान बहुतही अल्प है। और उक्त देवता ने मुझे सर्वोपरि ज्ञान सम्पन्न कहा है अब इन दोनों परस्पर विरुद्ध बातोंका एक साथ अस्तित्व क्यों कर संयुक्त हो सकता है? पर आगे इस बात पर वह जैसे-जैसे मनन करता गया उसे विश्वास होगया कि जो लोग अपने को बड़ा चतुर एवं बुद्धिमान मानते हैं, बास्तव में वे अल्पज्ञ ही रहते हैं। उनमें और मुझमें विशेष भेद इतना ही है कि मैं अपने अज्ञान को समझता हूँ और वे उसे नहीं समझते! ऐसा ही प्रशंसनीय उदाहरण न्यूटन का भी है। इस महान् पण्डित ने ऐसे-ऐसे अनोखे आविष्कार संसार में प्रकटित किये पर तो भी उसने अपनी जीवन यात्रा शेष करने के कुछ वर्ष पूर्व अपने विषय में यह विलक्षण लेख लिखा था --"मेरे विषय में लोग कैसे ही आश्चर्यचकित हों, पर मुझे तो यही जान पड़ता है कि जैसे कोई बालक समुद्र-कूल पर क्रीड़ा करता है और वहाँके चिकने और गोल गोल कंकरों को चमत्कारिक जान एकत्रित करता है, मेरी बातभी ठीक वैसीही है, जिन्हें मैं नहीं जानता ऐसे करोड़ों प्रेमियोंका सागर तो न जाने मुझसे अभी कितनी दूरी पर है!" सारांश सब देशों में जो बड़े-बड़े नामी तत्ववेत्ताजन हो गये हैं उन सबका पूर्ण सिद्धांत यही पाया जाता है। अब उक्त प्रकारके विपक्ष का विचार करते हैं। संसार में ऐसा विरला ही स्थल होगा, जहाँ इसकी ऊनता हो। इन लोगों को स्वप्न में भी अपने अज्ञान का बोध नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता। इसके सिवा उसे जानने की इन्हें इच्छा भी नहीं रहती। इन लोगों की सदा यही इच्छा बनी रहती है कि सब लोग हमें सर्वज्ञताका मान दिया करें, और इस हेतु की सिद्धि के लिए ये लोग अपने भरसक सब विषयों में अपनी पूर्णता एवं दक्षता दिखलाने के लिए अणुमात्र कसर नहीं करते हैं। पर यह हो कैसे सकता है? हाँ, इतना अलबत्ते हो सकता है कि लोभवश जिनकी बुद्धि तिमिराच्छादित हो जाती है उन मूर्ख लोगों को, प्रताड़ित करने के लिए उक्त नर पिशाचों की उक्त दिखावटी सर्वज्ञता बहुत उपयोगी होती है। पर साथही यह भी कहना पड़ता है कि संसार में सब ही लोग तो निज हिताहित ज्ञानशून्य रहते ही नहीं कि जो जो उक्त दुष्टों की चालमें आ जावें, अन्त में उक्त मानवरूप राक्षसों की धूर्तता कि जिसे वे सर्वज्ञता के आवरणके नीचे छिपाये रहते हैं, सर्वसाधारण को दृष्टिगत हो जाती है, और उनकी अधमता का उचित फल उन्हें प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य, विज्ञ और अबोध लोगों की समझ में उक्त प्रकार की विभिन्नता पायी जाती है।

(7) यहाँ लौं वर्तमान विषय के एक अंग की आलोचना हुई। अर्थात् अल्पज्ञ लोगों में जिस प्रकार के गर्व की स्थिति पायी जाती है उसका वर्णन हुआ। अब आगे उक्त मनोवृत्ति की उस अवस्था का निर्देश किया जाता है जिसमें उसकी दोषरूपता नष्ट होकर वह मनुष्य की कीर्ति एवं शोभा का कारण होती है।

गर्व के जिन प्रकरणों का ऊपर विचार हुआ है वे नहीं हैं जो हमारी भाषा में 'उन्मत्तता', 'घमंड', 'अहंकार', 'अहंमति' प्रभृति निन्दा व्यंजक शब्दों द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहींकि ये सर्वथा सदोष होनेके कारण विज्ञ लोगों द्वारा अत्यन्त त्याज्य हैं। पर गर्व के ऐसे भी कुछ भेद हैं जो उक्त प्रकारों कैसे निन्द्य न होने के कारण सज्जन और बड़े नामी लोगों में पाये जाते हैं। अब आगे उन्हीं का निरूपण किया जाता है।

(8) एक भेद तो योग्य रीति के गर्व का माना जाता है व्यक्ति विशेष में जो यथार्थ गुण हों, उनके विषय में सदा उसका आत्मश्लाघा करना यद्यपि मनुष्य धर्म से बहि है। अतः उसे सुननेवाले का जी भी उकता जाता है, पर तो भी उसके विषय में यथायोग्य गर्व धारण करने से मनुष्य सर्वथा दोष पात्र ही नहीं हो जाता है। जो ऐसे मनुष्य के द्वेषी रहते हैं, वा स्वभावतः जो लोग किसीका उत्कर्ष नहीं देख सकते, उन मत्सरी लोगों को उक्त यर्थाथ गर्व भी दुःसह होता है सो ठीक है और साथ ही यह भी ठीक है कि वे तदर्थ उसकी निन्दा वा बुराई करने में तिलमात्र कसर छोड़ना अपनी उत्पत्ति को कलंकित करने कैसा समझते हैं, पर जो लोग न्यायी और सत्य के पक्षपाती होते हैं उन्हें उक्त यर्थाथ गर्वधारकके बर्तावमें अणुमात्र भी दोष नहीं दीख पड़ता। इसके लिए व्यवहारगत उदाहरण लीजिए। प्रत्येक मनुष्य अपनी आय और ऐश्वर्यके अनुसार अपना बर्ताव रख अपनी अवस्थाके अनुसार वस्त्रादि धारण करता है, उसे संसार में कोई नाम नहीं रखता। पर उक्त मर्यादा उल्लंघित कर जो व्यर्थ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना आतंक लोगों पर जमाया चाहता है, उसका किसी कारणवश सामने-सामने नहीं तो पीछे लोग उपहास ही करते हैं, और यही ठीक भी है। और ठीक ऐसी ही अवस्था उसकी भी होती है जो अपनी यथार्थ योग्यता की अपेक्षा अधिक विद्वता का घमण्ड लोगों पर प्रदर्शित किया करता है। पर संसारमें जो अपनी यथार्थ योग्यतानुसार बर्ताव रखता है वह जैसे दूषित नहीं किया जा सकता, तद्वत् जो अपनी योग्यतानुरूप अपने यथार्थ गुणोंका अपने मनमें अभिमान मानता है वह भी दूषित नहीं हो सकता। पर यह बात सर्वसाधारण के विषय में साधारणतया ही कहा जा सकती है। गुणवान् लोगों में अग्रगण्य होने के कारण जो लोग जगत्पूज्य माने जाते हैं, और सब लोग जिनकी प्रशंसा करने में अपनी महत् प्रतिष्ठा मानते हैं उनकी बात तो उक्त बात से कहीं बढ़के है। सामान्य प्रकार के नामी लोगों के विषय में तो इतना ही दीख पड़ता है कि उनका यथार्थ गर्व उन्हें दूषित नहीं करता, पर उक्त कैसे श्रेष्ठ-जन मंडलीको वह दोषावह न होकर उल्टा उनकी विशेष शोभाका कारण होता है। इसके उदाहरण स्वरूप में सम्राट राजाकी बात कहीं जा सकती है कि उसके अधिकाधिक विभव एवं ऐश्वर्यका प्रदर्शित करना उसकी अधिकतर शोभा का सहायक होता है। उक्त दृष्टांत को जो लोग यथार्थ समझेंगे उन्हें भिन्न-भिन्न देशोंमें महान् महान् ग्रंथकारादिकों ने आत्मश्लाघा के विषय में जो लिखा है सो पढ़ तृण मात्र भी आश्चर्य न होगा और पढ़ते समय हृदयवृत्ति किस प्रकार की होनी चाहिए सो भी उन्हें ज्ञात हो जायेगा। अस्तु, अब नीचे इनके उदाहरणस्वरूप में कुछ बातें लिखी जाती हैं।

यह बात प्रायः सब लोग सुन चुके होंगे कि इंग्लैंड में अनुमान दो सौ वर्ष के पूर्व मिल्टन नामका एक बड़ा नामी कवि हो गया है। इस कवि के लेख में आत्मश्लाघा संयुक्त उल्लेख ठौर-ठौर पर पाये जाते हैं। इस कवि ने जब जाना कि मेरी नूतनता के कारण मेरे अरसिक समकालीन लोग मेरी विलक्षण प्रतिभा की योग्यता नहीं समझ सकते तब इसने अपने लेख प्रवंध में एक स्थान पर यह लिखा कि "मैं इस समय यदि जन्म न ग्रहण करता किन्तु इसके पूर्व ही जन्म ग्रहण कर चुकता तो बहुत ही उत्तम हुआ होता"।[1] चरम अवस्था में जब इस कवि के पक्ष का समूल नाश हो गया और विपक्षियों की जय हुई जोकि उसके लिए अत्यन्त विपत्तिका कारण हुई उसका भी इसने काव्य में स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। युवावस्था में अत्यन्त अभ्यास करने के कारण अन्त में इसके नेत्र जाते रहे, जिसके कारण इसे अपने

---

1. इसके विषय में कुछ-कुछ ऐसी ही सम्मति इसके विपक्षी जानसन्‌ने भी एक निराले ही ढंग से लिखी है—
"His work is not the greatest of heroic poems only because it is not the first'-life of milton.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुढ़ापे के दिन बड़े दुःख के साथ काटने पड़े, इत्यादि घटनाओं का वर्णन इसने दो मुख्य स्थानों पर किया है। एक तो अपने महाकाव्य के तीसरे सर्ग के आदि में और दूसरा 'स्याम सन् एगोनिसृस' नामक नाटक के प्रारम्भ में ही पाया जाता है। इसके उक्त दोनों स्थलों को पढ़ जिनके हृदय करुण और उदात्त रस से व्याकुल नहीं हो जाते, उन्हें धन्य पुरुष मानना कोई अनुचित बात नहीं है। इसके सिवा दूसरा उदाहरण वर्ड्सवर्थ नामक कवि का है। यह कवि अभी अनुमान तीस पैंतीस वर्ष पूर्व लोकांतरवासी हुआ है। इस कवि की योग्यता यद्यपि उक्त कवि के तुल्य न थी, तथापि वर्तमान शताब्दी में इंग्लैंड में जो कई महान्-महान् कवि हो गये हैं उनमें यह सर्वसाधारण के मत से प्रधान माना जाता है। पर यह मान इसे अब इधर ही प्राप्त हुआ है। इसके जीवितकाल में छोटे बड़े रसिक अरसिक विद्वान अबोध सब लोग इसकी कविता का अत्यन्त उपहास किया करते थे। पर यह उदात्तचित्त कवि उन सबके व्यर्थ बकवाद की उपेक्षा कर भावी समय पर अपनी आशा को स्थिर कर बड़े साहस से कालातपात करता था, और अन्त में उसी की जीत हुई। तात्पर्य यह है कि इस कवि के लेख में भी आत्मश्लाघा संयुक्त वर्णन उपलब्ध होते हैं। हमारे संस्कृत के कवियों में भी उक्त बात का अभाव नहीं है। अनुमान से यह बात जानी जाती है कि उक्त वर्डस्वर्थ की नाईं हमारे सुप्रसिद्ध कवि भवभूति की अवस्था हुई होगी। सामान्यतः पण्डितजन यद्यपि यह समझते हैं कि भोजराजा के आश्रय में जो कविरत्न थे उन्हीं में कालिदासादिकों की मण्डली में उक्त कवि भी था तो भी अनुसंधानशील लोगों ने यह बात निश्चित कर दी है कि उक्त कवि रत्नावलि में भवभूति न था। भवभूति के ग्रन्थों में कहीं-कहीं ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि उसे गुणज्ञों की प्रशंसा और राज सत्कार दोनों प्राप्त नहीं हुए। उलटे अरसिकों द्वारा वह अवकृत किया गया, ऐसा ही बोध होता है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप नीचे एक श्लोक उद्धृत किया जाता है—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु दे किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालो ह्ययं निखधिर्विपुलाच पृथ्वी॥

—मालतीमाधव

"जो लोग चारों ओर मेरी अवज्ञा विस्तृत करते हैं उन्हें दृढ़तया समझ लेना चाहिए कि उनके अर्थ मेरा यह यत्न ही नहीं है। मुझे दृढ़ भरोसा है कि जिसके मनोधर्म मेरे मनोधर्म की नाईं होंगे ऐसा कोई न कोई कहीं होवेगा ही, वा आगे उत्पन्न होगा, क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विस्तीर्ण है।"

उक्त श्लोक का अनुवाद अंगरेजी में यदि पद्य स्वरूप में किया जाय तो वह वर्डस्वर्थ का ही लिखा हुआ है यह कहने में कोई तनिक भी न हिचकेगा, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों में ऐसी घनिष्ट साम्यता पायी जाती है। सारांश, अपने समय के गुणानभिज्ञ लोगों की निर्भर्त्सना उक्त महान् कवियों के ग्रन्थों में दृष्टिगत होती है और उनके उक्त लेख ऐसे प्रभावोत्पादक हैं कि उन्हें पढ़ सहृदय पाठक अत्यन्त तल्लीन हो जाते हैं। ऐसी ही सुतरां इससे कहीं बढ़के उद्दंडता संस्कृत के अर्वाचीन कवि पण्डितराज जगन्नाथ की कविता में भी पायी जाती है। इसके कतिपय उदाहरण नीचे उल्लिखित किये जाते हैं।

'भामिनीविलास' के प्रथम भाग में प्रायः समस्त अन्योक्तियाँ ही हैं। वहाँ आदि में ही पण्डितराज गर्जना करते हैं—

दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डाः करटिनः
करिण्य कारुण्यास्पदमसमशीलाः खलुमृगाः।
इदानीं लोकेऽस्मिमन्नुपमशिखानां पुनरयं
नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतुकस्मिन्मृपतिः॥

"मदोदक से जिनके गण्डस्थल मलिन हो गये हैं ऐसे हाथी दिगंतर में हैं ऐसी जनचर्चा सुनी जाती है और आसपास केवल करुणापात्र हस्तिनी तथा क्षुद्र जन्तु ही दृष्टपथ में हैं तो ऐसे समय में मृगराज सिंह अपने अत्यन्त तीव्र नखों का पांडित्य कहाँ प्रकटित करे?"1

वैसे ही उक्त ग्रन्थ के अन्त में—

आमूलाद्रात्रिसानोर्मलयवलयितादाचकूलात्पयोधेः
यावन्तः सन्ति काव्यप्रणयनपटवस्ते विशंक वदन्तु।
मृद्वीकामध्यनिर्यन्मसृणमदधुरी2 माधुरीभाग्यभाजां
वाचामाचार्यतायाः पदमनुभवितुं कोस्ति धन्यो मदन्यः॥

---

1. उक्त अन्योक्ति कवि ने निज के विषय में लिखी है। उसका अभिप्राय यही है कि प्राचीन काल में कालिदास महान् कवि हो गये पर अब उनके जैसे कोई नहीं पाये जाते और जो पाये जाते हैं वे वापुरे 'करुणास्पद' करुणा करने योग्य और क्षुद्र पाये जाते हैं। ऐसी अवस्था में अब हम यदि किसी से सामना किया चाहें तो किससे करें? उक्त श्लोक का भावार्थ किसी भाषाकवि ने यों लिखा है—

लोग कहैं दिग अन्त वसैं मदमत्त करी मद अंबु चुचाते
सन्निधिवास करें करिणीरु मृगा लखिकै करुणा हिय आते।
संप्रति जाय कहाँ जगती असमान बलै पगटै मनभाते
गर्जत केसरि यों इत राजत नित्य मनोमन ईश मनाते॥

2. कहीं-कहीं 'रसझरी' भी पाठ पाया जाता है। कहीं-कहीं 'सम्प्रत्युज्झितवासनं' भी पाठ पाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सुमेरु पर्वत के मूल से लगाकर मनवेष्ठित सागर के कूलपर्यंत (अर्थात् समस्त भारतवर्ष में) जो काव्यरचना निपुण हों, वे सब निश्शंक हो कहें कि द्राक्षसंभूत रस के समान अत्यन्त मधुर शीला वाणी के स्वामित्व जन का अनुभव लेनेवाला मदतिरिक्त अपर कौन धन्यपुरुष है ? (अर्थात् मेरे समान रसपूरित काव्य करने वाला दूसरा कौन है ?)"

ऐसा ही अन्तिम श्लोक—

शास्त्राण्याकलि ततिर्नित्य विधयः सर्वेऽपि सम्भाविताः
दिल्लीवल्लभ-पाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः ।
संप्रत्युज्झितमासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते
सर्वं पण्डितराज राजितिलकेनाकारि लोकाधिकम् ।।

"समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया, सकल नित्यविधि भी साधे, दिल्ली नरेश आश्रित रहकर युवावस्था व्यतीत की (अर्थात् बादशाह ने अत्यन्त समादृत किया) और अब विषय वासनाओं का परित्याग कर मथुराक्षेत्र में हरि की सेवा करता हूँ, सारांश, पण्डितराज श्रेणी के तिलकस्वरूप (जगन्नाथ ने) ऐसा कौन-सा लोकोत्तर कार्य है जो नहीं किया ? साहित्य के अद्वितीय ग्रन्थ 'रसगंगाधर' के आदि में आप लिखते हैं—

निम्मार्य नूतनमुदाहरणारि रूपं
काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किंचित् ।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ।।

"मैंने इस ग्रंथ में नये उदाहरण (चकर संनिविष्ट किये हैं, अन्यकृत उदाहरण नाममात्र को भी नहीं लिखे, क्योंकि जिस मृग में कस्तूरी उपजाने की शक्ति होती है वह पुष्प की सुगन्ध की परवाह ही क्या करता है ? (बलिहारी है इस दर्पोक्ति की !)

हमारे विज्ञ पाठकों को यह लक्षित हो ही जाएगा कि उक्त श्लोकों में पंडितराज की दिगंतरव्यापिनी समुज्ज्वल कीर्ति प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है[1]

---

1. अकबर बादशाह को संबोधन देकर लिखा हुआ जो एक श्लोक हमें उपलब्ध हुआ है वह यह है—

जगद्दलनभूपते वदतियद्यपित्वांनृपं
मतंतुहरिर्शर्मणो हरिरसित्वमेवध्रुवम् ।
अकबरमहीश्वर ज्वलदधासुरग्रासतः
प्रजाः सहनिजात्मना कथमथान्यधारक्षिता ।।

उक्त हरि शर्म्मा न जाने कौन है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मराठी भाषा के कवियों के विषय में विचारांश किया जाता है। अन्य भाषा कवियों की अपेक्षा इनका ढंग ही कुछ निराला है अर्थात् उक्त भाषा में जो कवि हुए हैं वे प्रायः करके भगवद्भक्त ही रहे हैं एतावता उनकी कविता में उक्त आत्मश्लाघापूरित उल्लेख जैसे उल्लेख प्रायः नहीं पाये जाते क्योंकि साधुता और अहंकार में परस्पर अत्यन्त विरोध रहता है सो सब पण्डित लोग जानते ही हैं। इन कवियों के काव्य में काव्यता का गर्व नहीं पाया जाता तो भी तुकाराम जैसों ने निज के विषय में जो स्थान-स्थान पर लिखा है उससे उनकी आत्मश्लाघा स्पष्ट रूप से जानी जाती है। इसके सिवा उक्त जैसी आत्मश्लाघोक्तियाँ मोरोपन्त, रघुनाथ पण्डित और राम जोशी के ग्रंथों में विशेषतः पायी जाती हैं।

तो इस प्रकार से अंग्रेजी, संस्कृत और भाषा के कवियों ने आत्मरचित ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से जो आत्मश्लाघा वा दर्पोक्ति लिखी है, उनमें से थोड़ी-सी ऊपर उल्लिखित की गयी। अब इसको पढ़ हमारे बहुतेरे पाठकगण बहुधा यह विचारेंगे कि सब सज्जन लोग जो कहा करते हैं कि अपने मुँह अपनी प्रशंसा कभी न करनी चाहिए, क्योंकि वैसा करना मूर्खता का चिह्न है सो वह और उक्त कथन परस्परानुमोदित कैसे हो सकते हैं? उक्त कविगणों ने ऐसे ज्ञानी होने पर भी ऐसे अनुचित कर्म क्यों किये? उनका अनुष्ठान न जाने उन्हें उचित कैसे जान पड़ा? इसके उत्तर में हम यही कहते हैं कि उक्त नियम यद्यपि सामान्यतः यथार्थ है तो भी बहुत स्थानों पर वह अपवाद स्वरूप हो जाता है। विचारने की बात है कि जिनकी प्रशंसा यद्यपि उचित नहीं है तथापि ह्यूम, गिबन, मिल प्रभृति ग्रंथकारों ने अपनी जीवनी स्वयं लिखी है, तदर्थ उन्हें कोई दोष नहीं देता सुतरां वे स्वरचित जीवन चरित होने के कारण लोग उन्हें बड़े चाव से पढ़ते हैं। उसी प्रकार से सीजर और बाबर ने अपने-अपने ग्रन्थों में निज के पराक्रम का स्वयं वर्णन किया है तथापि वे सदोष न माने जाकर जगतप्रिय ही माने गये हैं। अब देखा जाए कि उक्त प्रतिपादन से क्या स्पष्ट होता है? अर्थात् यही स्पष्ट होता है कि निज के विषय का वर्णन यदि यथार्थ हो तो वह दोष-पात्र नहीं होता। इसके सिवा दूसरी बात यह है कि गुणवान लोगों के भाव होने के कारण जब पहले से ही उन्हें मान्यता प्राप्त हो चुकी है, तब उन्हें आत्मश्लाघा के आश्रय की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। गुणवान लोग सत्परीक्षकों की प्रशंसा से संतुष्ट हो अपने परिश्रमों को सफल मान स्वस्थ रहते हैं। पर जब ऐसा नहीं होता अर्थात् गुण की चाह नहीं होती किन्तु उसका उपहास और अपमान ही होता है, तब

नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्निस्थितिर्न चरणैरवताडनानि।

"सुगन्धित पुष्पों की प्रकृति सिद्ध योग्यता यही है कि वे सिर पर धारण किए जाएं, न कि पददलित किए जाएं," इस नियम को भूल जब लोग किसी प्रचण्ड ग्रन्थकर्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अवज्ञा किया चाहते हैं, तब अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए आत्मप्रशंसा के व्यतिरेक उसे उपायान्तर ही उपलब्ध नहीं होता। वह ग्रन्थकार यदि वैसा न करे, तो असामान्य तेज सम्पन्न हीरा भी जैसे अबोध एवं मूर्ख लोगों की उपेक्षा के कारण लुप्त हो खो जाएगा, उसी प्रकार से उक्त ग्रन्थ प्रणेता के गुण अप्रसिद्ध ही रहेंगे। ऊपर जिन कवियों के ग्रन्थों से पद्य उद्धृत किए गए हैं प्रायः उन सबको अपमान की घोर यन्त्रणा भोगनी पड़ी है तभी उन लोगों ने उसके सम्बन्ध में उक्त दर्पोक्ति प्रकटित की है। जब हम इस प्रकार से विचार करते हैं तब सहसा उन पर दोष नहीं आरोपित कर सकते। इसके सिवा ऊपर एक बार कही चुके हैं कि अपनी योग्यता के अनुसार बढ़िया कपड़े पहनना जैसे अनुचित नहीं माना जाता, और लोग उसे बुरा नहीं कहते, उसी प्रकार से ग्रन्थकार लोगोंका सच्चा अभिमान निंद्य नहीं माना जाता। इस प्रकार से जब विचार किया जाता है तो यही प्रतिपादित होता है कि जो ग्रन्थ रचयिता नाम जगत् पूज्य माने जाते हैं उनका आत्माभिमान राजाधिराजाओं के अतुल विभव की नाईं कभी सदोष नहीं माना जाता, वरन् वह उनके भूषण का कारण माना जाता है। पर इतना ही अलम् न होगा। ऊपर जो कई-कई कारण प्रदर्शित किए गए हैं वे पूर्वोक्त आत्मश्लाघा को सदोष समझ उसकी सदोषता दूर करने के अभिप्राय से ही किए गए हैं। अब यह दिखलाया जाता है कि प्रायः सर्वसाधारण वा निदान रसिक जन उसे वैसा कदापि नहीं मानते। जैसे किसी के यावत् गुण-दोष का वर्णन करना चित्रकार वा मूर्तिकार की कला के सदृश है, अर्थात् उक्त दोष शिल्पी जिस प्रकार अविकल रूप से प्रतिमा उतारते और बनाते हैं ठीक वही काम, गुण-दोष विवेचकों का भी है। अब ऐसा मान लो कि जिस किसी को अपनी प्रतिकृति वा प्रतिमूर्ति उत्कृष्ट बनवानी हो वह बहुधा परमोत्कृष्ट चित्रकार वा मूर्तिकार को ही यह इच्छा हो कि अपनी कीर्ति को चिरस्थित करने हेतु अपनी एक तसवीर वा मूर्ति अवश्य बनवानी चाहिए, तो फिर उसे किसके पास जाना चाहिए? ऐसा साहसी उसे कौन मिलने वाला है कि जो उसका यथेष्ट काम कर सके? और वह काम जैसा अत्युत्तम चाहिए वैसा ऊपर कौन कर सकेगा? ग्रीस देश के इतिहास में तद्देशीय एक सर्वोपरि मूर्तिकार[1] के सम्बन्ध से यह बात लिखी पायी जाती है कि एथेन्स नगर में जब एक विशाल देवालय बन रहा था और

1. यह मूर्तिकार फिडियास है। कहा जाता है कि आज पर्यन्त इसके समान कोई मूर्तिकार हुआ ही नहीं। इसकी बनायी हुई जुपिटर (इन्द्र) आदि देवताओं की मूर्तियाँ अद्यावधि बड़ी सावधानी से रक्षित हैं, उन्हें देख आज पर्यन्त हजारों कारीगर लोगों ने दाँतों में अंगुली दबाई है। यह शिल्पी पेराक्लीज का परम मित्र था। इसी की एक मूर्ति उसने अपनी मूर्ति के साथ बनायी थी जिसका वृत्तान्त आगे लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी बारिश की मेहराब में वहाँ के देवों की मूर्त्ति खचित की जाती थीं उसी गड़-बड़ में उक्त मूर्तिकार ने एक अपनी और एक अपने मालिक की मूर्ति बनाकर वहाँ खचित कर दी और यह बात उस समय किसी को मालूम न होने दी। पर आगे जब यह बात उसके विपक्षी लोगों को विदित हुई तब उन लोगों ने तदर्थ उस पर अभियोग उपस्थित कर उसे सरकार से घोर दण्ड कराया। अभिप्राय यह है कि जो लोग महान् विख्यात हो जाते हैं उनमें ऐसा स्वाभिमान कई बार दृग्गोचर होता है। पर हम समझते हैं कि जो सच्चे रसिक हैं वे तदर्थ उक्त मत्सरी लोगों की नाईं उनसे विरोध कदापि नहीं मानते, वरन उन्हें अधिकतर सत्कृत करते हैं। अब हम इस सदृशता को उक्त कवियों की ओर घटित करके कहते हैं कि जैसे फिडियास की मूर्ति वा रेफील[1] की प्रतिकृति बनवाना हो तो वह का फिडियास वा रेफील के समान और किसी से कदापि न बन सकेगा, वैसे सी पण्डितराज वा मिल्टन कैसे महान् कवि के वाणी की मधुरता नितान्त उत्तमतया वर्णित करनी हो तो वह काम स्वयं उनकी वाणी जितनी सरसता से सम्पादित कर सकेंगी, वैसा अन्य किसी से कदापि नहीं हो सकेगा। सर्वसाधारण यद्यपि अपने मुँह किए हुए अपने वर्णन को बुरा मानते हैं और उसे पढ़ने में मुँह मोड़ते हैं, तथापि उक्त जैसे प्रसंगों पर उस वर्णन की मधुरता और सचौटी से चित्तवृत्ति ऐसी तल्लीन हो जाती है कि उस आनन्दातिभार में पाठकों का लक्ष्य दोष की ओर जा ही नहीं पाती। सारांश जिस प्रकार से समरभूमि में महान् वीरों की वीरोक्ति आत्मश्लाघा में संयुक्त होने पर भी सुनने वाले का जी उनसे उकताता नहीं, वरन् उन्हें वे बड़े उत्साह से श्रवण करते हैं, वा मानवती स्त्रियों की रूपगर्विता जैसे उनकी सुन्दरता को विशेष रमणीक करती है और उनकी निर्भर्त्सनापूरित उक्ति उनके वल्लभों को अधिकतर हृदयबोध होती है, वैसे ही रसिक जन भी जगत् पूज्य कवीश्वरों की आत्मदर्पोक्ति पर बहुत ही रीझते हैं। वे उन्हें बार-बार पढ़ते हैं पर कभी तृप्त नहीं होते, जब-जब उन्हें पढ़ते हैं तब-तब अधिकाधिक तन्मय होते जाते हैं।

(9) यहाँ लौं यह बात दिखलायी गयी है कि मनुष्य का यथार्थ गुण के लिए अभिमान माना दूषित नहीं है। इस लेख का यह एक भेद हुआ। इसके सिवा गर्व के और भी कई भेद हैं कि जो अदोष स्वरूप माने जाते हैं जैसे स्वाभिमान, कुलाभिमान, जाति का अभिमान, देशाभिमान आदि इनकी यथेष्ट विवेचना यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं हो सकती। फिर कभी अवकाश मिलने पर इसके विषय में स्वतन्त्र

1. रेफील भी फिडियास की नाईं अपनी विद्या में अत्यन्त निपुण हो गया है। इसके बनाए हुए चित्र अभी लौं रोम नगर में प्रस्तुत हैं। असंख्य धन के लोभ से भी त्रस्त लोग उनका देना स्वीकृत नहीं करते। इसके विषय में भी कहा जाता है कि आज लौं इसके समान कोई चित्रकार नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से आलोचना की जाएगी। अब अन्त में इस विषय पर कुछ थोड़े विचार प्रदर्शित कर इस लेख को शेष करते हैं।

(10) इसी निबन्ध के आदि में हम यह बात दिखला ही चुके हैं कि परमेश्वर ने मनुष्य में जो भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ निर्मित की हैं वे व्यर्थ वा अनर्थमूलक नहीं हैं, किन्तु अपर शरीरावयव की नाईं वे मनुष्य के हित साधन में सहायक हों, इसी अभिप्राय से कि वे मनुष्य की अविवेकता के कारण वे उसके हित की बाधक होती हैं। यही बात वर्तमान आलोच्य विषय के विषय में भी चरितार्थ होती है। जैसे उचित समय पर मनुष्य को क्रोध भी अत्यन्त आवश्यक है—अर्थात् जिस समय कोई मनुष्य यों ही किसी छेड़छाड़ करे वा व्यर्थ में उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की चेष्टा करे, उस समय उक्त मनुष्य की उक्त नराधम, दुष्टात्मा, नीच-चेता का दमन अवश्यमेव करना चाहिए। वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य के लिए यह भी उचित है कि जो नरपिशाच उसकी सच्ची योग्यता को सर्वसाधारण में कलंकित करने के लिए यत्न करता है उसके साथ उसे साभिमान ही रहना चाहिए। ऐसे समय पर सरल स्वभाव सज्जन को समुचित है कि वह अपनी बुद्धि से पूर्ण काम लें, और अपनी ऋजुता को तिलांजलि दे उक्त संज्ञा-रहित[1] शठको पददलित करे। ऐसे समय पर शिथिलता करने से कभी-कभी सज्जन को जो हानि उठानी पड़ती है वह उसके मरणजन्य दुःख से कहीं बढ़ के होती है।

उक्त लम्बे-चौड़े विवरण का आशय हमारे यथार्थविद् पाठकों को लक्षित हो ही चुका होगा; वह यही है कि जब कोई किसी को व्यर्थ में दबाया चाहे तब उसे उचित है कि उसके अज्ञान एवं दुराग्रह जन्म दूषणों का खण्डन कर अपनी साभिमान रक्षा करे। ऐसा करने से उसकी निज की भलाई तो होवेगी ही, पर इसके सिवा जग के और भी बड़े-बड़े उपकार होंगे।

सारांश उक्त मनोधर्म मनुष्य के लिए परमोपयोगी है। उक्त मनोधर्म का अस्तित्व जिस मनुष्य में नहीं रहता वह मतसरी एवं द्वेष करने वाले मनुष्य के कपट-पूर्ण कार्य-कलापों को देख शीघ्र ही गतधैर्य हो जाता है और अन्त में उसे अपने समस्त गुणों से हाथ धो बैठना पड़ता है। एतावता 'नीतिशतक' में पूर्णानुभवी भर्तृहरि लिखते हैं कि—

---

1. संसार का पूर्ण अनुभव लेकर राजर्षि भर्तृहरिजी ने कहा है कि जग में सब प्रकार के मनुष्य के लिए संज्ञा प्रचलित हैं पर जो अधमाधम निश्प्रयोजन दूसरे को हानि पहुँचाना ही अपने जन्म का प्रधान अभिप्राय समझता है, उसके लिए कोई संज्ञा उपलब्ध नहीं होती वह संज्ञा-रहित ही है—
—"ये तुघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदर्थितस्यापि च धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखायाति कदाचिदेव ।।

"जिसका मानस गम्भीर है उसका लोग कैसा ही अपमान क्यों न करें, पर वह अपने प्रकृतिजात धैर्य गुण का कदापि परित्याग नहीं करता । जैसे प्रज्वलित अग्नि-को उल्टा करो तो भी उसकी ज्वाला ऊपर ही को रहती है, नीचे नहीं जाती ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 26 दिसम्बर, 1908 तथा 20 मार्च, 1909

हिन्दी के विभक्ति-प्रत्यय

[1]

पौषकृष्ण पंचमी के 'हिन्दी-केसरी' में कलकत्ता निवासी श्रीयुत पण्डित सखाराम गणेश देवसकर महाशय ने 'विभक्ति-प्रत्यय' शीर्षक एक चिट्ठी छपवाकर जिज्ञासा व्यक्त की है कि हिन्दी भाषा के अग्रसर लेखकगण हिन्दी लिखती बार विभक्ति प्रत्यय को उसकी प्रकृति से अलग क्यों लिखा करते हैं। इस प्रणाली में यदि कोई सारगर्भित तत्त्व वा रहस्य हो तो इस प्रणाली के पक्षपाती सज्जन उसे प्रकाशित करने की कृपा करें। इत्यादि इत्यादि। हिन्दी के नामी ग्रामी धुरन्धर लेखक तथा हिन्दी-भाषा-तत्त्वपारीण विद्वज्जन, देउसकर महाशय के उक्त प्रश्न का उत्तर देवेंगे ही। जब तक आप लोग उत्तर देने का अनुग्रह करते हैं तब तक हम अपने उक्त विषयक विचार हिन्दी भाषा तत्व पारदर्शी सज्जनों की सेवा में प्रकाशित करने का यदि साहस करें तो कदाचित् वह आप लोगों के समीप अनुचित और अनावश्यक नहीं माना जायगा।

इस विषय में हमारा अनुमान यह है कि प्रथम हिन्दी भाषा में जो पुस्तकें छपवायी गयीं, वे प्रायः विदेशी सज्जनों द्वारा उन्हीं के अधिकार में छपवायी गयीं। हिन्दी भाषा के कई शब्द ऐसे हैं जो विभक्ति प्रत्ययों को मिलाकर लिखे जाने से विदेशी लोगों को उनके प्रकृति और प्रत्यय का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे 'काकीके कण्ठकी कण्ठी का हीरा' 'शशिमुखी बाला ने अपनी सास से यह सन्देशा कहा' विदेशी लोगों को ऐसे प्रसंग पर यह जानने में बड़ी असुविधा पड़ती थी कि 'काकी' 'कण्ठी' और 'सास' आदि पद हैं वा 'काकीके', 'कण्ठकी', 'कण्ठीका' और 'सास से' आदि पद हैं। इस सन्देह और भ्रम को दूर करने के अभिप्राय से उस समय के पश्चिमात्य विद्वानों ने यह उक्ति निकाली कि प्रकृति और प्रत्यय अलग-अलग लिखे जाया करें। इस प्रकार लिखे जाने से विद्यार्थियों को भ्रमजाल में नहीं, फँसना पड़ेगा। बस, इस युक्ति के निकलते ही उन लोगों ने इसी के अनुसार पुस्तकें छापना आरम्भ कर दिया। उस समय हिन्दी का कोई धनी धोरी तो था ही नहीं जो इस अनर्थकारिणी प्रथा का विरोध करता। सारांश, धीरे-धीरे इसी प्रणाली से हिन्दी की शिक्षा विभाग की पुस्तकें भी छपने लगीं और इस देश के बालकों को उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार हिन्दी लिखने की शिक्षा दी जाने लगी। अभ्यास एक ऐसी चीज है कि जब किसी को किसी बात का अभ्यास पड़ जाता है, तब उसकी बुराई जान लेने पर भी उसे उससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। ठीक यही बात हमारे उन हिन्दी के साहित्याचार्यों की हुई जो इस समय हिन्दी में विभक्ति के प्रत्ययों को उनके प्रकृतियों से भिन्न लिखते हैं और उस प्रथा का पक्षपात करते हैं। क्योंकि बाल्यावस्था से उन्हें इसी प्रकार लिखने की आदत पड़ गयी है। अब वे इस आदत को छोड़ नहीं सकते। अतः वे लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रथा का समर्थन ही किया करते हैं। कई सज्जनों के जी में यह बात समा गयी कि हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा बनाने के लिए इससे बढ़कर कोई अन्य युक्ति नहीं है कि उसकी लिपि में प्रकृति प्रत्यय से अलग लिखने की प्रथा प्रचलित की जाय। बस अकेली इस बात के पीछे पड़कर उन लोगों ने इस प्रथा के पक्ष में साधक-बाधक प्रमाणों के साथ बड़े-बड़े लेख और पुस्तकों को लिखकर कई लोगों को अपना अनुयायी बना लिया। जब अनुयायी लोग उनकी युक्तियों को मानकर उन्हीं के अनुसार विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृतियों से अलग-अलग लिखने लगे तब आचार्य लोगों ने मान लिया कि हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा बनाने का पूरा-पूरा श्रेय हमको मिल गया। अब यह हिन्दी हमारे इस महदुपकार की चिर ऋणी बनी रहेगी। हम यदि भूलते नहीं हैं तो हम समझते हैं कि इस प्रथा के पूरे-पूरे प्रेमी और पक्षपाती स्वर्ग स्थिति साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास तथा बाबू अयोध्याप्रसाद जी थे। जिस समय उक्त विद्वानों ने इस भाषा-शास्त्र निषिद्ध प्रथा का अधिक पक्षपात किया था, आप लोग उस समय इस प्रथा का समर्थन यदि न करते तो सम्भव था कि हिन्दी भी अपनी समकक्षिणी बँगला, मराठी और गुजराती बहिनों के सदृश विभक्ति प्रत्ययों के साथ लिखी जाने की सजातीयता पा जाती। पर उसके दैव दुर्विपाक वश तब वैसा नहीं होने पाया। उसे स्वतन्त्र बनाने का यश प्राप्त करने के लिए लोलुप हुए पण्डितों ने वैसा नहीं होने दिया। उक्त व्यास जी तथा बाबूजी के तत्कालीन अनुयायियों को आपसे इतना पूछने तक का भी साहस नहीं हो सका कि जब तक आप लोग हिन्दी के लिए पंच सन्धि, तद्धित, कारक, समास, कृदन्त आदि के नियम संस्कृत व्याकरण के नियमों से सर्वथा विभिन्न नहीं बना देते, तब अकेले विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति से, संस्कृत व्याकरण के नियम के विपरीत, अलग लिखने मात्र से ही हिन्दी स्वतन्त्र भाषा कैसे हो सकती है? जिन सज्जनों को हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा बनाने का यश लूटने की इच्छा थी वा है, उन्हें उचित था, अथवा उचित है कि वे हिन्दी के लिए व्याकरण, छन्दशास्त्र और अलंकारशास्त्र विषयक ऐसे नियम प्रधान ग्रन्थ बना देते वा बना दें जो संस्कृत के एतद्विषयक ग्रन्थों से सर्वतोभाव भिन्न हों। पर जब तक उन लोगों ने वैसे ग्रन्थ नहीं बनाये हैं तब तक उनका यह दावा करना कि हमने हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा बना दिया, अत्यन्त व्यर्थ, विफल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मूल है।

उक्त विवरण द्वारा हमारे विज्ञ एवं विवेकी पाठकों को यह बात विदित हो चुकी होगी कि हिन्दी में आज दिन प्रकृति को उसके प्रत्यय से अलग लिखने की जो प्रथा प्रचलित है वह अत्यन्त सारहीन एवं अन्धपरम्परा मात्र है। वह उन विदेशियों की प्रचलित की हुई जान पड़ती है जिन लोगों को हिन्दी भाषा का पूरा-पूरा ज्ञान न होने के कारण, अपने भ्रमों को दूर करने के अभिप्राय से उसे प्रचलित करने के लिए विवश होना पड़ा था। उस समय हिन्दी के ग्रन्थों का लिखना और उन्हें छपवाना एकमात्र विदेशीय सज्जनों के ही हाथ में था, अतः उस प्रकार की लिपि का प्रचार हो गया। आज दिन ईश्वर की शुभ इच्छा और हमारी सरकार की अगाध कृपा से हिन्दी भाषा-भाषी लोग भी पुस्तकें लिख और छपवा सकते हैं। ऐसी अवस्था में भी हिन्दी में अनभिज्ञ लोगों द्वारा प्रचलित की हुई प्रकृति और उसके प्रत्यय को अलग-अलग लिखने की सारहीन प्रथा को प्रचलित रहने देना युक्ति-युक्त नहीं जान पड़ता। अब इस निषिद्ध प्रथा की सारफल्गुता प्रायः हिन्दी के लेखकों को ज्ञात हो चुकी है। कदाचित् अब वह दिन दूर नहीं है जिस दिन हिन्दी के वर्तमान विद्वान् लेखकगण इस प्रथा को बन्द कर देने के लिए अपनी सम्मति मुक्त कंठ से दे देंगे और तदनुसार अपने लेख तथा ग्रन्थ में लिपि लिखना प्रारम्भ कर देंगे।

[2]

जब से श्रीयुत पण्डित सखाराम गणेश देउस्कर ने हिन्दी के विभक्ति प्रत्ययों के विषय में चर्चा छेड़ी है, तब से हिन्दी के समाचार पत्रों में इस विषय की बहुत कुछ छान-बीन और जाँच-पड़ताल हो रही है। भरोसा है कि इस समय की इस जाँच पड़ताल का फल चिरस्थायी होकर लाभदायक होगा। क्योंकि 17 वर्ष के पूर्व जब इस विषय का वाद-विवाद हुआ था तब से अब तक हिन्दी की लिपि प्रणाली और भाषाशैली में बहुत कुछ परिवर्तन हुए हैं, साथ ही हिन्दी की उन्नति भी हुई है। इस समय हिन्दी भाषा के पास ग्रन्थ संग्रह स्वरूप जितनी सामग्री विद्यमान है उतनी की सहायता से उसके वर्तमान सुलेखकगण यदि चाहें, तो अपनी-अपनी हठ और पक्ष के अनुचित अनुराग को छोड़कर सर्वसम्मति से, और विषयों में नहीं तो अकेले इसी विषय में, उसका नियमन कर सकते हैं। इस विषय में अब अधिक विलम्ब वा उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। आशा है कि हिन्दी के वर्तमान हितैषी सज्जन हमारे इस निवेदन पर विचार करने की कृपा अवश्य ही करेंगे।

26 दिसम्बर के भारतमित्र में हमने इस विषय में अपनी जो सम्मति प्रकाशित की थी उस पर कई सज्जनों ने विचार करने की कृपा की है। इस कृपा के लिए हम आप सज्जनों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं। तब से अब तक इस विषय में जो वादानुवाद हुआ है उसे देख-भालकर हमारे चित्त में अपने इस विषय के अन्यान्य विचारों को श्रीविज्ञ पाठकों की सेवा में प्रकाशित करने की अनिवार्य इच्छा उत्पन्न हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः आज हम अपने उन विचारों को आप लोगों की सेवा में प्रकाशित करने का साहस करते हैं। भरोसा है कि आप लोग इन पर भी पूर्ववत् विचार करने की कृपा करेंगे।

हमारे मननशील पाठकों को यह बात मालूम है कि जिस प्रकार उन्नति की चरम सीमा को पहुँची हुई संस्कृत जैसी सर्वांगपूर्ण भाषा की लिपि को, उसके शब्द प्रयोग को और उसकी भाषा प्रणाली को, उसके बड़े-बड़े कोशकारों ने, वैयाकरणों ने और प्रकाण्ड पण्डित ग्रन्थकारों ने, भगीरथ परिश्रम कर स्थिरता और निश्चयात्मकता प्राप्त करा दी है, वैसी क्या वरन् उसके किसी छोटे से छोटे अंश में भी हिन्दी को अभी तक वह प्राप्त नहीं हुई है। उसके न प्राप्त होने का कारण भी स्पष्ट ही है। वह यही है कि उन्नति धीरे-धीरे ही होती है। वह सहसा बहुधा नहीं होती। हाँ, यह बात सच है कि आदि में जिनको सुधार, आविष्कार वा उन्नति करनी पड़ती है उनकी अपेक्षा उनका अनुकरण करनेवालों को समय भी थोड़ा लगता है और परिश्रम भी उतना नहीं करना पड़ता। इस कथन से हमारा अभिप्राय यही है कि संस्कृत जैसी उन्नत भाषाओं को इस समय जो स्थिरता प्राप्त है वह विद्या व्यसनी लोगों के चिरकाल के अविरत परिश्रम का फल है। हिन्दी के हितैषियों ने अभी तक न तो उतना परिश्रम ही किया है और न उन्हें अभी तक इस दिशा में उतना श्रेय ही मिला है। अब ज्यों-ज्यों वे लोग इस विषय में अधिकाधिक परिश्रम और उद्योग करते जायेंगे त्यों-त्यों उनकी जन्म भाषा हिन्दी को भी स्थिरता और निश्चयात्मकता प्राप्त होती जायेगी।

अनुमान 17 वर्ष के पूर्व जब इस विषय पर वादविवाद हुआ था, तब सर्वसम्मति से इस विषय में कोई एक नियम निर्धारित नहीं हो सका, किन्तु उससे यह लाभ अवश्य हुआ कि इस विषय की गुरुता की ओर हिन्दी भाषा के पण्डितों का ध्यान आकृष्ट हो गया। उस समय के वादानुवाद के कारण इस विषय में जो दो पक्ष हो गये हैं उनके प्रेमियों को इस विषय में अपने-अपने पक्ष का समर्थन और मण्डन करने के लिए यथेच्छ अवकाश मिल गया। इतने दिन तक विचार करने से विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृति से पृथक्-पृथक् लिखने का पक्ष करनेवालों की नीचे लिखी हुई बातें अपने पक्ष की समर्थक और पोषक जान पड़ी हैं—

(1)—विभक्ति चिह्न का प्रकृति से अलग-अलग लिखने के कारण हिन्दी भाषा की एक जुदा खूबी कायम रह सकती है।

(2)—विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति से अलग-अलग लिखने के कारण पढ़ने में अधिक सुभीता होता है।

(3)—प्रकृति का रूपान्तर नहीं होता, अतः विभक्ति चिह्न को उससे अलग ही लिखना चाहिए।

(4)—सम्बन्ध कारक के चिह्न—का, की, के—कोरे विभक्ति प्रत्यय ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं, किन्तु वह उनसे अधिक सामर्थ्यशाली कोई अन्य वस्तु भी हैं अतः उन्हें प्रकृति से अलग ही लिखना उचित है।

(5)—प्रकृति के साथ ही विभक्ति प्रत्यय का उच्चारण नहीं होता, उसमें कुछ रुकावट पायी जाती है। इसलिए उसे संज्ञा से भिन्न ही लिखना चाहिए।

(6)—कई वर्षों से विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति से अलग लिखने की प्रथा चली आ रही है। इसी प्रथा के अनुसार बहुत से ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। अब यदि विभक्ति को संज्ञा के साथ लिखने की प्रणाली स्वीकृत कर ली जायेगी तो आज पर्यन्त लिखे हुए ग्रन्थों में गड़बड़ मच जायेगी, अतः उसका शब्द से भिन्न-भिन्न लिखा जाना ही ठीक है।

(7)—सतरह वर्ष के पूर्व ही इस बात का निर्णय हो चुका है कि विभक्ति के प्रत्यय प्रकृति से पृथक् ही लिखे जाने चाहिए। अतः इस समय इस विषय की चर्चा अनावश्यक ही नहीं किन्तु बापुरी हिन्दी उन्नति के मार्ग की अवरोधक है। इस समय देउस्कर महाशय का इस विषय की चर्चा छेड़ना अनावश्यक है। इत्यादि इत्यादि।

विवेकी पाठकगण, इस समय देवस्कर महाशय की जिज्ञासा के उत्तर में विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति से अलग ही लिखना चाहिए। इस विषय का समर्थन करने वाले सज्जनों ने जो कुछ लिखा है उसका सारांश ऊपर दिया गया है। अब आगे हम ऊपर लिखी हुई बातों पर अपनी सम्मति लिखकर आपसे उस पर एक बार और भी विचार करने की प्रार्थना करते हैं।

1. आजकल के हमारे भाषाशास्त्रत्वज्ञ सज्जन इस बात को भली-भाँति से जान चुके हैं कि भारतवर्ष की वर्तमान उन्नत भाषाओं में से प्रायः सभी भाषाओं ने अपनी-अपनी उन्नति करने में संस्कृत का अनुकरण किया है। भाषाओं का इतिहास जानने वाले सज्जनों से यह बात छिपी नहीं है कि अत्यन्त प्राचीन समय में संस्कृत में भी आजकल की हिन्दी की नाईं विभक्ति के चिह्न संज्ञाओं से भिन्न लिखे जाते थे। पर ज्यों-ज्यों इस विषय की मीमांसा होती गयी त्यों-त्यों यह बात अधिकाधिक युक्तियुक्त और प्रयोजनीय जान पड़ी कि वाक्य में जो पद जिस अभिप्राय से आते हैं उनका वह अभिप्राय जिन अक्षरों द्वारा पूर्णतया व्यक्त हो सकता है उन अक्षरों को एकत्र ही लिखना उचित है। इस बात को मानकर संस्कृत के व्याकरणकारों ने यह नियम बना दिया कि पद का प्रयोग नहीं किया जाय। साथ ही पद की व्याख्या में लिख दिया कि विभक्ति सहित संज्ञा को पद कहना चाहिए। यहाँ पर हम अपने मननशील पाठकों से साग्रह प्रार्थना करते हैं कि संस्कृत भाषा के वैयाकरणों ने चिरकाल पर्यन्त विचार करके जो यह बात निश्चित की कि वाक्यस्थ पद का अभिप्रेतार्थ जिन अक्षरों द्वारा पूर्णतया व्यक्त हो सकता है उन सब अक्षरों को एकत्र लिखने में बहुत कुछ सुविधा है, उस पर आप भी टुक विचार करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा करें। हठ को छोड़कर विचार करने से आपको यह बात तुरन्त ही विदित हो जायेगी कि 'राम ने रावण को मारा' इस वाक्य में न तो अकेला 'राम' ही वक्ता के अभिप्रेतार्थ को सम्पूर्णतया व्यक्त कर सकता है और न 'ने' ही उसके अभीष्ट अर्थ को व्यक्त कर सकता है। वक्ता के अभिलषित अर्थ को दोनों मिलकर ही व्यक्त कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि हम भी अपने ऋषिगणों द्वारा संयुक्तिक मानी हुई इस विभक्ति प्रत्यय की संज्ञा के साथ लिखने की प्रणाली को स्वीकार कर लें तो हमारे लिए कोई बुरी बात नहीं है। स्वदेशाभिमानी सज्जनों की यह रीति सदा से चली आती है कि वे अपने देश की उन्नत वस्तु का अनुकरण करने में ही अपनी अधिक प्रतिष्ठा समझते हैं। उन्हें जब अपने देश में वह चीज नहीं मिल सकती, तव वह उसे, अपने निकटस्थ पड़ोसियों से यदि उनसे वह प्राप्त हो सकती हो तो, प्राप्त करने का उद्योग करते हैं। आजकल चीन के लोग जापानियों से किसी बात की शिक्षा ग्रहण करने में जितना प्रेम प्रदर्शित करते हैं और उसमें अपना जितना गौरव समझते हैं, उतना अन्य से नहीं समझते। ऐसी अवस्था में हिन्दी भाषा के आचार्यगण इस विषय में यदि संस्कृत के आचार्यों का अनुकरण कर विभक्ति प्रत्यय की संज्ञा के साथ लिखने की प्रणाली को अंगीकृत कर लेवें तो उनके लिए बहुत गौरव की और साथ ही पूर्ण युक्तियुक्त बात है। विदेशीय भाषा के अंग में लालित पालित हुई उर्दू भाषा का अनुकरण करना इस विषय में न तो तादृश युक्तियुक्त ही है और न वैसा कुछ हमारे लिए गौरवप्रद ही है। हमारे इस निवेदन से हमारे विज्ञ पाठकों को यह बात विदित हो चुकी होगी कि विभक्ति चिह्न को संज्ञा से अलग लिखने में कोई 'जुदा खूबी' कायम नहीं रहती, वरन हिन्दी भाषा जब अपनी सहोदर जेठी बहिन मराठी, बँगला और गुजराती आदि भाषाओं के साथ बैठती है तब उसे इसीलिए लज्जा से अपना मुँह नीचे कर लेना पड़ता है कि उसने इस विषय में अपनी माता और बड़ी भगिनियों का अनुकरण नहीं किया है किन्तु विदेशीय भाषाओं की युक्तिविफल और सारहीन प्रथा का अनुकरण किया है।

2. सुलेखकगण अपने मनोगत अभिप्राय को पूर्णतया व्यक्त करने के लिए कभी-कभी दो-दो तीन-शब्दों को समास के नियमों से बाँध कर वाक्य में उनका प्रयोग करते हैं। उस प्रयोग को पाठकगण सन्दर्भ के अनुरोध से सुगमता के साथ पढ़ भी लेते हैं और समझ भी लेते हैं। ऐसी अवस्था में संज्ञा को सार्थक करने वाले, उसके अंग प्रत्यंग तथा जीवन सर्वस्व स्वरूप, बहुधा एक दो अक्षरों द्वारा व्यक्त होने वाले विभक्ति प्रत्यय को प्रकृति के साथ मिलाकर लिखने से कितनी भारी असुविधा का भय हो सकता है इसका विचार हमारे विज्ञ पाठकगण ही कर लेवें। जो सज्जन कहते हैं कि विभक्तियों को संज्ञाओं के साथ मिलाकर लिखने से पढ़ने में सुभीता नहीं रह सकता, वे लोग नीचे लिखे हुए थोड़े से शब्दों के प्रयोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपने कथन के प्रमाण में उद्धृत करते हैं। जैसे—भूमिका, कारिका, पत्रिका, कुमारिका, नायिका, पताका, लड़का, पातकी, केतकी, देवकी, केकी, बाकी, जानकी, कामन्दकी, वैद्यकी, नेकी और लड़की आदि शब्दों के साथ कारक चिह्नों को मिलाकर लिखने से, अर्थ जटिल हो जाता है, साथ ही उसकी सुपाठ्यता भी जाती रहती है। पाठकगण, विचार का स्थान है कि शब्द समुद्र इतना विस्तीर्ण है कि उसका नियमन करना बहुत ही दुष्कर है। संस्कृत भाषा के वैयाकरणों ने विश्वामित्र जैसे एक शब्द के लिए 'मित्रेचर्षौ' सूत्र बनाया, तिस पर भी उन्हें अपवाद आर्ष प्रयोग और बातों की शरण लेनी पड़ी। तात्पर्य यह है कि ऊपर लिखे हुए शब्दों के साथ विभक्ति चिह्न मिलाकर लिखने से प्रथम तो सन्दर्भ के बल से उसके पढ़ने समझने में कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती और यदि यह मान भी लिया जाय कि विदेशीय सज्जनों को इसका अर्थ समझने में कुछ असुविधा होने का डर है तो उक्त जैसे अन्य शब्दों को अपवाद में रख लेना उचित होगा। इन थोड़े शब्दों के साथ विभक्ति मिलाकर लिखने से अनभिज्ञ तथा विदेशीय लोगों को उनके समझने में असुविधा होती है इसलिए उन्हें मिलाकर लिखना ही छोड़ देना चाहिए, यह कहना ठीक वैसा ही जान पड़ता है जैसे कोई कहे कि गेहूँ बोने से पशु उसे खा जाया करते हैं अतः उसे बोना ही बन्द कर देना अच्छा है। अस्तु! कई सज्जन अनुमान करते हैं विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृति के साथ मिलाकर लिखने से हिन्दी की कविता के मैदान में बहुत बड़ी झंझट पैदा हो जायेगी। इसके उत्तर में हमारा यह निवेदन है कि प्रथम तो प्रायः सभी भाषाओं में यह नियम पाया जाता है कि गद्य की अपेक्षा पद्य की भाषा किंचित भिन्न-भिन्न और जटिल रहा करती है। अकेले विभक्ति चिह्नों को संज्ञाओं से अलग लिखने का नियम बना लेने से ही हिन्दी की कविता का मैदान बिलकुल साफ और सुगम नहीं हो जायेगा। क्योंकि कविता को बनाने की वा उसे समझने की सुविधा जितनी कविता की प्रतिभा और वाचक के कोषज्ञान के बल पर अवलम्बित रह सकती है उतनी उसकी सविभक्तिक वा अविभक्तिक संज्ञाओं पर नहीं रहती। नीचे एक दोहा दिया जाता है। उस पर पाठकगण विचार करेंगे तो उन्हें हमारे उक्त कथन की सार्थकता शीघ्र ही ज्ञात हो जायेगी—

नरक परन की चहह हैं, नरक परन को नाहिं।
जसुद तन की कहत हैं, जसुदातन को नाहिं॥
नरक परन की चहत हैं, नरक परन की नाहिं।
जसु दातन की कहत हैं, जसुदातन को नाहिं॥

तात्पर्य, भिन्न-भिन्न पद और श्लेषादि अलंकार सम्पन्न पद्यों का अर्थ जितना पदच्छेद के अधीन रह सकता है उतना केवल विभक्तियुक्त वा विभक्तिरहित संज्ञा के लिखे जाने पर अवलम्बित नहीं रह सकता। यहाँ तो जो लिखा गया है उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोनिवेशपूर्वक विचार क्षेत्र में लेने से पाठकों को यह बात बहुत ही सुगमतया ज्ञात हो सकती है विभिक्त प्रत्यय को प्रकृति से अलग लिखने से पढ़ने में कोई तादृश सुभीता नहीं होता किन्तु उसे अलग लिखने से जिस अभिप्राय को प्रकाशित करने के लिए वह दोनों, अर्थात् संज्ञा और विभक्ति प्रत्यय, प्रयुक्त किए जाते हैं उसे वह अलग-अलग रहकर कभी व्यक्त ही नहीं कर सकते। अभिप्रेतार्थ को वह तभी व्यक्त कर सकते हैं जब दोनों एकत्र मिलाये जाते हैं। ऐसी अवस्था में संज्ञा और कारक चिह्न का एकत्र लिखा जाना ही अधिक युक्तियुक्त बोध होता है।

3. इस प्रथा के पक्षपाती कई सज्जनों का कथन है कि मराठी और बँगला आदि भाषाओं में जिस प्रकार कारक चिह्न को संयुक्त करने के पूर्व संज्ञा का रूपान्तर हो जाता है उस प्रकार हिन्दी में 'रामका' लिखने में नहीं होता। अतः 'राम' और 'का' अलग ही अलग लिखे जाने चाहिए। जिन सज्जनों की यह सम्मति है उन्हें विचार कर देखना चाहिए कि कई शब्दों का एकवचनान्त संज्ञा का रूपान्तर नहीं हो सकता पर बहुवचन में प्रायः सभी संज्ञाओं का रूपान्तर हो जाता है। जैसे रामका, रामोंका, 'घोड़े की पीठ', 'घोड़ों की जोड़ियाँ', 'भाले की नोंक', 'भालों की मार' इत्यादि। यहाँ पर पाठकगण देखते हैं कि पहले उदाहरण में षष्ठी के एकवचन में राम संज्ञा को विकार नहीं प्राप्त हुआ। किन्तु बहुवचन में उसे विकार प्राप्त होने के कारण उसका रूप 'रामों' हो गया। दूसरे और तीसरे उदाहरण में षष्ठी के एकवचन और बहुवचन दोनों स्थानों पर 'घोड़ा' और 'भाला' संज्ञाओं का रूपान्तर हो गया है। ऐसी अवस्था में यह मान लेना कि षष्ठी के एक वचन में राम संज्ञा का रूपान्तर नहीं होता, अतः उसका विभक्ति प्रत्यय से भिन्न-भिन्न लिखा जाना ही सुकर है, यह बात कहाँ लौं' युक्तिसंगत हो सकती है इसका विचार हमारे विज्ञ पाठकगण बहुत सुगमता के साथ कर सकते हैं।

इस समय भारत के समस्त विद्वज्जन इस बात को मुक्त कण्ठ से मान रहे हैं कि भारतवर्ष की यदि कोई राष्ट्रभाषा हो सकती है तो वह हिन्दी ही हो सकती है। इसके समर्थन में विद्वान लोग कई प्रमाण देते हैं। उन सब में इस बात को सभी मानते हैं कि हिन्दी भाषा में यह एक बड़ा भारी गुण है कि इसकी लिपि इतनी सर्वांग सुन्दर है कि उसमें जो शब्द जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा भी जा सकता है और ठीक वैसा ही पढ़ा भी जा सकता है। पर जो सज्जन इस बात का अनुरोध करते हैं कि हिन्दी में विभक्ति प्रत्यय प्रकृति से अलग लिखा जाना चाहिए वे मानो हिन्दी के उक्त सर्वोपरि गुण को नष्ट करना चाहते हैं। इसका स्पष्ट कारण नीचे के उदाहरणों से हो सकेगा—

1. हाँ, यह बात निस्सन्देह सर्वसम्मत है कि काव्य-निर्माण के कारण में प्रतिभा (जिसका पर्याय शक्ति है, की प्रधानता है।

2. परन्तु जगतसिंह (यह राजा चेतसिंह के दीवान थे) की कार्रवाइयाँ इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी बढ़ गयी हैं।

3. इसके अनुवाद (लमत देश कहुँ बाग कहुँ मरघटमय होई) को हमने जो अशुद्ध बतलाया है सो भी बहुत ठीक बात है।

यहाँ पर पाठकगण देखते हैं कि पहले उदाहरण में प्रतिभा का, दूसरे में जगतसिंह का, और तीसरे में अनुवादक का कारक चिह्न उन शब्दों से कितनी दूर रखा गया है। क्या हमारे विज्ञ पाठक महोदय कह सकते हैं कि उनमें किसी वक्ता के मुँह से उक्त शब्दों के विभक्ति-प्रत्ययों का उच्चारण ठीक वैसा ही सुना है जैसा कि ऊपर लिखा गया है? इस प्रश्न के उत्तर में कदाचित् सब सज्जन निषेधात्मक उत्तर ही देवेंगे।

उक्त निरूपण से हमारे विवेकी पाठकों को इस बात की सारफल्गुता विदित हो चुकी होगी कि जो सज्जन यह कहते हैं कि मराठी और बँगला के सदृश 'राम का' इस पद में संज्ञा का रूपान्तर नहीं होता अतः विभक्ति प्रत्यय मात्र को प्रकृति से अलग ही लिखना उचित है क्योंकि उक्त निरूपण में उदाहरण द्वारा यह दिखला दिया गया है कि थोड़े शब्दों को एकवचन के कारक चिह्नों को छोड़ अन्यत्र और बहुवचन के विभक्ति प्रत्ययों के साथ सर्वत्र संज्ञा का रूपान्तर नहीं होता, अतः कारक चिह्न मात्र को उससे अलग लिखना ठीक है, युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। इसके सिवा कारक चिह्न को संज्ञा से अलग लिखने का नियम बनाने से हिन्दी के इस सर्वतोभाव प्रशंसनीय गुण के लोप हो जाने का भय है कि वह वैसी बोली जाती है ठीक वैसी ही लिखी भी जाती है।

4. जिन सज्जनों का यह कथन है कि सम्बन्ध कारक चिह्न 'का' 'की' और 'के' कोरे विभक्ति प्रत्यय ही नहीं हैं, किन्तु वह उनसे अधिक सामर्थ्यशाली कोई अन्य वस्तु है, उनकी सेवा में हमारा सादर यह निवेदन है कि 'रामस्य भ्राता लक्ष्मणः' इसका अनुवाद हिन्दी में राम का भाई लक्ष्मण और 'रामस्य पुस्तकम' इसका अनुवाद 'राम की पुस्तक' किया जाता है। यहाँ पर हमारे पाठकगण देखते हैं कि पहले 'रामस्य' पद का हिन्दी में अनुवाद 'राम का' किया गया है, किन्तु दूसरे 'रामस्य' पद का अनुवाद 'राम को' किया गया है। सूक्ष्मतया देखने से मालूम हो सकता है कि उक्त उभय स्थानों पर 'का' और 'की ने' अकेले सम्बन्ध प्रदर्शित करने का ही काम किया है। इससे अधिक कुछ नहीं किया है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि 'रामस्य' पद का एक स्थान पर 'राम की' अनुवाद किया गया है सो क्यों? इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि यह हिन्दी भाषा की खूबी के कारण ऐसा किया गया है। ऐसे ही प्रसंग 'भाषा की जुदी खूबी' कहे जा सकते हैं।

इसके सिवा जिन सज्जनों की यह सम्मति है कि षष्ठी कारक के चिह्न 'का, की, के', कोरे सम्बन्ध प्रदर्शित करने का ही काम नहीं करते हैं किन्तु उनसे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक काम करते हैं, उन सज्जनों की यह सम्मति नहीं पायी जाती है कि सम्बन्ध कारक के चिह्नों के सदृश अन्य कारकों के सब चिह्न भी अपने अभीष्ट अर्थ से अधिक अर्थ व्यंजक होते हैं। ऐसी अवस्था में यदि उक्त सम्मति मान भी ली जाये तो अकेले सम्बन्ध कारक के चिह्नों के अधिक शक्तिशाली होने के कारण सब विभक्ति चिह्नों को उनकी संज्ञाओं से अलग लिखने का नियम कर देना उचित नहीं जान पड़ता।

(5) कई विद्वानों का कथन है कि संज्ञा के साथ ही विभक्ति प्रत्यय का उच्चारण नहीं होता, अतः उसका संज्ञा से अलग लिखा जाना ही उचित है। इस पक्ष के सज्जनों की सम्मति है कि 'हमें', 'हमारा' आदि सर्वनामों को छोड़कर अन्य सर्वनाम और संज्ञाओं को कारक चिह्नों से पृथक् ही लिखना चाहिए। क्योंकि संज्ञा और कारक चिह्न के उच्चारण के बीच में कुछ रुकावट अवश्य पायी जाती है। इस पक्ष के चूड़ान्त पक्षपाती पण्डितों के लेखों को ध्यानपूर्वक देखने से यही पाया जाता है कि वह लोग प्रायः उसमें, हमने, उसका, उसमें, उसको, हमको आदि समस्त सर्वनामों को उनके विभक्ति प्रत्ययों के साथ ही लिखा करते हैं। इस पक्ष के पोषक सज्जन अपने पक्ष का मण्डन करने के अभिप्राय से यह बात भले ही कहें कि 'रामने' पद का उच्चारण करने में 'राम' संज्ञा और ने कारक के चिह्न के उच्चारण में थोड़ी रुकावट अवश्य होती है, वैसी रुकावट 'उसने' पद का उच्चारण करने में नहीं होती, पर स्पष्ट वक्ता को इसको स्वीकार करना ही होगा कि उक्त कथन काल्पनिक मात्र ही जान पडता है क्योंकि वह वैसा अनुभूत नहीं होता। ऐसी अवस्था में सर्वनाम और संज्ञाओं के विषय में उक्त जैसा पक्षपात करना केवल सारहीन ही नहीं किन्तु भाषा को प्रगल्भ और प्रौढ़ न होने देने वाला एक प्रचण्ड बाधक है।

(6) जैसे कई वर्षों से विभक्ति प्रत्ययों को संज्ञाओं से अलग-अलग लिखने की प्रथा चली आ रही है और उसी प्रथानुसार कई ग्रन्थ छप चुके हैं, वैसे ही कई वर्षों से विभक्ति प्रत्ययों को संज्ञाओं के साथ मिलाकर लिखने की भी प्रथा चली आ रही है। इस प्रथानुसार भी कई ग्रंथ छप चुके हैं। ऐसी अवस्था में प्रथम बात को प्रधानता देकर इस समय सर्वसम्मति से यह बात यदि सयुक्तिक और सारगर्भित निश्चित हो जाए कि 'सविभक्तिक संज्ञा का लिखा जाना ही उचित है, तो हम समझते हैं कि इससे पूर्व के लिखे हुए ग्रन्थों को किसी प्रकार की हानि पहुंचने की कोई शंका नहीं प्रतीत होती। पुराने ग्रन्थों में, करा, करी, भया, भई, किई, दिई आदि शब्दों का प्रयोग प्रचुरता के साथ पाया जाता है। पर आधुनिक लेखकगण उक्त शब्दों के स्थान में, किया, की, हुआ, हुई, की और दी आदि का प्रयोग किया करते हैं। पाठक ही विचार करें कि क्या उक्त परिवर्तन के कारण प्राचीन ग्रन्थों का आशय समझने में किसी प्रकार की आपत्ति बोध होती है। विचारान्त में यही प्रतीत होगा कि उक्त प्रयोगो से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं बोध होती। साथ ही आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 26 फरवरी, 1910

चारित्र शौटीर्य्य

"अतृतं नाभिधः स्यामि चारित्रभ्रंशकारणम्।"

(मृच्छकटिक)

चारित्र-शौटीर्य्य का अर्थ है 'चरित्राभिमान'। इस भारतवर्ष में एक समय ऐसा था कि यहाँ के लोगों का ध्यान अपने आचरण पर बहुत रहा करता था। प्रत्येक जन इस विषय में सदा सतर्क और सचेत बना रहा करता था कि कहीं उसके चरित्र अर्थात् आचरण में किसी प्रकार का दोष वा कलंक न आ जाय। इस संसार के निर्माता ईश्वर ने इसको इस ढंग से बनाया है कि इसके अधिवासी जिस प्रकार का कर्म करें, उसी प्रकार का फल मिलना चाहिए। पूर्ण चरित्रवान् श्रीरामचन्द्रजी के वनयात्रा को चले जाने पर उनके विषम वियोग से कातर राजा दशरथ ने अपनी पट्टमहिषी कौशल्या से कहा—

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः॥

(अयोध्याकाण्ड, सर्ग 63, श्लोक 6)

इस पद्य का अर्थ यह है कि "मनुष्य जिस प्रकार का आचरण करता है उसे अपनी कृति के अनुसार वैसा ही फल मिलता है।" अपने मामा के यहाँ से लौटने पर जब भरतजी को यह मालूम हुआ कि कैकेयी की कुटिलता के कारण दृष्टा-पदान श्रीरामचन्द्र जी को दण्डकारण्य की यात्रा करनी पड़ी, और उनके विषम वियोग से उत्पन्न हुई प्रचण्ड अग्नि में राजा दशरथ को अपने प्रिय प्राणों की आहुति देनी पड़ी, तब भरतजी ने अत्यन्त दुखी होकर कैकेयी की बहुत निन्दा की। उसी समय उन्होंने कैकेयी से कहा—

सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठे राजाभिषिच्यते।
राजा मे तत्समं तत्स्यदिक्ष्वाकूणां विशेषतः॥
तेषां धर्म्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम्।
अद्य चारित्रोशौटीर्य्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम्॥

(अयोध्याकाण्ड, सर्ग 75, श्लोक 22-23)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य राजा गणों की यही सनातन प्रथा है कि उनके यहाँ बड़े ही पुत्र को राज्य दिया जाता है। यह बात रघुवंशियों के यहाँ सविशेष मानी जाती रही है। जो इक्ष्वाकुवंशी राजागण आज तक धर्म्मँक रक्षक होते आए हैं, जिन्हें अपनी कुलीनता और अपने चरित्र का पूरा-पूरा अभिमान रहता आया है, उनका वह चरित्राभिमान आज तुझे प्राप्त होकर विनष्ट हो गया। धन्य है भारत के उस समय को, और उसके निवासियों को, जिन्हें अत्यन्त दु:ख के समय में भी अपने कुल के चरित्राभिमान की विस्मृति नहीं हो सकती थी।

प्राणातिप्रिय छोटे भाई लक्ष्मण और द्वितीय हृदय के समान सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी जिस समय चित्रकूट में निवास कर रहे थे उस समय भरतजी वहाँ आपको मनाने के लिए गये थे। चित्रकूट में पहुँच कर भरतजी ने ज्यों ही पूज्यपाद श्री रामचन्द्रजी को दण्डवत् प्रणाम किया त्योंही आपने भ्रातृ स्नेह से आर्द्र होकर भरतजी को उठाया और अपने हृदय से लगा लिया। पश्चात् आपने उन्हें कुशल प्रश्न के ब्याज से इतनी उत्तम राजोपयोगी शिक्षा दी कि जिसकी प्रशंसा आज दिन भी बड़े-बड़े राजकाज विशारद मुक्तकण्ठ से करते हैं। इस शिक्षा के समाप्त होने पर श्रीरामचन्द्रजी ने भरतजी से उनके वहाँ आने का कारण पूछा। उसे कहकर भरतजी ने अत्यन्त प्रश्रय नम्रता प्रमुख आपसे राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की। उस प्रार्थना के उत्तर में जो आपने कुछ कहा है वह प्रत्येक पुरुषार्थ पदाभिलाषी मनुष्य के मनन तथा अनुकरण करने योग्य है।

श्रीरामचन्द्रजी ने भरतजी से कहा—

कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधोजनः॥

"मुझसा कुलीन, मुझसा पराक्रमी, मुझसा वीर्य्यवान, मुझसा चरित्रशौटीर्य्य जन राज्य के लिए पित्राज्ञाभंग रूप पाप को क्योंकर करेगा?" तात्पर्य, ऐसे काम को मैं कभी नहीं कर सकता। राजा दशरथ के समीप सदाचण्डी कैकेयी के मुख से जिस समय श्रीरामचन्द्रजी ने अपने निर्वासन की आज्ञा सुनी थी, उस समय मानवीय स्वभावानुसार उन्हें कुछ बुरा अवश्य लगा था, पर आपने उस भाव को कभी व्यक्त नहीं होने दिया। जिन्हें रामचन्द्रजी स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना करते थे, उन माता कौशल्या देवी के तथा लघु भ्राता लक्ष्मण के उभारने पर भी उनका मन डाँवाडोल नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में जिन भरत जी को राज्य दिलाने के लिए राम जी प्रव्रजित किए गए थे, स्वयं उन्हीं भरतजी के रामचन्द्रजी से उस राज्य को स्वीकार करने की प्रार्थना करने पर पित्राज्ञाभंग स्वरूप पाप के भय से, इतने भारी राज्य का त्याग करना सचमुच बड़े भारी चरिताभिमानी पुरुष का ही काम है। सर्वगुणसम्पन्न ज्ञानविज्ञानशील, निर्मल चरितवान श्रीरामचन्द्रजी के चरिताभिमान का ही यह फल है कि उनकी जीवनयात्रा समाप्त करने को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय अनन्तकाल बीत जाने पर भी आज दिन तक उनके कीर्ति-कुसुम का पुण्य गन्ध सर्वत्र फैला हुआ पाया जाता है।

व्यास, पाराशर, वाल्मीकि आदि मुनिजनों के लिखे हुए ग्रन्थों में जिन-जिन चरिताभिमानी पुरुषों के चरित्रों को हम पढ़ते हैं उनकी जब हम अपने समय के लोगों से तुलना करते हैं तब उनमें ताड़-तिल और मेरु-मटर के सदृश अन्तर दीख पड़ता है। उन्नति और सुधार करते-करते एक समय यहाँ के भद्र पुरुषों ने चरित्र शौटीर्य्य को यहाँ तक पहुँचा दिया था कि स्वर्गोपम सुख देने वाले राज्यों तक के लोग चरिताभिमान के समीप अणुमात्र भी लालसा नहीं करते थे। उन्हीं लोगों के सन्तान का चरिताभिमान नष्ट हो गया है कि बड़े-बड़े धनाढ्य, धराढ्य, विद्वान तक झूठ बोलने को कोई पाप नहीं समझते हैं। कहाँ तो इसी भारत में एक समय वह था कि यहाँ के लोग झूठ को चरितविद्या तक मान कर उसका उच्चारण करने तक से डरते थे, कहाँ आज दिन उसी भारत में ऐसा समय आ गया है कि चार आने के पैसों के लोभ से लोग अदालत में जाकर मनमानी झूठ बेच आया करते हैं। काल ! बलिहारी है तेरी कुटिल गति की। अस्तु।

इस समय जो सज्जन भूले भटके कभी-कभी पौराणिक कथा-वार्ता सुन लेते हैं वा कभी सत्समागम में थोड़ी देर के लिये बैठ जाते हैं, वे जब किसी धनवान, अधिकारी, गुणसागर माने जाने वाले पुरुष को अल्प लोभ तक के लिए असत्यता-पूरित पापाचरण करते देखते हैं, तब सहसा कह बैठते हैं कि हमें जान पड़ता है, या तो ईश्वर के यहाँ भी अन्याय किया जाता है, या लोगों ने पुराण ग्रन्थादिकों में सत्यता और चारित्रशौटीर्य्य आदि की यों ही प्रशंसा लिख दी है। यदि ईश्वर को सत्य का गौरव और उत्कर्ष अभिप्रेत एवं स्वीकृत होता तो अमुक-अमुक पापाचार, जिसकी दिनचर्य्या गोस्वामी तुलसीदासजी के कथनानुसार "झूठहि लेना झूठहि देना, झूठहि भोजन झूठ चबेना" मय देखी, सुनी जाती है और उस नररूप पिशाचाधम की जहाँ तहाँ जीत क्यों हुआ करती है? सत्य, सज्जनता, सच्चरित्रता आदि की खाक छानने वाले लोगों के सत्यता से ओतप्रोत भरे हुए कार्य्य कलाप सत्यादि का गला घोटने वाले उक्त मनुजाद की झूठी कार्रवाई के समीप क्यों अपमानित और तिरस्कृत किये जाते हैं? तात्पर्य्य, प्रसंगविशेष पर जिसे द्वैधी भाव के साथ बर्ताव करने की शिक्षा तत्त्वार्थपारीण लोगों ने दी थी, आजकल बिना कारण सर्वत्र उसी की व्यापकता दीख पड़ती है।

जो लोग चरित्रहीन, चालबाज और धूर्त लोगों के हथकण्डों को देखकर सत्यता तथा ईश्वर के न्याय की निन्दा करने लग जाते हैं, वे यदि थोड़ा सा विचार करें, तो अपने को उक्त जैसे भीषण पाप से सहज ही में बचा ले सकते हैं। वह विचार यही है कि सत्य की विजय सर्वत्र होती है, ईश्वर न्यायी है, आदि वाक्य उस समय के लोगों के कहे हुए हैं जिस समय के लोग अधिकतर चरिताभिमानी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यसन्ध, न्यायपरायण, गुणज्ञ, आस्तिक और धर्म्मभीरु हुआ करते थे। आजकल के अधिकतर लोग ठीक उनके विपरीत हुआ करते हैं। ऐसी अवस्था में उनके कहे हुए सिद्धान्त वाक्य यदि इस समय के लोगों को अन्यथा जान पड़ें तो यह न तो उन कहने वालों का ही दोष है और न उन वाक्यों का ही। जो दोष है वह सब समय के लोगों की चरित्रहीनता तथा नास्तिकता का ही है।

कवि कहता है—चरित्रविहीनः आढयोपिच्च दुर्गतो भवति।

अर्थात् चरित्र की हीनता के कारण धनी मनुष्य तक की दुर्गति हो जाती है। इस उक्ति की सत्यता को आज प्रमाणित करने के लिए हमें अधिक उदाहरण देने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। क्योंकि इसकी सत्यता सब लोगों को जहाँ तहाँ दीख पड़ती है। यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उससे हमारे पाठकों को और अधिक नहीं तो चरिताभिमान की आवश्यकता का दिग्दर्शन अवश्य ही हो गया होगा। इस देश तथा इस देश के लोगों को जो विद्वान सज्जन हिताशंसी हैं उनकी सेवा में हमारी विनीत भावपूर्वक प्रार्थना है कि वे जिस प्रकार लेख ग्रन्थ और व्याख्यानों द्वारा देश में विद्या, शिल्प, कृषि और वाणिज्य की उन्नति के लिए अनेकशः प्रयत्न कर रहे हैं उसी प्रकार उन्हें उक्त साधनों द्वारा चरिताभिमान की मात्रा बढ़ाने के लिए भी उद्योग करना चाहिए। आज दिन बड़ी-बड़ी सभाएं, बड़े-बड़े समाज यत्र तत्र स्थापित किए जाते हैं, उनमें बड़े-बड़े मन्तव्य स्वीकृत किये जाते हैं पर वे सब अल्प काल में ही नष्ट हो जाते हैं। इन सबका कारण एकमात्र चरित्र की हीनता ही है। चरिताभिमान के अभाव के कारण लोगों में पारस्परिक विश्वास नहीं बढ़ने पाता। पारस्परिक विश्वास न होने के कारण कम्पनी द्वारा संचालित कारखानों से जो लाभ हो सकते हैं, वह हम लोगों को नहीं प्राप्त हो सकते हैं। अतः इस देश के प्रत्येक हितैषी को अपने देशवासियों में चरिताभिमान को जाग्रत करने के लिये उद्योग करते रहना चाहिए। जिस दिन यहाँ के अधिवासियों की जिह्वा के अग्रभाग पर—

अनृतं नाभि धस्यामि चारित्रभ्रंशकारणम्।।

यह वाक्य नृत्य करने लगेगा उस दिन इस देश के लोगों का कल्याण होने में देर नहीं लगेगी। क्योंकि जो लोग चरितवान् होते हैं वे सत्यसन्ध और परिश्रमी भी होते हैं। जिस देश में सत्यतापूर्वक परिश्रम करने वाले लोगों की संख्या अधिक होती है उस देश में उद्यम की मात्रा अधिक बढ़ी हुई पायी जाती है। जिस देश में उद्यम की मात्रा अधिक पायी जाती है, उस देश में लक्ष्मी बड़े प्रेम भाव के साथ निरन्तर निवास करती है। जिस देश में लक्ष्मी निरन्तर रहा करती है उस देश के लोग सुखानुभव का अधिक भाग पा सकते हैं। अतः सुख और कल्याण की इच्छा रखने वाले लोगों को इनके साधक 'चरित' का संगठन करने के लिए नित उठ प्रयत्न करते रहना उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 2 अप्रैल, 1910

उन्नति

जब किसी के सुख तथा विभव की मात्रा अधिक बढ़ी हुई देखी सुनी जाती है, तब उसे सर्वसाधारण लोग उन्नत अवस्था सम्पन्न कहते सुनते हैं। जिस प्रकार यह बात एक मनुष्य के विषय में कही-सुनी जाती है उसी प्रकार वह एक कुटुम्ब, एक गाँव, एक नगर, एक प्रांत, एक राष्ट्र और एक देश के विषय में भी कही-सुनी जा सकती है। इस समय भारत के विद्वज्जनों का चित्त भारत की उन्नति करने की ओर आकृष्ट हो रहा है। अवश्य ही उनकी यह सब कामना भारत की भविष्यत् उन्नति का प्रसाद चिह्न है।

जो विद्वान सज्जन भारत की उन्नति के अभिलाषी हैं, वे इस उन्नति के अपनी-अपनी मति के अनुसार कई मार्ग बतलाते हैं। कोई कहता है, कि जब लौं भारत में विधवा विवाह का प्रचार नहीं होगा तब लौं भारत की उन्नति नहीं होगी, कोई कहता है कि जब तक भारत की वर्तमान चातुर्वर्णात्मक जाति प्रथा नहीं उठा दी जावेगी तब तक भारत का उत्कर्ष नहीं होगा; कोई कहता है कि जब तक भारत में धार्मिक जीवन का संचार नहीं किया जायेगा तब तक भारत का अभ्युदय नहीं होगा; कोई कहता है कि जब तक भारत में स्त्री शिक्षा का प्रचार नहीं होगा तब तक भारत का उद्धार नहीं होगा; कोई कहता है, कि जब तक सामाजिक सुधार नहीं होगा तब तक भारत का उत्थान नहीं होगा। तात्पर्य अपने-अपने मत के पक्षपाती अपनी-अपनी युक्तियों से अपने-अपने मत का समर्थन और मण्डन किया करते हैं। इस विषय पर विचार करते करते हमें जो बातें ज्ञात हुई हैं उन्हें हम अपने उन्नायक सज्जनों की सेवा में निवेदन कर उन पर भी विचार करने के लिए आप लोगों से प्रार्थना करते हैं। भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य का पठन पाठन, मनन और अनुशीलन करने से यह बात जानी जा सकती है कि किसी मनुष्य वा देश को अपनी उन्नति कर, उसे चिरस्थित बनाये रखने के लिए विद्या, धन और परिश्रम के समीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्या, धन और परिश्रम इन तीनों की प्रगलभावस्था जहाँ-जहाँ जब लौं निष्कंप बनी रहती है वहाँ तब लौं उन्नति बड़े प्रेम भाव के साथ निवास किया करती है। जहाँ इन तीनों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से किसी एक की मात्रा घटने लगती है, वहाँ उसी प्रमाण से उन्नति का निवास भी क्षीण होने लग जाता है। प्राचीन अथवा अर्वाचीन उन्नत देशों के इतिहासों पर हम ज्यों-ज्यों अधिक विचार और मीमांसा करते हैं त्यों-त्यों हमारे चित्त में यह बात अधिकाधिक दृढ़ होती जाती है कि विद्या, धन और परिश्रम का उन्नति के साथ साहचर्य धर्म प्रकृति सुलभ ही है। जिस प्रकार प्रकृति, अपने चिर प्रचलित अदम्य नियमों की उपेक्षा वा उनका उल्लंघन करने वाले को क्षमा करना जानती ही नहीं, उसी प्रकार जो लोग विद्या, धन और परिश्रम के समीकरण को अपने देश में आदर के साथ टिकने की परवाह नहीं करते उनके देश में उन्नति कभी ठहर ही नहीं सकती।

हमारे पाठकों में से जो सज्जन इतिहासों में लिखी हुई बातों का पता लगाना नहीं चाहते वा जो उन्हें कवि कल्पना मात्र समझकर उनके लेखकों को तिल को ताड़, बिन्दु को सिन्धु, और मटर को मेरु बनाने वाला मानकर उनकी उपेक्षा करते हैं, उनके विचारार्थ हम नीचे लिखी हुई दो एक बातों को ही पर्याप्त समझते हैं। हमारे पाठकों में से कई सज्जनों ने अपने निवास स्थान में ऐसे लोगों को प्राय: देखा ही होगा जिनके पिता वा पितामह हाथी, घोड़े, और पालकी की सवारी के सिवा धरती पर एक इंच भी नहीं चलते-फिरते, आज उन्हीं के पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रों को डाकरनर का काम करने पर भी अपनी तथा अपने आश्रित जनों की उदर पूर्ति करने योग्य धन नहीं मिल सकता इसका कारण इस समय लोग अज्ञानवश अदृष्ट के मत्थे मढ़ा करते हैं। पर इसमें अदृष्ट का कोई दोष नहीं है। दोष केवल उन्हीं लोगों का है जो पितृ पैतामहदत्त धन विभव को प्राप्त होकर विद्या और परिश्रम का यथावत् सेवन नहीं करते। विद्या एवं विनोद के अनुशीलन से और विद्वज्जनों के सत्संग से धनाढ्य जन को यह बात मालूम रहा करती है कि विद्या और परिश्रम के बिना धन ठहर नहीं सकता। जो लोग बाप-दादाओं के धन को पाकर एकमात्र गाम्य विषयों में ही आसक्त हो जाते हैं, उनकी दूसरी या तीसरी पीढ़ी को निस्संदेह दरिद्र हो जाना पड़ता है। यह सामर्थ्य एक मात्र विद्या में ही है कि वह मनुष्य को सदा उसके कर्तव्य कर्म में दक्ष बना रखकर उसे ऐसे-ऐसे कार्य कलाप सूचित करते रहा करती है कि जो 'अल्प मूल महोदय' हुआ करते हैं। जिसके व्यवसाय 'अल्प मूल महोदय' हुआ करते हैं अर्थात् जो अपने काम काज ऐसे ढंग से चलाना जानता है, कि जिनमें पूँजी कम लगानी पड़ती है, परिश्रम कम करना पड़ता है, पर उनसे उसे लाभ अधिक होता है, उससे लक्ष्मी कभी विरक्त नहीं होती। जिससे लक्ष्मी को कभी उपराम नहीं होता वह सदा उन्नत ही बना रह सकता है। कैसा ही अतुल पराक्रमी, कैसा ही अटूट धन सम्पत्तिशाली, कैसा ही अनंत अधिकार सम्पन्न मनुष्य भले ही हो, पर उसे यह बात केवल विद्या द्वारा ही मालूम हो सकती है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) मानं न लभतेत्स भिन्न चारित्रदर्शनः ।

(2) न चिरं पापकर्माणः क्रूरालोकजुगुप्सिताः ।

ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥—रामायण

चरित्रहीन पुरुष का सज्जन मण्डली में कहीं आदर नहीं हो सकता। ऐश्वर्य की प्राप्त होकर जो पापी नित उठ निंद्य पाप एवं क्रूर कर्म किया करता है वह मूल-हीन पेड़ की नाईं बहुत दिन लौं अपने उक्त प्रकार के ऐश्वर्य का उपभोग कदापि नहीं कर सकता। तात्पर्य, धन-दौलत और अधिकार को पाकर जो लोग इतने उन्मत्त हो जाते हैं कि अपने कर्तव्य कर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं रखते, वे अपनी उस भूल के कारण शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं और अपने अधोपात के दोष को बेचारी लक्ष्मी पर विना कारण आरोपित किया करते हैं। पाठक ही बिचारें, इसमें बापुरी लक्ष्मी का क्या दोष है। जो दोष है वह सब लक्ष्मी आदि गँवाने वाले मनुष्य का ही है। इसी से यह निवेदन किया जाता है कि आत्मोन्नति चाहने वाले प्रत्येक जन को विद्या, धन और परिश्रम का समीकरण कर उसे स्थिर बनाये रखने का उद्योग करते रहना चाहिए।

इस समय भारत के बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, प्रयाग, मद्रास, लाहौर और नागपुर आदि प्रधान प्रधान नगरों में जो जो बड़े-बड़े भवन भगवती लक्ष्मी के क्रीड़ास्थल बने हुए पाये जाते हैं, उसके स्वामियों में से अधिकांश ऐसे सज्जन हैं, जिनके पिता और पितामह आदि विपन्न अवस्था में थे; किन्तु उन लोगों ने विद्या, परिश्रम और धन के समीकरण द्वारा अपनी सर्वथा प्रशंसनीय और अनु-करणीय वर्तमान उन्नत अवस्था प्राप्त की है। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों को देखकर भारत की उन्नति की लालसा रखने वाले प्रत्येक विवेकी जन को नीच-स्वार्थ त्यागपूर्वक विद्या, परिश्रम और धन का समीकरण करने के लिए चेष्टा करते रहना चाहिए।

विद्या और परिश्रम के सेवन की मात्रा यथावत् न मिलने के कारण ही भारत में इस समय कहीं-कहीं 'अजात व्यंजन' लोगों ने भारत का उद्धार करने के बहाने अत्यन्त निंद्य तथा सर्वत्याज्य काम कर डाले हैं। ऐसे लोग यदि भारत में कहीं और भी हों तो उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि राजा से श्रेय प्राप्त करने का उपाय वह नहीं है जिसका वे अवलम्बन कर रहे हैं; किन्तु भारत के दूरदर्शी ऋषियों ने राजा से श्रेय प्राप्त करने का उपाय यों कथन किया है—

अपराधिताः सुशीलेन प्रयत्नैस्वोप सेविताः

राजानः संप्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥—रामायण

अर्थात् जिन लोगों को राजा से अपना श्रेय प्राप्त करने की इच्छा हो उन्हें उचित है कि वे राजा की अत्यन्त सुशीलता के साथ आराधना करें, बहुत प्रयत्नों के साथ उसकी सेवा करें, तभी वह प्रसन्न होकर उन्नति की मनोभिलषित काम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाओं को पूर्ण कर उन्हें सिद्धार्थ और सकाम करेगा; अन्यथा आचरण से वह प्रकोप को प्राप्त होगा। पाठक ! देखिये हमारे परिणामदर्शी पूर्व पुरुष हमारे हित के लिए कितना उत्तम और हितकारक उपदेश छोड़ गए हैं। हम उस उपदेश का आदर न करने के कारण ही उन्नति से विमुख हो रहे हैं। फलितार्थ यही है कि भारत की उन्नति चाहने वाले सज्जनों को भारत में विद्या, परिश्रम और धन के समीकरण को बढ़ाने के लिए यथाशक्ति उद्योग करते रहना चाहिए। जिस समय इनका समीकरण भारत में यथार्थ रूप से विद्यमान हो जायेगा, उस समय उन्नति बड़े प्रेम और चाव के साथ भारत को अपना विलास मन्दिर बना लेगी। "तथाहि शीघ्रं भवतु।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 9 अप्रैल, 1910 में प्रकाशित

सत्यदेव की पूजा

आजकल अपने को कृतविद्य मानने वाले भारतवासी लोग, अन्य लोगों के सुर में सुर मिलाकर यह भले ही कहा करें कि भारत के प्राचीन ग्रंथकारों ने षड् दर्शन जैसे क्लिष्ट और जटिल ग्रंथ तो लिख डाले, पर उन लोगों ने ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं लिखे; किन्तु जो लोग अत्यन्त गंभीरता के साथ संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों को देखते हैं, उन्हें पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भारत के प्राचीन ग्रंथकारों ने, न तो इतिहास की उपेक्षा ही की है, और न उसके लिखने में किसी प्रकार की उन लोगों ने त्रुटि ही की है। भारत के प्राचीन ग्रन्थकारों ने इतिहास की व्याख्या इस प्रकार लिखी है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

अर्थात् उस भूतपूर्व घटनायुक्त कथानक को इतिहास कहना चाहिये जिसका श्रवण, पठन और कथोपकथन धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष के उपदेश से ओतप्रोत भरा हुआ हो। पाठक इतिहास के उक्त लक्षण में 'धर्मार्थकाममोक्षाणाम्' पद बहुत ही गंभीर अर्थ से भरा हुआ है, अतः वह 'नैरंतर्येण' चित्त में धारण करने योग्य हैं। इस पद से हमारे भूतपूर्व वस्त्वर्थवेता ऋषि महर्षियों ने स्थान-स्थान पर विषयानुरोधवश यह बात ध्वनित की है कि जो मनुष्य अपने धर्म अर्थात् कर्तव्य कर्म में दृढ़ स्थित रहता है उसे ही निष्कलंक और अनिंद्य अर्थ अर्थात् धन सम्पत्ति की प्राप्ति हो सकती है, जिसका धनार्जन स्तुत्य एवं प्रशंसनीय मार्ग से होता है वही वास्तव में सकाम और सिद्धार्थ हो सकता है, उक्त तीनों बहुमत अर्थों की जो संस्कृति प्राप्त कर सकता है वही अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त हो सकता है। पाठक देखिये, उक्त दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे शब्दों के समूह में हमारे परम कारुणिक पूर्वजों ने हमारी भलाई को सूचित करने वाले कितने उत्तमोत्तम उपदेश भर दिये हैं। इसीलिए हम कहते हैं कि उक्त शब्द समूह सदा चित्त में धारण करने योग्य है।

आज इस छोटे से लेख द्वारा हम अपने पाठकों के चित्तों की उस छोटी-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पुस्तक की ओर खींचना चाहते हैं जिसका प्रचार आज दिन भी भारत के बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे ग्रामो तक में सब श्रेणियों के आर्य लोगों में पाया जाता है। जिस पुस्तक को हम अनुलक्षित कर रहे हैं, हमारे विज्ञ पाठक समझ गये होंगे, उसका नाम सत्यनारायण की पूजा वा कथा है। श्रीमद्भागवत, भारत और रामायणादि बड़े-बड़े ग्रंथों में सत्य की अपरंपार महिमा की थाह पाने के लिए लोगों को परिश्रम न करना पड़े, इस अभिप्राय से, उक्त छोटी-सी पुस्तक को उसके लेखक ने एक स्वतन्त्र पुस्तक रूप से लिख दिया है। इस पुस्तक में शतानन्द ब्राह्मण, एक काष्ठभारवाहक और उल्कामुख राजा के इतिहास द्वारा पाठकों को यह सूचित किया गया है कि जिन लोगों को इस संसार में सब प्रकार के सुखों का उपभोग लेकर अन्त में ईश्वर-प्राप्ति करनी हो, उन्हें उचित है कि वे सर्वोपरि श्रेष्ठ सत्य का आराधन और सेवन करें। इस पुस्तक में सत्य के आराधन को स्वयं नारायण का आराधन कहा गया है। तात्पर्य, उक्त तीनों कथाओं द्वारा पाठक अथवा श्रोताओं के चित्त पर यह बात अंकित कर देने के लिये उद्योग किया गया है कि उनकी––

"सत्यमिष्टं हि मे सदा"

यही दृढ़ भावना हो जाय। साथ ही साधु, बनिया और तुंगध्वज राजा को कथाओं द्वारा सत्य से विमुख रहने वाले लोगों को जो कष्ट उठाने पड़ते हैं वे भी व्यक्त कर दिये गये हैं। इस कथा के अन्त में इस कथा की फलश्रुति इस प्रकार लिखी गयी है—

ये इदं कुरुते सत्य-व्रतं परम दुर्लभम्।
श्रणोति च कथां पुण्यां भवेत्सत्य प्रसादतः।
दरिद्रो लभते वित्तं बन्दी मुच्येत बंधनात्॥
भीतो भयात् प्रमुच्येत सत्यमेव न संशयः।
ईप्सितंच फलं भुक्त्वा चांते सत्यपुरं व्रजेत्॥

अर्थात्, जो पाठक वा श्रोता इस कथा को भक्ति भाव के साथ सुनकर सत्यता का पूरा-पूरा पक्षपाती और व्रती होगा, उसे निःसंदेह सत्य स्वरूप ईश्वर की कृपा से धन धान्यादि की प्राप्ति होगी। अर्थात् यदि वह दरिद्र होगा तो उसे सत्यव्रती होने के कारण धन मिलेगा, यदि वह बँधुआ होगा तो उसे सत्यदेव की आराधना के प्रसाद से बंधन से मुक्ति मिलेगी, यदि उसे किसी प्रकार का भय होगा तो सत्य में प्रगाढ़ प्रेम रखने के कारण उसे भय से त्राण मिलेगा। तात्पर्य, सत्य का आराधन और सत्य का व्रत वह परम दुर्लभ चीज है कि उसके सेवन से संसार के यावत् सुख तो मिलते ही हैं, किन्तु साथ ही अन्त में सत्य के भक्त को निःसन्देह परम पद भी प्राप्त होता है।

हमारे जिन पूर्वजों ने हमारी मंगल कामना से प्रेरित होकर हमें ऐहिक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारमार्थिक सुख तथा विभव विस्तर देने वाले सत्य का सेवन करने का उपदेश किया है, उनके उपदेश की उपेक्षा कर आज दिन जिन तीते फलों का हम लोगों को खुद स्वाद चखना पड़ रहा है, उनके लिए दोषभाक् हमीं लोग हैं। क्योंकि उनका जो कर्तव्य था सो उन लोगों ने पूरा कर दिया अर्थात् अपने अनुभव से जो बात उन लोगों ने जानी थी, उन लोगों ने हमें उपदेश देने के लिए लिख दी, अब यह हमारा काम है कि हम उस से लाभ उठावें। कहना नहीं होगा कि सत्यदेव की कथा और पूजा का प्रचार लोगों में सब सुखदायक सत्य की मात्रा बढ़ाने के अभिप्राय से ही किया गया है। पर आज दिन वह बात एक खिलवाड़ सी कर दी गयी हैं। जिसके यहाँ सत्यदेव की पूजा होती है वह अपनी आर्थिक अवस्थानुसार पूजा का आडम्बर और आयोजन भले ही करता हो, पर सत्यता का भक्त बनने के लिए वह उतनी चिन्ता कभी नहीं करता। बहुधा देखा जाता है कि आज जो एक जन सत्यदेव की पूजा करता है वही जन कल खुली अदालत में जाकर सरासर झूठी बातें कह सुन आता है। उसकी असत्यता का श्रीगणेश यहाँ से होता है कि जब वह सत्यदेव की पूजा के लिए पूजन-सामग्री खरीदने जाता है तब बनिया से वह कहता है कि चार आने की अच्छी सुपारी दो और आध आने की 'पूजा की' सुपारी अर्थात् सड़ गयी हुई सस्ते भाव की सुपारी दो। पाठक, देखिये इस असत्यता के व्यवहार को। सत्यता की शिक्षा ग्रहण करने के लिए वह जिस व्रत का अनुष्ठान करना चाहता है, उसके श्रीगणेश में वह कितनी असत्यता का बर्ताव करता है। निःसन्देह ये सब बातें हमारे 'भिन्न चरित्र दर्शन' होने का प्रमाण है।

जो लोग कथा श्रवण के लिए निमन्त्रित किये जाते हैं वे इस बात का पता लगाते रहते हैं कि कथा पूरी होने में अब कितनी देर है। कथा पूरी होकर ज्योंही प्रसाद वितरण का समय आता है त्यों ही अपने को सभ्य मानने वाले लोगों की मण्डली कथास्थल में पधारती है। हमारा यह बर्ताव ठीक वैसा ही है जैसे कोई बुद्धि-शत्रु अपने पुरुषों के लगाये हुए आम के बाग को कटवाकर उसके स्थान में पलास के पेड़ लगवाता है, और फल प्राप्ति के समय केवल निर्गन्ध पुष्पों को देख पछताता है। हमारे पूर्वज हमको शिक्षा दे गये हैं कि सत्य का सेवन करोगे तो तुम्हारी सर्वत्र विजय होगी, सब कहीं तुम्हारा आदर होगा, संसार में तुम्हें सुख मिलेगा। उनके उपदेश का निरादर करने से आज दिन जो दुःख और कष्ट सहने पड़ रहे हैं उन्हें सभी लोग जानते हैं। अतः अब भारतवासियों को उचित है कि सत्यदेव की यथार्थ पूजा करना सीखें, और उससे अपनी तथा देश की भलाई करें। इस समय सत्य की मात्रा घटी हुई है, इसीलिए झूठे और पापियों के साथ काम करने को बाध्य होने वाले लोगों को कष्ट अवश्य ही सहने पड़ेंगे। किन्तु सत्यव्रती को उन्हें सानन्द और सहर्ष सह लेना चाहिए। उसे दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि इस संसार में ऐसा कोई श्रेय नहीं है जो मनुष्य को सत्य और परिश्रम के आराधन से न मिल सकता हो। श्रुति कहती है—

सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 16 अप्रैल, 1910

लक्ष्मी

"उद्यमस्था सदा लक्ष्मीः।"

भारत के लोग सब प्रकार के धन और सब प्रकार की सम्पत्ति को लक्ष्मी कहा करते हैं। इस समय के अर्थशास्त्र विशारद वा सम्पत्ति तत्व पारीण सज्जनों ने इसकी समय समय की नाना प्रकार की आकृतियों का और इसके गुणों का जो व्यास और समास वर्णन किया है उसे हमारे बहुतेरे पाठक जान ही चुके हैं। दैवात् यदि किसी को उसके जानने का सुगम मार्ग तथा साधन न मिला हो तो वह प्रयाग के इण्डियन प्रेस से सम्पत्तिशास्त्र पुस्तक (मू० 2.50) मंगाकर उससे मनस्तुष्टि सुखेन कर सकता है। आज इस लेख में हम उक्त विषयों की चर्चा नहीं करना चाहते। इस लेख के लिखने में हमारा प्रधान अभिप्राय, अपने पाठकों के चित्तों को पहले लक्ष्मी के उन दुर्गुणों की ओर खींचने का है, जिनके लिए कई लोगों ने, सदा सर्वहित रत, इस बापुरी को बिना कारण, दूषित और कलंकित कह रखा है। पश्चात् इनके उन गुणों का भी थोड़ा वर्णन किया जायेगा जिनके कारण हम इसे सर्वहित रत कहते हैं।

इस देश के कवियों ने सम्पत्ति पर तरुण स्त्री के भाव को आरोपित कर अपनी काव्य शक्ति की उमंग में मग्न होकर उसे मनमानी ऊंची-नीची बातें कह डाली हैं। यथा—

हे लक्ष्मि, क्षणिके, स्वभावचपले, मूढे च पापेऽधमे।
न त्वं चोत्तम पात्र मिच्छसि खले, प्रायणि दुखारिणी॥
ये देवार्चन सत्य शौच निरता, ये चापि धर्मे रता।
स्तम्भो छज्जसि निर्दये गत मति नीची जनो वल्लभः॥ —सुभाषित

इसका भावार्थ यह है—

"हे लक्ष्मी, तेरा स्वभाव अत्यन्त चंचल है, यहाँ तक तेरे आने और जाने में क्षण भर तक की देर नहीं होने पाती, तू मूर्ख है, पापिन है, अधम है, खल है, दुश्चरित्रा है, क्योंकि जो लोग ईश्वर भक्त हैं, सत्यवादी हैं, शुचिर्भूत है, धर्म परायण हैं, उनके पास जाते तो तू लज्जित होती है, किन्तु जो नीच और सारा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार विचारहीन हैं उनके पास तू बड़े प्रेम भाव के साथ जाती है।

इसी प्रकार की दुखिया लक्ष्मी को उल्टी सीधी बातें सुनाने वाले इस कवि की विचार परम्परा को हमारे पाठक और पढ़ लेवें। देखिये वह कहता है—

तो जानाति कुलीन मुत्तम गुणं सत्य स्थितं धर्मकम्।
नाचारश्रवणं न कार्यकुशलं न प्रहश्रा
नीचं क्रूर मणेत सत्य मदयं यस्मादि यं सेवते।
तद्वं शालु गुणं पयोधि सुतया लक्ष्मण प्रमाणा कथम्॥ —सुभाषित

अर्थात् "यह लक्ष्मी जड़ समुद्र की बेटी है इस बात को इसने अपनी उक्ति से भली भाँति प्रमाणित कर दिया है। देखिये न, यह कुलीन, उत्तम गुणी, सत्वशील, धर्मभीरु, चरित्रशौटीर, कार्यपटु और बुद्धिमान के तो पास तक नहीं फटकती, किन्तु जो नीच हैं, दुष्ट हैं, निर्दय हैं, सत्यहीन हैं उन्हीं का सेवन करती है।"

आगे चलकर हम लक्ष्मी की प्रशंसा के विषय में जो बातें लिखने वाले हैं उन्हें पढ़कर हमारे पाठकों को यह बात बहुत सुगमतया विदित हो जायेगी कि उक्त दो श्लोकों में लक्ष्मी के विषय में जो बातें कही गयी हैं, जिस समय इस पुराण भारत का उत्कर्षभानु अस्ताचल का पथिक बन चुका था। बुरी बातों का और कुत्सित भावों का विस्तार होते देर नहीं लगती। इस प्राकृतिक नियमानुसार उक्त पद्यस्थ भावों का प्रचार भारत के वस्त्वर्थ को न जानने वाले चरित्रहीन लोगों में विद्युद्वेग हो गया। तात्पर्य बहुधा लोग इसकी निन्दा कर इससे दूर रहने के लिए प्रयत्न करने लगे और कहाँ तक कहें, इस भारत के सनातन धर्म की रक्षा करने वाले शंकर स्वामी तक ने इसके विषय में कह डाला है—

मूढ जहीहि धनागमतृष्णाम।

अर्थात्—रे मूर्ख धन प्राप्ति की इच्छा का पिंड छोड़। अस्तु।

भारत के जिन प्राचीन वस्त्वर्थ पारीण तथा व्यवसाय-प्रवण लोगों ने इसे समृद्धिशाली बनाया था, उन लोगों के लक्ष्मी विषयक विचार इस प्रकार पाये जाते हैं—

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियांविदज्ञं व्यसनेषनसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदयंलक्ष्मीः स्वयं यातनिवासहेतोः॥

अर्थात् लक्ष्मी स्वयं रहने के लिए उसी के पास जाती है, जो निरन्तर उत्साह युक्त रहा करता है, जो सदा अपने काम को शीघ्र कर डाला करता है, जो अपने कामों का सम्पादन बहुत निपुणतया किया करता है, जो कभी (पानादि) दुर्व्यसनों के पास तक नहीं जाता, जो वीर होता है, जो उपकार को मानता है, और जो बिना स्वार्थ के दृढ़ मित्रता करना जानता है।

एक दूसरा कवि कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यवसायनिमलसं दैव पर साहसाच्च परिहीनम् ।
प्रमदापतिमिव वृद्धं वेच्छति लक्ष्मीरुपस्थातुम् ।।

अर्थात् जिस प्रकार तरुण स्त्री वृद्ध पति के पास रहना नहीं चाहती ठीक उसी प्रकार लक्ष्मी भी उस पुरुष के पास रहना नहीं चाहती जो रोजगार हाल नहीं करता, जो आलस में सना पड़ा रहता है, जो निरन्तर देव के भरोसे पड़ा रहा करता है और जो यहाँ तक नहीं जानता कि साहस किस पक्षी का नाम होता है।

ऊपर लिखे हुए अन्तिम दो पद्यों में लक्ष्मी को उत्पन्न कर स्थिर बना रखने वाली जो बातें कही गई हैं उन पर अब हम क्रमशः थोड़ा विचार करते हैं।

लक्ष्मी को निज पर मोहित कर लेने के लिए सबसे पहले उत्साह की परम आवश्यकता है। वास्तव में उत्साह ऐसी वस्तु है—इसके विषय में मुनिवर वाल्मीकि जी अपनी रामायण में लिख गये हैं—

अनिर्वेदो हि सततं सर्वर्थिषु प्रवर्तक. ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ।।
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।

अर्थात्—एकमात्र उत्साह ही में वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य मनमाने कामों में प्रवृत्त हो सकता है। यह अकेले उत्साह की ही सामर्थ्य है कि मनुष्य उसकी सहायता से अपने मनोभिलषित कामों को सिद्ध कर ले सकता है। तात्पर्य अनिर्वेद अर्थात् उत्साह लक्ष्मी और परम सुख का आदि कारण है। वर्तमान भारत वासियों में उत्साह की मात्रा जिस प्रकार पायी जाती है उसे विज्ञ मात्र जानते हैं। देश की सम्पत्ति बढ़ाने की शुभ इच्छा रखने वाले भद्र पुरुषों को उचित है कि वे अपने तथा अपने आश्रित जनों के उत्साह को नित्य प्रति बढ़ाते रहने की चेष्टा में तत्पर रहा करें। जिस प्रकार लक्ष्मी को अपने में अनुरक्त करने के लिए उत्साह की अत्यन्त आवश्यकता है उसी प्रकार उसके प्रेम को निज पर अटल बनाये रखने के लिए कार्य को शीघ्र और चतुरता के साथ करने की परम आवश्यकता है। अर्थात् जो मनुष्य अपने काम को जितने शीघ्र और जितने कम खर्च में कर सकेगा, उतना ही धन प्राप्त कर सकेगा। धन प्राप्त कर जो लोग ग्राम्य सुखों में अर्थात् स्त्रीपानादि विषयों में आसक्त हो जाते हैं उनकी धन सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है अतः इनसे सदा बचे रहना चाहिए। धन को पैदा कर उसे बढ़ाते रहने के लिए परिश्रम; कृतज्ञता और निःस्वार्थ मित्रभाव की जैसी आवश्यकता है वैसे ही अत्युत, उससे कहीं बढ़कर आलस्य और दैव की अधीनता को दूर भगा देना बहुत प्रयोजनीय है।

भारत के किसी परिणामदर्शी उद्भट पण्डित ने नीचे लिखे हुए श्लोक में जो बातें कही हैं वह आपने बहुत ही ठीक कही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः सपण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते ॥

अर्थात् जिसके पास धन रहता है वही कुलीन बना रह सकता है, वही पण्डित, बहुश्रुत, गुणज्ञ, वक्ता और प्रेक्षणीय हो सकता है । तात्पर्य ऐहिक जितने गुण हैं उतने सब एकमात्र धन ही के आश्रित रहा करते हैं। इस समय उन्नत पाश्चात्य देश निवासी व्यवसाय प्रवण लोगों की उत्साह और साहसपूर्ण ध्रुव यात्रादि के वृतान्त, उसी प्रकार ललित कलाओं को विज्ञान बल से नित उठ नूतन नूतन आविष्कृत यन्त्रों द्वारा अल्प मूल महोदय बनाने वाली क्रियाविदग्धता के समाचार जो हमें इस समय आश्चर्यचकित और अवाक् बना दिया करते हैं वे सब एक-मात्र श्रीमूलक ही हैं । अर्थात् उन लोगों के पास यदि इतना धन न होता साथ ही वे इतने व्यवसायप्रिय, साहसी, उत्साही, आलस्यरहित और क्रिया विदग्ध न होते तो आज दिन विज्ञान बल से वे लोग जिन-जिन आविष्कारों द्वारा अपनी तथा अपने देश की विभव वृद्धि कर रहे हैं उसे कदापि नहीं कर सकते । सारांश देश-काल वर्तमानानुकूल प्रतिष्ठित मार्ग द्वारा जो लक्ष्मी को उपार्जित कर उसकी यथा योग्य रक्षा करता है, उसकी वृद्धि के साथ स्वयं नष्टप्रज्ञ नहीं हो जाता, उसकी वह सदा रक्षा करती आयी है, कर रही है और करेगी भी । लक्ष्मी को पाकर वा उसे पाने के पूर्व ही जो लोग आलस्य, दुर्व्यसन, निरुत्साह, निरुद्यमता, कृतघ्नता आदि के आदी हो जाते हैं उनकी छाया तक का वह स्पर्श नहीं करती, उनके पास जाना तो दूर की बात है ।।

यहाँ लौं जो प्रतिपादन किया गया है उससे यह बात स्पष्टतया जानी जा सकती है कि जो लोग भारत की वर्तमान विपन्नावस्था का दोष लक्ष्मी की विवेक शून्यता और चंचलता के माथे मढ़ते हैं वह सरासर भूलते हैं । लक्ष्मी न चंचल ही है और न विवेकशून्य ही है। वह तो एक जड़ पदार्थ है । उसे प्राप्त कर जो उससे जैसा काम लेता है उसे वह उसी प्रकार काम देती है । सारांश वर्तमान भारतवासियों की यदि यह इच्छा हो कि वह अपने प्राचीन गौरवान्वित देश को विभव विस्तर सम्पन्न बनाने के पुण्य को प्राप्त करें, तो उन्हें उचित है कि वे अपने पूर्वजों की त्रिकाल हितकारक शिक्षा को मानकर अपने देश के लोगों में चरिताभिमान, उत्साह, क्रियाकरण पटुता, व्यवसाय प्रियता, निर्व्यसनता, परिश्रमशीलता और विद्या बुद्धि की मात्रा को निरन्तर और क्रमशः बढ़ाते रहने की चेष्टा में संलग्न रहा करें। इन उपायों की अभिचारिणी उपासना द्वारा निस्सन्देह इस देश के राजा और प्रजा दोनों का अक्षय कल्याण होगा । "तथाहि भवतु।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभ्युदय', 3 जुलाई, 1910

कार्य्य-सिद्धि

आजकल समाचार पत्र स्वरूप जगत में जिधर देखिये, उधर उन्नति-उन्नति की ही चर्चा दीख सुन पड़ती है। कोई कृषि की उन्नति की चर्चा कर रहा है, कोई वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति की बातें कर रहा है, कोई विद्या की उन्नति के लिए आयोजन कर रहा है, कोई धार्मिक उन्नति के मंसूबे बाँध रहा है, कोई सामाजिक उन्नति के लिए ढिंढोरा पीट रहा है, कोई जातीय सुधार के लिए प्रयत्न कर रहा है। तात्पर्य इस प्रकार चारों ओर से उन्नति का गगनमण्डल भेदी निनाद श्रवणगत हो रहा है। निस्संदेह ये सब बातें भावी श्रेय और कल्याण की सूचक हैं। किन्तु संप्रति जिस प्रमाण के साथ इनकी ध्वनि कर्णगत हुआ करती है उसी मात्रा के साथ इनके साधक जनों की कर्ण सफलता के शुभ समाचार श्रवण करने का सौभाग्य नहीं होता। अर्थात् ऐसे बहुभागी उन्नायक वे नेता बहुत ही थोड़े दीख पड़ते हैं जिन्हें अपनी मनोभिलषित पूरी-पूरी उन्नति कर पाने का प्रशंसनीय सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। इसका कारण उनके उद्योग की सदोषता के सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता क्योंकि कवि कहता है कि यत्न वह चीज है कि उससे कार्य की सिद्धि अवश्यमेव होनी ही चाहिए। पर जब उसमे अभिप्रेत सिद्धि प्राप्त न हो, तब कार्यकर्त्ता को समझ लेना चाहिए कि उसके यत्न में कोई दोष रह गया है, उस दोष को ढूँढ़ कर दूर करने से उसका कार्य निःस्संदेह सिद्ध हो जायेगा।[1] कर्मयोग के पक्षपाती श्रीकृष्ण ने गीता में कार्यसिद्धि करने वाली बहुत-सी अकाट्य युक्तियाँ और बातें कही हैं। उनमें से दो एक बातों का उल्लेख हम नीचे करते हैं। भरोसा है कि हमारे पाठकगण उन पर विचार करेंगे।

अर्जुन को कई शास्त्र विहित युक्तियों द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने यह बात भली भाँति समझा दी कि बिना उद्योग, परिश्रम और उपाय अर्थात् योग की

---

1. "यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः" इस पंक्ति में 'अत्र' का अर्थ 'अस्मिन यत्ने' करने से हमारे उक्त निवेदन का चरितार्थ अनायास ही हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधना किये कभी किसी को किसी प्रकार के श्रेय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस बात को जब अर्जुन ने खूब समझ लिया—तब उद्योग किस प्रकार करने से कार्य-सिद्धि हो सकती है—इस अभिप्राय से उपदेश करते हुए श्रीकृष्ण ने उससे नीचे लिखा हुआ मन्त्र कहा—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

अर्थात् किसी कार्य की सिद्धि तभी हो सकती है जब उसका सम्पादन करने वाले योगी अर्थात् कार्यकर्ता लोग उसे अपने शरीर से, मन से, बुद्धि से और ममत्व-रहित इन्द्रियों से स्वार्थत्यागपुरस्सर करते हैं, क्योंकि जो काम स्वार्थत्यागपूर्वक किया जाता है उसी के लिए सर्वसाधारण में उसके कर्ता की प्रशंसा की जाती है। जब कार्यकर्ता की प्रशंसा—सर्वतोभाव बड़ाई—अपने आप होने लगती है तभी वह अपने को आत्मशुद्ध मान सकता है, अन्यथा नहीं। स्वार्थत्याग की गुरुता को समझाने के अभिप्राय से श्रीकृष्ण ने अर्जुन से नीचे लिखा हुआ मन्त्र फिर कहा—

युक्तः कर्म्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

अर्थात्—जो युक्त, योगी वा कार्यकर्ता अपने कार्य के फल का त्याग करके अर्थात् स्वार्थ-त्यागपूर्वक उसे सम्पादन करता है, उसे उस कार्य की सिद्धि द्वारा अभिप्रेत शान्ति प्राप्त होती है। किन्तु जो कार्यकर्ता उस कार्य के फल को स्वयं भोगने की इच्छा से प्रेरित हो चित्त को एकाग्र किये विना उसे करता है उस कार्य से उसे निबद्ध होना पड़ता है। अर्थात् जो कार्यकर्ता अपने स्वार्थ की अभिलाषा से किसी कार्य को सर्वसाधारण की भलाई के मिस से करता है उसका वह कार्य सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत तदर्थ उसकी निन्दा होने लगती है। इस मन्त्र में निन्दा के होने को ही निबद्ध होना कहा गया है।

विद्या की उन्नति, धर्म की उन्नति, जाति की उन्नति, गोरक्षा की उन्नति आदि के बहाने से धन एकत्रित कर जो जोग उसे निज उदरसात् कर लेते हैं, वे इस निबद्धता के जीते जागते उदाहरण कहे जा सकते हैं। ऊपर ग्यारहवें मन्त्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो मनसा वाचा कर्मणा काम करने का उपदेश दिया है उसे सविशेष प्रस्फुरित करने के लिए आपने नीचे लिखा हुआ मन्त्र पुनरपि कहा है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

ऊपर ग्यारहवें मन्त्र में आपने कहा है कि जब तक कोई काम मनसा वाचा कर्मणा स्वार्थत्याग पूर्वक नहीं किया जाता तब तक उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। इस सत्रहवें मन्त्र में आप अर्जुन को यह बताते हैं कि जिस कार्य की मिद्धि करना हो उसमें मन, वचन और शरीर को किस प्रकार लगाने से वह सिद्ध हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस कार्य को करना हो, उसी का उसके कर्ता को निरन्तर ध्यान करते रहना चाहिए, उसीका निरन्तर उसे विचार करते रहना चाहिए, उसीके विषय में उसे सदा अनुकूल उपाय सोचते रहना चाहिए, तात्पर्य उस काम को छोड़ उसे और किसी वस्तु की ओर अपने चित्त को अणुमात्र भी डावाँडोल नहीं होने देना चाहिए। इस उपदेश से श्रीकृष्ण ने यह बात स्पष्टतया व्यक्त कर दी है कि उक्त प्रकार जब किसी काम की सिद्धि के लिए उद्योग किया जाता है तभी उसको सिद्ध करने वाली अन्तरंग तथा बहिरंग समस्त अनुकूल सामग्रियों का उसके कर्ता को पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। वह यहाँ तक कि उस कार्य की सिद्धि के लिए उसके कर्ता को जो उद्योग एक बार करना पड़ता है, उसकी उसे दुबारा आवृत्ति नहीं करनी पड़ती। तात्पर्य उक्त प्रकार अनुष्ठान करने से उस कार्य की सिद्धि में बाधा देने वाले जितने प्रतिकूल कारण अर्थात् कलमष होते हैं उन सबका उसे इतना परिपूर्ण ज्ञान हो जाता है कि फिर वह उनकी प्रतारणा में नहीं आ सकता। कहना नहीं होगा कि जो कर्मयोगी अपने अभिप्रेतार्थ की सिद्धि के बाधक कार्यों से अपनी रक्षा कर सकता है, वही अपने मनोभिलषित कार्य को सिद्ध कर सकता है।

पश्चिमी देशों के जिन कर्मयोगी सज्जनों ने भाप बिजली की अद्भुत शक्ति का पता लगाकर उनकी शक्तियों से काम लेने योग्य विविध प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया है उनकी जीवनचर्या पर टुक विचारने से भगवान श्रीकृष्ण के उक्त उपदेशों की सत्यता अक्षर-अक्षर प्रतीत होने लगती है। सारांश, भारत के जिन सज्जनों के चित्त में किसी प्रकार की उन्नति करने की लालसा उत्पन्न हुई हो, उन्हें उचित है कि वे तदर्थ संसारतत्वपारीण श्रीकृष्ण के कहे हुए उक्त मार्ग का अनुकरण करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 27 अगस्त तथा 3 सितम्बर, 1910

शील-सामर्थ्य

[1]

"शीलेनहि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशय ।"

इधर कई वर्षों से संस्कृत के ग्रन्थों के पठन पाठन की परिपाटी उठ जाने के कारण हम लोगों को यही नहीं मालूम है कि उन ग्रन्थों में कैसे-कैसे उत्तमोत्तम उपदेशरत्न भरे पड़े हैं। जिस समय इस देश के विद्वान देशोन्नति की चर्चा में संलग्न थे, उस समय उन लोगों ने स्वात्मानुभव से मनुष्य का उत्कर्ष करने वाली जो जो तत्वमूल बातें जानी थीं उनका बड़ा भारी समुदाय महाभारत नाम ग्रन्थ में संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ के इन्हीं अमूल्य गुणों पर मोहित होकर यूरोप के कई विद्या-तत्वपारीण सज्जन लोग इस ग्रन्थ का एक परमोत्तम संस्करण तैयार करने का आजकल उद्योग कर रहे हैं। ईश्वर उन लोगों की चित्तोस्थित लालसा को परिपूर्ण करे। और उनके प्रसाद से इस देश के विद्याव्यसन-प्रिय लोगों का भी कल्याण हो, यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है।

उक्त महाभारत के शान्तिपर्व नामक भाग के 124 वें अध्याय में भीष्म पितामह ने शील और उसकी शक्ति के विषय में जो कुछ धर्मराज से कहा है, उसी को आगे हम अपने पाठकों के विचारार्थ लिखते हैं। भरोसा है कि हमारे विज्ञ पाठकगण भीष्म पितामह के उपदेश पर मनोनिवेशपूर्वक विचार करने का अनुग्रह करेंगे।

महात्मा धर्मराज युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर उन्नति के तत्वों को पूर्णतया जानने वाले संसारतत्व पारदर्शी, शरशय्या पर पड़े हुए ज्ञानवृद्ध भीष्मजी ने शील की व्याख्या उन्हें निम्नलिखित प्रकार से बतलायी—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानञ्च शीलमेतत् प्रशस्यते।। 65।।
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्मपौरुषम्।
अपचपतेवायेन न तत्कुर्य्यात्कथंचन।। 66।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाध्यते संसदि ।
शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरु सत्तम ।। 67 ।।

भावार्थ—जिस कर्म द्वारा मन से, वाणी से, वा क्रिया से प्राणिमात्र का अहित नहीं होता, जिस कर्म से प्राणिमात्र को सहायता पहुँचायी जा सकती है, उस कर्म को शील कहते हैं। जो कर्म वा पुरुषार्थ अन्य लोगों के लिए, उसी प्रकार निज के लिए भी हितकर न हो, साथ ही जो लज्जादायक हो, उसे कभी नहीं करना चाहिए। मनुष्य को उचित है कि वह उसी कर्म को उस प्रकार से करे जिस प्रकार से चार सज्जनों में उसकी तदर्थ प्रशंसा हो। कुरुश्रेष्ठ धर्मराज, हमने संक्षेप में तुम्हें यह शील की व्याख्या बतला दी।

शील की उक्त व्याख्या सुनकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से यह जिज्ञासा की कि उक्त लक्षणवाला शील पुस्तकों में वा उपदेश वाक्यों में ही पाया जाता है वा वह कृति में भी पाया जाता है ? यदि वह कृति में भी पाया जा सकता है तो जिस कृति में वह पाया गया हो उसका वर्णन आप मुझे सुनाने की दया कीजिये। धर्मराज की शील जिज्ञासा विषयक उत्कंठा को जानकर भीष्मजी ने उनसे कहा कि प्राचीन समय में शीलार्जनस्पृहालु इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से शील की प्रशंसा सुन जिस प्रकार परमशीलवान दैत्येन्द्र प्रह्लाद से उसे प्राप्त किया था। वह कथा प्रसंग हम तुम्हें सुनाते हैं, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

बृहस्पति ने महाभाग इन्द्र से कहा कि तुमको शील की यदि अधिक महिमा जानने की इच्छा हो तो उसे तुम शुक्रजी के पास जाकर पूरी कर सकते हो। गुरु की आज्ञा मानकर इन्द्र शुक्र के पास गये। और उनसे शील विषयक अधिक ज्ञान प्राप्त किया। किन्तु उनसे भी इन्द्र ने पूछा कि शील के विषय में जो कुछ मैंने आपसे जाना है उससे भी अधिक जानने वाला यदि और कोई शीलव्रती आपको ज्ञात हो तो उसका नाम धाम बताने की कृपा कीजिये। इन्द्र के प्रश्न के उत्तर में शुक्र ने कहा कि प्रह्लाद जी शील के बड़े भारी भक्त हैं। उनके पास जाकर तुम सुखपूर्वक अपने मन की तुष्टि कर सकते हो।

शुक्रजी की बात सुन इन्द्र ने ब्राह्मण वेश धारण किया और प्रह्लाद के पास जाकर उन पर अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। प्रथम तो प्रह्लाद ने ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र से कहा कि काम-काज की झंझट के भोर मुझे तुझसे बातचीत करने का अवकाश नहीं है। पर ब्राह्मण ने कहा कि आपको अवकाश मिले तभी मुझे आने की आज्ञा दीजिये तो मैं आपकी सेवा में आ उपस्थित होऊँगा। ब्राह्मण की शीलार्ज्जन स्पृहा को सुदृढ़ देख प्रह्लाद ने उसे तदर्थ समय निर्दिष्ट कर दिया। ठीक उसी समय प्रह्लाद के पास पहुँचकर ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने गुरुवृत्ति प्रदर्शन पूर्वक उनसे पूछा कि जिन उपायों द्वारा आपने इतनी बड़ी उन्नति प्राप्त की है उन्हें आप मुझ पर प्रकाशित करने का अनुग्रह कीजिये। इन्द्र की उत्सुकता देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद ने आत्मोन्नति कारक उपायों का जो वर्णन किया था, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

प्रह्लाद ने कहा—

(1) मैं अपने को बड़ा समझकर अभिमान की बात कभी नहीं बोलता।

(2) धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्रादि के जानने वाले विद्वान् पण्डितों के साथ मैं वार्तालाप किया करता हूँ, उन्हें दान-मानादि से नित्य संतुष्ट रखा करता हूँ।

(3) उक्त प्रकार मुझसे सादर धन पाकर विद्वान् मुझे शास्त्रविहित हितकर उपदेश सुनाया करते हैं, उन्हें सुनकर तदनुसार मैं वर्त्ताव किया करता हूँ।

(4) मुझे शास्त्रानुमोदित कार्यकर्त्ता, गुरुभक्त, कभी किसी की निन्दा न करने वाला, कभी किसी के गुणों को दूषित न करनेवाला, ज्ञानप्राप्ति के लिए निरन्तर लोलुप बना रहनेवाला देखकर उक्त विद्वान् ब्राह्मण लोग मेरे चित्त को मधुमक्षिकाओं की नाईं शास्त्रवचनामृत से सदा सींचते रहा करते हैं।

(5) तात्पर्य, मेरे वर्तमान उत्कर्ष और अभ्युदय का एकमात्र कारण विद्या और विद्वानों की उपासना है।

उन्नति के उक्त तत्वों को सुनाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद ने उक्त ब्राह्मण से कहा कि मैं तेरी गुरुभक्ति को देखकर तुझसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अतः मैं तुझे वर प्रदान करना चाहता हूँ। तू मनमाना वर माँग! ब्राह्मण ने अपने गुरु प्रह्लाद को निज पर प्रसन्न जान प्रार्थना की कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देने की दया करना चाहते हैं तो मुझे अपना शील दे दीजिये। ब्राह्मण की वर याचना सुन प्रहलाद ने मन में बहुत विस्मय किया, किन्तु उसे वर दे दिया।

[2]

(1) प्रह्लाद ने देखा कि शील स्वरूप तेज मेरे शरीर से निकला जा रहा है। उससे प्रह्लाद ने जब पूछा कि तुम कौन हो तब उसने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारा शील हूँ। तुम्हारी आज्ञा के अनुसार तुम्हारे शरीर को छोड़कर जिस ब्राह्मण को तुमने मुझे दे डाला है उनके शरीर में निवास करने के लिए जाता हूँ। इतना कहकर वह तेज अन्तर्हित हो गया।

(2) उसके अन्तर्धान होते ही प्रह्लाद ने देखा कि एक और तेज मेरे शरीर का परित्याग कर रहा है। उससे जब उसने पूछा कि भाई तू कौन है? तब उसने कहा कि मैं तेरा धर्म अर्थात् कर्तव्य कर्म्म हूं। तुझे छोड़कर जहाँ तेरा शील गया है वहीं मैं भी जाता हूँ। क्योंकि शील से अलग होकर मैं क्षण भर भी कहीं नहीं रह सकता। इतना कहकर वह लुप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) उसके लुप्त हो जाने पर प्रह्लाद ने उसी प्रकार एक और तेज को पुनः अपने शरीर से भिन्न हो जाते देखकर उससे पूछा कि तू कौन है ? उसने कहा कि मैं सत्य हूँ। तेरे शरीर को छोड़कर जहाँ तेरा धर्म गया है, वहीं मैं भी जाऊँगा क्योंकि धर्म बिना मैं अकेला नहीं रह सकता। ऐसा कहकर वह लुप्त हो गया।

(4) उसके लुप्त हो जाने पर प्रह्लाद ने और एक तेज को अपने शरीर से अलग होते देखकर उससे पूछा कि तू कौन है ? उसने कहा कि मैं व्रत अर्थात् प्रतिज्ञा हूँ। जहाँ तेरा सत्य गया है वहीं मैं भी जाऊँगा। ऐसा कहकर वह भी चला गया।

(5) उसके चले जाने पर प्रह्लाद के शरीर से एक बड़ा भारी शब्द प्रकट हुआ। उससे जब उसने पूछा कि तू कौन है ? तब उसने उत्तर दिया कि मैं तेरा पराक्रम हूँ। जहाँ तेरा व्रत गया है वहीं मैं भी जाता हूँ। क्योंकि बिना व्रत के मैं स्थित नहीं रह सकता। इतना कहकर वह भी चला गया।

(6) उसके चले जाने के अनन्तर प्रह्लाद के शरीर से एक प्रकाश रूप देवी निकलकर चली जाने लगी। पूछने पर उसने कहा कि मैं लक्ष्मी हूँ। जहाँ तेरा पराक्रम गया है वहीं मैं भी जाती हूँ क्योंकि बिना पराक्रम के मेरी स्थिति नहीं हो सकती। इतना ही कहकर वह चुप नहीं हो रही किन्तु उसने और कहा कि हे महाप्राज्ञ !

धर्मः सत्यं तथा व्रतं बलं चैव तथाप्यहम्।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नारुपच संशयः ।। 61 ।।

(इस बात में तू अणुमात्र भी शंका मत मान कि शील को छोड़कर न धर्म ही रह सकता है, न व्रत ही रह सकता है, न पराक्रम ही रह सकता है और न स्वयं मैं ही रह सकती हूँ। तात्पर्य यह कि हम सब एकमात्र शील के अधीन हैं।)

इस इतिहास को सुनाकर भीष्म पितामह ने धर्मराज से एक बड़े महत्त्व की बात कही। इस बात को भूल जाने के कारण ही हम भारतवासी, अपने घर कल्प-वृक्ष के होने पर भी आज दिन तादृश्य लाभ नहीं उठा रहे हैं। उस गम्भीर महत्त्व की बात पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे लिखी जाती है—

एतत्कुरुत्वं कौन्तेय, ततः प्राप्स्यसि तत्फलम्।

अर्थात् हे युधिष्ठिर उक्त इतिहास में जो जो बातें हमने तुमसे कही हैं, तदनु-रूप तुम आचरण करो, तभी तुमको इस इतिहास के जानने का लाभ होगा।

भीष्म पितामह के उक्त पीयूष-य उपदेश से भारतवासी सज्जनों को यह शिक्षा लेनी चाहिए कि आज दिन हम लोगों में जो यह भावना फैल गयी है कि धार्मिक ग्रन्थों का केवल पाठ वा श्रवण करने से हमारा कल्याण हो सकता है वह भ्रममूलक है। भारत और भारतवासियों की भलाई तभी होगी जब इस देश के लोग अपने धार्मिक ग्रन्थों को बड़े चाव से पढ़ेंगे और उनमें लिखे हुए उपदेशों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार अपने चरित को संगठित करेंगे।

उक्त इतिहास के अन्त में भीष्मजी ने युधिष्ठिर से बड़े मार्के की एक बात और कही है। उसे हम अपने पाठकों के बोधार्थ नीचे लिखकर इस लेख को समाप्त करेंगे—

यद्यप्यशीला नृपते प्राप्नुवन्ति श्रियं क्वचित्।
न भुञ्जते चिरं तात समूलाश्च न सन्ति ताः॥

इसका भावार्थ यह है कि हे युधिष्ठिर, यद्यपि कहीं-कहीं ऐसा भी यह देखा जाता है कि शीलहीन जन भी सम्पत्ति के स्वामी हो जाते हैं किन्तु साथ ही यह भी देखा जाता है कि शीलहीन लोगों की सम्पत्ति निर्मूल होने के कारण वे लोग बहुत काल पर्यन्त उसका उपभोग नहीं कर सकते।

वस्त्वर्थ को पूर्णतया जानने वाले भीष्मजी की उक्त उक्ति पर जो विचार करेंगे, उन्हें विश्वास हो जायगा कि बिना शीलवान् और चरित्रवान् हुए कोई व्यक्ति आत्मोन्नति नहीं कर सकता। अतः उत्कर्षप्रिय लोगों को उचित है कि वे अपने को सर्वप्रथम सुशील और सच्चरित्र बनावें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारत मित्र', 30 अप्रैल 1910

दरिद्रता

"सर्वं शून्यं दरिद्रता।"

आबाल वृद्ध सभी इस बात को जानते हैं कि दरिद्रता बहुत बुरी चीज होती है। इस पापिन के फन्दे में जो अभागा फँस जाता है उसकी यह 'वज्रादपि' कठोर हृदया इतनी दुर्दशा करती है कि उसका स्मरण मात्र होने से रोमांच हो आता है। हमारे देश के कवियों ने इसके रूप की भयंकरता और इसकी करनी की कठोरता का यथातथ्य वर्णन स्थान-स्थान पर कर रखा है। यथा—

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह सखे दारिद्र्य भारं मम
श्रान्तस्तावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तं धनवर्जितस्य वचनं श्रुत्वा स्मशाने शवः
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः॥

इस पद्य का भावार्थ यह है कि दरिद्रता के बोझ से अत्यन्त व्याकुल हुए एक मनुष्य ने किसी स्थान पर एक मुर्दे को देखा। उसे निश्चेष्ट और शान्त देख इस दरिद्र के जी में यह लालसा उत्पन्न हुई कि इस शव की शान्ति का थोड़ी देर के लिए मुझे सुख मिल जाता तो अच्छा होता। इस विचार को चित्त में स्थिर कर उस दरिद्र पुरुष ने उस शव से थोड़ी देर के लिए अपनी शान्तता प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। कवि कहता है दरिद्र जन की करुणाप्लावित विनय को सुन उस शव को उसकी प्रार्थना स्वीकार करने की दया आ गयी। पर साथ ही उसे इस बात का भी स्मरण हो आया कि दरिद्रता के दुख से मरण का दुख कहीं बढ़ के असह्य होता है। इस बात का स्मरण होते ही उस मुर्दे ने चुप्पी साध ली। तात्पर्य इस कथानक द्वारा कवि ने इस बात को लखा दिया है कि इस संसार में निर्धन रहने की अपेक्षा मर जाना कहीं सुखदायक है। क्योंकि दरिद्र को न ऐहिक सुख ही मिल सकता है और न पारमार्थिक ही।

दरिद्रता मनुष्य को जिस क्रम से धीरे धीरे मटियामेट कर डालती है उसका एक षट्प्रज्ञ कवि ने बहुत ही सम्यक् वर्णन किया है। वह वर्णन नीचे दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारिद्रयाद्धियमेति ही परिगतः सत्त्वात्परि श्रश्यते
निःसत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेद मापद्यते।
निर्विण्णः शुचिमेतिशोक निहतो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्य हो निधनता सवर्णा पदा मास्पदम् ।।

अर्थात्—दरिद्रता जिसको अपना शिकार बनाती है उसे आदि में वह पद-पद पर लज्जित किया करती है। इस प्रकार निर्धन जन लज्जित होते-होते कुछ काल में बलहीन हो जाता है। सामर्थ्यहीन हो जाने से जब उससे कुछ करते-धरते नहीं बनता तब वह सदा खिन्न रहा करता है। निरन्तर उदास रहने वाले मनुष्य को शोक सदा अपना शिकार बनाये रहता है। जो सब काल शोक सागर में डूबा रहता है, बुद्धि उसका साथ छोड़ देती है। बुद्धिहीन का सर्वनाश होने में देर नहीं लगती। सारांश, मनुष्य के सर्वनाश का एकमात्र कारण दरिद्रता है। जिन लोगों के पिता पितामह धनाढ्यता के कारण कुलीन और पूज्य माने जाते थे, उनकी निर्धन सन्तति आज दिन जिस विपन्न अवस्था में पायी जाती है, उस पर तात्त्विक रीति पर विचार करने पर उक्त पद्यस्थ क्रम की सत्यता अक्षर अक्षर सही और सटीक बोध होती है।

अब आगे थोड़े से दरिद्रता को उत्पन्न करने वाले कारणों का वर्णन किया जाता है। भरोसा है कि हमारे विज्ञ पाठकगण उन कारणों को जानते ही होंगे। हमारे स्मरण दिलाने पर आप लोग उन कारणों की चर्चा को सर्वसाधारण में और विशेषकर ग्रामीण लोगों में अधिकता के साथ प्रचारित करेंगे।

दरिद्रता का दूसरा नाम लक्ष्मी की अवकृपा है। लक्ष्मी जिस मनुष्य को व्यवसायहीन, आलसी, दैवभक्त, साहसरहित, दीर्घसूत्री, दुर्व्यसनी, कृतघ्न और क्रियाविदग्धता शून्य पाती है, उससे रुष्ट होकर उसे वह दरिद्रता के अधीन कर दिया करती है। इस समय भारत में इन्हीं की अधिकता पायी जाती है। यही कारण है कि इस समय भारत पर लक्ष्मी की अवकृपा है। ये कारण ज्यों-ज्यों दूर हटाये जायेंगे त्यों-त्यों लक्ष्मी की अवकृपा वा दरिद्रता के डेरे डण्डे यहाँ से उठते जायेंगे।

विद्वान् लोग व्यवसाय को तीन भागों में विभक्त करते हैं—यथा कृषि, वाणिज्य और शिल्प। जिस देश के लोग इन तीनों विभागों के भिन्न-भिन्न उद्यम-धन्धों को विज्ञान और रसायन की सहायता से उन्नत करते हैं उस देश में धन की मनमानी समृद्धि होती है। साथ ही उस देश से दरिद्रता दूर भाग जाती है। जिस समय भारत के लोग व्यवसाय की महिमा को जानते थे और उसकी पूरी-पूरी आराधना और भक्ति करते थे, उस समय उन लोगों को यह विश्वास हो गया था कि इस समूचे विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो व्यवसायी मनुष्य को प्राप्त नहीं हो सकती। तात्पर्य, उस समय के लोगों की जिह्वा के अग्र भाग पर 'किं दूरं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवसायिनाम्' 'न किमपि' यही वाक्य निरन्तर नरीनृत्य किया करते थे। वास्तव में व्यवसाय ऐसी ही वस्तु है। हमारे पाश्चात्य बन्धुओं ने अपनी व्यवसाय प्रवणता द्वारा उक्त वाक्य की सत्यता को अक्षर-अक्षर सिद्ध कर दिखला दिया है। इस देश का मंगल चाहने वाले भारतवासियों को उचित है कि वे लोग अपने देश के लोगों में व्यवसाय की मात्रा को बढ़ावें। भारत के वर्तमान प्रभु अंग्रेजों ने भारतवासियों की मंगल कामना से प्रेरित होकर कृषि विद्यालय, और आपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी ऐक्ट आदि व्यवस्थाओं की योजना की है। अब यह यहां के धनी, मानी और विद्वानों का धर्म है कि वे लोग वैसी व्यवस्थाओं के साथ सहानुभूति प्रकट कर देश में व्यवसाय के प्रेम की मात्रा को बढ़ावें।

मनुष्य गणना के विवरण और सरकारी रिपोर्टों से समाचारपत्रों के पाठकों को प्रायः यह बात मालूम हो चुकी है कि भारतवासियों का बड़ा भारी समुदाय एकमात्र कृषि पर अवलम्बित है। साथ ही लोगों को यह भी ज्ञात है कि प्रत्यह खेती करने वाले लोगों के बड़े भारी समूह की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। इस अर्थकृच्छ्ता के कारण कृषकों को जिन-जिन कठिनाइयों को झेलना पड़ता है उनमें से प्रधान-प्रधान ये हैं—

(1) खेत तैयार करने के लिए पूरे पूरे बैल नहीं मिल सकते।
(2) यथासमय बोने के लिए पुष्ट और नीरोग बीज नहीं मिल सकता।
(3) खेतों की उपज ऋण के मारे उनके हाथ तक नहीं पहुँचने पाती।
(4) सिंचाई और खाद का प्रयोग वे लोग नहीं कर सकते।
(5) उन लोगों को खाने के लिये पेट भर अन्न नहीं मिलता।
(6) किसानों को आय व्यय का ज्ञान नहीं रहता। इत्यादि इत्यादि।

हमारी वर्तमान कृपालु सरकार ने बहुत से रक्षक कानून बनाकर किसानों की रक्षा का प्रबन्ध यद्यपि बहुत कुछ किया है तथापि देश के धनी लोगों की उनके साथ यथातथ्य सहानुभूति न होने के कारण किसानों की पूरी-पूरी रक्षा नहीं हो सकती। जब तक किसानों की पूरी-पूरी रक्षा नहीं होगी तब तक देश में कृषि-जन्य सम्पत्ति कभी नहीं बढ़ेगी। अतः देश हित चिन्तक विद्वान् धनिकों को उचित है कि वे लोग अपने धन और अपनी विद्वत्ता द्वारा किसानों में कृषि को उन्नत करने वाली विद्या का प्रचार करें। कृषि की उन्नति के साथ वाणिज्य और शिल्प की उन्नति के लिए भी स्थान-स्थान पर यथोचित प्रबन्ध किये जाने चाहिए। विज्ञान और रसायन की सहायता से जब कृषि, वाणिज्य और शिल्प की यथोचित उन्नति की जायेगी तभी दरिद्रता इस देश का पिण्ड छोड़ेगी, अन्यथा वह यहाँ से अपना मुँह काला करने को कभी राजी नहीं होगी।

ईश्वर इस देश के वर्तमान वणिक समाज को वाणिज्य तत्त्व समझने की शक्ति और सामर्थ दे, उसी प्रकार वह यहाँ के लोगों में उत्साह, साहस, कृतज्ञता, कार्यसाधनपटुता, व्यसन विमुखता और चरित्राभिमान की मात्रा को उत्तरोत्तर बढ़ाता जाय यही उससे इस जन की आन्तरिक प्रार्थना है। इन गुणों की वृद्धि से इस देश की दरिद्रता अवश्यमेव दूर हो जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 10 तथा 17 सितम्बर 1910

सफलता

[1]

आगरे से प्रति मास प्रकाशित होने वाले 'स्वदेश बान्धव' नामक सुप्रसिद्ध मासिक पत्र को हिन्दी के श्रद्धालु पाठक मात्र जानते हैं। इस पत्र के सम्पादक श्रीयुत कुंवर हनुमन्तसिंह जी अपने पत्र की प्रत्येक संख्या में शिक्षाप्रद, हितसाधक तथा भावपूर्ण लेख देने में बड़े सिद्धहस्त हैं। आपके पत्र के लेखों में एक यह विशेषता 'नैरन्तर्येन' रहा करती है कि वह आबाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के लिए एक से मंगलकारक हुआ करते हैं। साथ ही उनकी भाषा-शैली और शब्द रचना सरल और सुवाच्य रहा करती है।

अपने पत्र की अगस्त वाली संख्या में उक्त ठाकुर साहब ने एक अंग्रेजी निबन्ध के अनुवाद स्वरूप में 'सफलता का रहस्य' नामक अग्रलेख लिखा है। इस लेख में एक स्थान पर आपने लिखा है कि "विलायत में राथ्सचा इल्ड नाम का एक कुटुम्ब है, वह बराबर 150 वर्ष से धनाढ्य चला आता है। उस कुटुम्ब की सदैव उन्नति होती आती है। उस कुटुम्ब की हैसियत अब बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और पोप के बराबर पहुच चुकी है। राथ्सचा इल्ड के कुटुम्ब के एक वृद्ध ने निम्नलिखित नियमावली बनायी थी—-

(1) अपने व्यापार की प्रत्येक बात को सावधानी से देखो।
(2) प्रत्येक काम के करने के लिए तैयार रहो।
(3) विचार के लिये समय लो, किन्तु निश्चयात्मक निर्णय करो।
(4) आगे बढ़ने का साहस करो।
(5) दुःखों को धैर्य से सहन करो।
(6) अपनी सत्य व्यावहारिकता की पवित्र वस्तु के समान रक्षा करो।
(7) व्यापार में झूठ न बोलो।
(8) अपने ऋण को तत्काल ही चुका दो।
(9) व्यर्थ किसी मनुष्य से जान-पहचान न करो।
(10) अपनी हैसियत से अधिक अपने को कभी न दिखाओ।
(11) मद्यपान से घृणा करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(12) अपने समय का सदुपयोग करो।
(13) कभी भी हिम्मत न हारो।
(14) 'दैव योग से ऐसा हो जावे' इसके भरोसे न रहो।
(15) प्रत्येक पुरुष से नम्रता का व्यवहार करो।

इन पन्द्रह बातों के विषय में भारत के ज्ञानवृद्ध लोगों ने शतशः या सहस्रशः वर्ष पहले आत्मानुभव से जो-जो बातें यहाँ के ग्रन्थों में यत्र-तत्र लिख दी थीं, उनमें से थोड़ी बातों का आगे उल्लेख कर हम अपने पाठकों के चित्तों को इस सिद्धान्त की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि उन्नति एवं उत्कर्ष के मूल तत्व सब समय और सब देशों में प्रायः एक से ही पाये जाया करते हैं। जो लोग उनको समझ बूझकर उनके अनुसार कार्य करते हैं वे यथार्थ सुख का अनुभव कर सकते हैं, किन्तु जो लोग उन बातों का व्यवहार केवल कथनोपकथन में ही किया करते हैं उन्हें उनसे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

(1) दीर्घदर्शी सदाच स्यात् प्रत्युत्पन्नमतिः क्वचित्।
साहसी सालसी चैव चिरकारी भवेन्नहि ॥

—शुक्राचार्य

भावार्थ—अपने प्रत्येक काम के अंग प्रत्यंग के फलाफल को उसे आरम्भ करने के पूर्व ही सदा जान लेना चाहिए और कभी-कभी उनके प्रारम्भ के साथ ही साथ उनके फलाफल को जान लेना चाहिए। तात्पर्य अपने प्रत्येक काम को पूर्ण सावधानी के साथ करना चाहिए।

(2) यतते नैव कालेऽपि क्रियां कर्त्तुं च सालस ।
न सिद्धिस्तस्य कुत्रापि स नश्यति च सान्वयः ॥

—शुक्राचार्य

भावार्थ—जो आलस के मारे अपना कर्त्तव्य कर्म करने के लिए प्रस्तुत नहीं रहा करता उसे कभी सफलता प्राप्त नहीं होती। इतना ही नहीं, किन्तु आलसी मनुष्य अपनी अकर्मण्यता के कारण अपने आपको नष्ट करके अपने समूचे कुल को नष्ट कर डालता है। तात्पर्य मनुष्य को सदा उद्योगी और परिश्रमी बने रहना चाहिए। इसी बात को उद्योगैकपाक्षिक भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है—

क्षिप्रंहि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्म्मजा।

अर्थात् इस संसार में उद्योग करने वाले मनुष्य को सफलता बहुत शीघ्र प्राप्त होती है।

सुखं च न बिना धर्मात्तस्मातम धर्म्मपरो भवेत्।
त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं चाविरोधयन् ॥

भावार्थ—अपने धम अर्थात् कर्त्तव्य कर्म का सम्पादन किये बिना इस संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में किसी को सुख नहीं मिल सकता, अतः सुखार्थी को स्वकर्त्तव्यशील ही बने रहना उचित है। जिस कार्य द्वारा धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति नहीं हो सकती हो, उसे विद्वान् कभी न करे। इसी बात को मुनिवर वाल्मीकिजी ने इस प्रकार कहा है—

यत्कृत्वा न भवेत् धर्म्मो कीर्तनंच यशोध्रुवम्।
शरीरस्य भवेद् खेदः कस्तत्कर्म्म समाचरेत्॥

अर्थात् जिस काम को करने से न कर्तव्य कर्म्म का पालन ही हो सकता है न कीर्ति मिल सकती है और न यश ही मिल सकता है साथ ही शरीर को खेद होता है उसे कौन करना चाहेगा ? तात्पर्य्य ऐसे काम को कोई नहीं करना चाहेगा।

[2]

(3) उचितमनुचितं वा कुर्व्वता कार्यजालं, परिणतिरवधार्य्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्म्मण मा विपत्तेर्भवति हृदयदाही शस्यतुल्यो विपाकः॥
(सुभाषित)

भावार्थ—किसी काम को करने के पूर्व ही पण्डित को उचित है कि वह उसकी भलाई-बुराई को सोच लेवे। क्योंकि जल्दी में किये हुए काम का परिणाम बहुत बुरा हुआ करता है। ऐसे बुरे काम का परिणाम हृदय को सदा जलाता रहता है।

(4) उद्योगं पुरुषलक्षणम्।

भावार्थ—मनुष्य को सदा उद्योगी बना रहना चाहिए क्योंकि उद्योग से उत्कर्ष होता है।

(5) न विषादे मनःकार्य विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हंति पुरुषं बलं क्रुद्धा इवोरगाः॥
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा सत्यहीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति॥ —रामायण

भावार्थ—मनुष्य को दुःख के बोझ से दब नहीं जाना चाहिए, क्योंकि दुःख का भार बहुत बुरा होता है। जैसे बालक को कोपयुक्त सर्प नष्ट कर डालता है वैसे ही दुःख मनुष्य को नष्ट कर डालता है।

पुरुषार्थ प्रदर्शित करने के समय जो दुःख को लेकर रोने बैठता है, उसका तेज हीन हो जाता है, साथ ही उससे कुछ करते धरते नहीं बनता। अतः

विपदि धैर्यम्। —भर्तृहरि

दुःख को धीरज के साथ सहना चाहिए।

(6) नास्ति सत्यात्परो धर्म्मो नानृतात्पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यं धर्म्मस्य तस्मात्सत्यं न लोपयेत्॥ —शान्तिपर्व

भावार्थ—इस लोक में सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। ठीक उसी प्रकार झूठ से बढ़कर अन्य पाप नहीं है। तात्पर्य, सत्य के बिना धर्म ठहर ही नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सत्य का लोप कभी नहीं करना चाहिए !

(7) (क) सत्यपूतां वदेद् वाणीम् ।
(ख) वचो भूषा सत्यम् ।
(ग) सत्यं कण्ठस्य भूषणम् ।
(घ) सत्यमेव जयते ।
(ङ) सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः ।

अर्थात् (क) सत्य से पवित्र की हुई वाणी का प्रयोग करना उचित है। (ख) वाणी का भूषण सत्य ही है। (ग) कण्ठ का भूषण सत्य है। (घ) अकेले सत्य की ही जय हुआ करती है। (ङ) सत्य और परिश्रम से मनुष्य के सब अर्थ सफल होते है। तात्पर्य मनुष्य को एक व्यवसाय में ही नहीं, किन्तु सदा सत्यपरायण रहना चाहिए।

(8) ऋण शेषं रोगशेषं शत्रुशेषं न रक्षयेत् ।—शुक्राचार्य

भावार्थ—रिपु ऋण रंच न राखिये काऊ।—तुलसीदास

(9) कार्यं विनान्यगेहेषु नाज्ञातः प्रविशेदपि ।—शुक्राचार्य

भावार्थ—बिना काम और आशा के कभी किसी के घर नहीं जाना चाहिए।

(10) नहिं प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितयां सत्यवादिनः ।
लक्षणं हिमतत्वस्य प्रतिज्ञा परिपालनम् ॥—वाल्मीकिः ।

भावार्थ—सत्यवादी पुरुष अपने कहे को झूठ नहीं होने देता। बड़प्पन की महिमा इसीमें है कि जो कहा जाय सो किया जाय। अर्थात् जो सच न हो वह न कहा जाय और न किया जाय।

(11) (क) मद्यपस्य कुतः सत्यम् ।—सुभाषित
(ख) मदमूढ़बुद्धिषु विवेकितः कुतः । —शिशुपाल वध

अर्थात् (क) मद्य पीनेवाला सत्य का व्रती नहीं हो सकता
(ख) जिनकी बुद्धि मद्य से लुप्त हो जाती है उनमें सारासार विचार नहीं रह सकता है।

सारांश—मद्य से दूर ही रहना चाहिए।

(12) श्वः कार्यमद्य कुर्व्वीत, पूर्वाह्ने चापराणिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः मृतमस्य नवा कृतम् ॥
युवैव धर्मशीलस्या दानित्यं खलु जीवितम् ।
कृते धर्मे भवेत् कीर्त्तिरिह प्रेत्यच वै सुखम् ॥ —शान्तिपर्व ।

भावार्थ-- कल के काम को आज करना चाहिए और दुपहर के बाद के लिए रखे हुए काम को प्रातःकाल ही कर डालना चाहिये क्योंकि मरण इस बात का संकोच नहीं करता कि यह मनुष्यकृत कृत्य हुआ या नहीं। जबकि जीवन अनित्य है तब मनुष्य को तरुण अवस्था में ही अपने कर्तव्य कर्म कर डालने चाहिए। वैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में सुख मिलता है। तात्पर्य, समय को व्यर्थ कभी नहीं जाने देना चाहिए।

काल करन्ता आज कर, आज करन्ता अब्ब।
पल में परलय होत है, फेरि करोगे कब्ब॥

(13) उत्साही बलवानार्य, नास्त्युत्साहत्परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥—रामायण

अर्थात्—उत्साह बड़ा बलवान है। उत्साह से बढ़कर अन्य बली नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए इस संसार में कोई चीज दुर्लभ नहीं है।

(14) असंशयं दैवपरः क्षिप्रमेव विनश्यति।—शान्तिपर्व

अर्थात्—देव को प्रधान मानने वाला बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है। अतः "दैवं निहत्य कुरु पौरुषमातमशक्त्या।"

भावार्थ—दैव को प्रधानता न देकर यथाशक्ति पुरुषार्थ करो।

कादर मन कहँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥—तुलसीदास

(15) पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणा मृदुः।—शुक्राचार्य

अर्थात्—सब लोगों से प्रथम अपने होकर बातचीत करनी चाहिए। सबके साथ प्रसन्नतापूर्वक सुशीलता तथा करुणापूरित मृदुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अभिप्राय यह है कि सबसे नम्र होकर रहना चाहिए।

यहाँ तक जितनी बातें लिखी गयी हैं उन सबके निचोड़ को दूरदर्शी मुनिवर वाल्मीकिजी ने नीचे लिखे हुए पद्य में एकत्रित कर दिया है।

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च, भूतानुकम्पा प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवाऽतिथिपूजनं च पंथानमाहुस्त्रिदिवस्य संतः॥
—अयोध्याकांड, सर्ग 109, पद्य 31

भावार्थ—सज्जनों ने सुख और शान्तिप्रद स्थान के निम्नलिखित मार्ग कहे हैं अर्थात् जिसे सुख और शान्तिमय स्थान में जाकर रहना अभीष्ट हो वह सत्य-स्वरूप, स्वकर्त्तव्य कर्मस्वरूप, पराक्रमस्वरूप, प्राणिमात्र के साथ सहानुभूति-स्वरूप, प्रियभाषण स्वरूप, योग्य सज्जनों के साथ उचित आदरातिथ्य स्वरूप मार्गों का अनुसरण कर अपने अभिप्रेत स्थान को सुखपूर्वक जा सकता है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे मुनि वाल्मीकिजी के उक्त पद्य में कही हुई बातों को विचार कर यथासमय और यथाशक्ति उनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करें।

कुंवर हनुमन्तसिंहजी ने अपने उक्त लेख में एक स्थान पर लिखा है—"राथ्स चाइल्ड के कुटुम्ब के समान दुनिया में दूसरा कुटुम्ब नहीं दीख पड़ता। न जाने उनके शरीर में कैसे अच्छे-अच्छे गुण समा गये हैं। उनमें से कभी किसी को जुआ खेलते या शराब पीते या किसी नायिका के प्रेमपाश में आबद्ध होते नहीं देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। न वे सट्टे का व्यापार करते हैं। इसके विपरीत उनकी ईमानदारी कहावत आ गयी है। उनकी रहन-सहन उदाहरण स्वरूप बन गयी है।" पाठक पहले आप लोग पढ़ चुके हैं कि राथ्सचाइल्ड के कुटुम्ब पर भगवती लक्ष्मी का वरद हस्त 150 वर्षों से निष्कम्प बना हुआ है। ये सब बातें मनुष्यों को जिन कारणों से प्राप्त हो सकती हैं उनका उल्लेख रामायण के उत्तरकाण्डान्तर्गत 15वें सर्ग के 25वें श्लोक में वाल्मीकिजी ने बहुत सम्पर्क किया है। पाठकों के अवलोकनार्थ वह पद्य नीचे लिखा जाता है।

ऋद्धि रूपं बलं पुत्रान्, वित्तं शूरत्व मेव च।
प्राप्तुवन्ति नरालोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥

अर्थात्—इस संसार में पुण्यकर्म के प्रभाव से ही लोगों की उत्कर्ष, सौन्दर्य, पराक्रम, सन्तति, धन और शूरता प्राप्त हो सकती है। कहना नहीं होगा कि जिन पुण्यकर्मों का विधान कहा गया है। उन्हींके यथातत्व अनुष्ठान द्वारा विलायत के राथ्सचाइल्ड नामक कुटुम्ब इतना नामी हो सका है। जो लोग उक्त कुटुम्ब की तरह पुण्यकर्मों का अनुष्ठान करेंगे वे निःसंदेह राथ्सचाइल्ड नामक कुटुम्ब के सदृश्य नामी ग्रामी होंगे। ईश्वर इस देश के लोगों को भी पुण्यकर्मार्जन की सुबुद्धि दे यहां उससे इस जन की विनीत प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 2 अप्रैल 1911

उन्नति

जब किसी के सुख तथा विभव की मात्रा बढ़ी हुई देखी-सुनी जाती है, तब उसे सर्वसाधारण लोग उन्नत अवस्था सम्पन्न कहते सुनते हैं। जिस प्रकार यह बात एक मनुष्य के विषय में कही सुनी जाती है उसी प्रकार वह एक कुटुम्ब, एक गाँव, एक नगर, एक प्रान्त, एक राष्ट्र और एक देश के विषय में भी कही-सुनी जा सकती है। इस समय भारत के विदज्जनों का चित्त भारत की उन्नति करने की ओर आकृष्ट हो रहा है। अवश्य ही उनकी यह सब कामना भारत की भविष्यत् उन्नति का प्रसादचिह्न है।

जो विद्वान सज्जन भारत की उन्नति के अभिलाषी हैं, वे इस उन्नति के अपनी अपनी मति के अनुसार कई मार्ग बतलाते हैं। कोई कहता है, कि जब लों भारत में विधवा विवाह का प्रचार नहीं होगा तब लों भारत की उन्नति नहीं होंगी, कोई कहता है कि जब तक भारत की वर्तमान चातुर्वर्णात्मक जातिप्रथा नहीं उठा दी जायेगी, तब तक भारत का उत्कर्ष नहीं होगा; कोई कहता है कि जब तक भारत में धार्मिक जीवन का संचार नहीं किया जायगा तब तक भारत का अभ्युदय नहीं होगा, कोई कहता है कि जब तक भारत में स्त्री शिक्षा का प्रचार नहीं होगा तब तक भारत का उद्धार नहीं होगा, कोई कहता है, कि जब तक सामाजिक सुधार नहीं होगा; तात्पर्य अपने-अपने मत के पक्षपाती अपनी-अपनी युक्तियों से अपने-अपने मत का समर्थन और मण्डन किया करते हैं। इस विषय पर विचार करते-करते हमें जो बातें ज्ञात हुई हैं उन्हें हम अपने उन्नायक सज्जनों की सेवा में निवेदन कर उन पर भी विचार करने के लिए आप लोगों से प्रार्थना करते हैं।

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य का पठन-पाठन, मनन और अनुशीलन करने से यह बात जानी जा सकती है कि किसी मनुष्य या देश की अपनी उन्नति कर, उसे चिरस्थित बनाये रखने के लिए विद्या, धन और परिश्रम के समीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्या, धन और परिश्रम इन तीनों की प्रगलभावस्था जहाँ जबलौं निष्कम्प बनी रहती है वहाँ तबलौं उन्नति बड़े प्रेम भाव के साथ निवास किया करती है। जहाँ इन तीन में से किसी एक की मात्रा घटने लगती है, वहाँ उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण से उन्नति का निवास भी क्षीण होने लग जाता है। प्राचीन अथवा अर्वाचीन उन्नत देशों के इतिहासों पर हम ज्यों-ज्यों अधिक विचार और मीमांसा करते हैं त्यों-त्यों हमारे चित्त में यह बात अधिकाधिक दृढ़ होती जाती है कि विद्या, धन और परिश्रम का उन्नति के साथ साहचर्य्य धर्म प्रकृति सुलभ ही है। जिस प्रकार प्रकृति उसके चिरप्रचलित अदम्य नियमों की उपेक्षा वा उनका उल्लंघन करने-वाले को क्षमा करना जानती ही नहीं, उसी प्रकार जो लोग विद्या, धन और देश में आदर के साथ टिकाने की परवा नहीं करते उनके देश में उन्नति ठहर ही नहीं सकती।

हमारे पाठकों में से जो सज्जन इतिहासों में लिखी हुई बातों का पता लगाना नहीं चाहते वा जो उन्हें कवि कल्पना मात्र समझकर उनके लेखकों की तिल के ताड़, बिन्दु को सिन्धु और मटर को मेरु बनानेवाला मानकर उनकी उपेक्षा करते हैं उनके विचारार्थ हम नीचे लिखी हुई दो-एक बातों को ही पर्याप्त समझते हैं। हमारे पाठकों में से कई सज्जनों ने अपने निवास स्थान में ऐसे लोगों को प्रायः देखा ही होगा जिनके पिता व पितामह हाथी, घोड़े और पालकी की सवारी के सिवा धरती पर एक इंच भी नहीं चलते फिरते थे, उन्हीं के पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रों को डाक रनर का काम करने पर भी अपनी तथा अपने आश्रितों जनों की उदरपूर्ति करने योग्य धन नहीं मिल सकता। इसका कारण इस समय लोग अज्ञानवश अदृष्ट के मत्थे मढ़ा करते हैं। पर इसमें अदृष्ट का कोई दोष नहीं है। दोष केवल उन्हीं लोगों का है जो पितृपैतामहद्त्त धन विभव को प्राप्त होकर विद्या और परिश्रम का यथावत् सेवन नहीं करते। विद्या विनोद के अनुशीलन और विद्वज्जनों के सत्संग से धनाढ्य जनों की यह बात मालूम रहा करती है कि विद्या और परिश्रम बिना धन ठहर नहीं सकता। जो लोग बाप दादाओं के धन को पाकर एकमात्र आम्य विषयों में ही आसक्त हो जाते हैं, उनकी दूसरी या तीसरी पीढ़ी को निःसन्देह दरिद्र हो जाना पड़ता है। यह सामर्थ्य एकमात्र विद्या में ही है कि वह मनुष्य को सदा उसके कर्त्तव्य कर्म में दक्ष बना रखकर उसे ऐसे-ऐसे कार्य-कलाप सूचित करते रहा करती है कि जो 'अल्प मूल महोदय' हुआ करते हैं। जिसके 'व्यवसाय अल्प मूल महोदय' हुआ करते हैं, अर्थात् जो अपने काम-काज ऐसे ढंग से चलाना जानता है, कि जिनमें पूंजी कम लगानी पड़ती है, परिश्रम कम करना पड़ता है, पर उनसे उसे लाभ अधिक होता है, उससे लक्ष्मी कभी विरक्त नहीं होती। जिससे लक्ष्मी को कभी उपराम नहीं होता वह सदा उन्नत ही बना रह सकता है। कैसा ही अतुल पराक्रमी, कैसा ही अटूट धन सम्पत्तिशाली, कैसा ही अनन्त अधिकार सम्पन्न मनुष्य भले ही हो पर उसे यह बात केवल विद्या द्वारा ही मालूम हो सकती है कि—

(1) मानं न लभते शत्स, भिन्नचारित्रदर्शनः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) न चिरं पाप कर्माणः क्रूरालोकजुगुप्सिताः ।
(3) ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठान्ति शीर्ण मूला इवद्रुमाः ।।

—रामायण

चरित्रहीन पुरुष का सज्जनमण्डली में कहीं आदर नहीं हो सकता । ऐश्वर्य को प्राप्त होकर जो पापी नित उठ निन्द्य पाप एवं क्रूर कर्म किया करता है वह मूल-हीन पेड़ की नाईं बहुत दिन लौं अपने उक्त प्रकार के ऐश्वर्य का उपभोग कदापि नहीं कर सकता । तात्पर्य, धन-दौलत और अधिकार को पाकर जो लोग इतने उन्मत्त हो जाते हैं कि अपने कर्त्तव्य कर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं रखते, वे अपनी उस भूल के कारण शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । और अपने अधःपात के दोष को बिचारी लक्ष्मी पर बिना कारण आरोपित किया करते हैं । पाठक ही विचारें इसमें बापुरी लक्ष्मी का क्या दोष है । जो दोष है वह सब लक्ष्मी आदि को गँवानेवाले मनुष्य का ही है कि आत्मोन्नति चाहनेवाले प्रत्येक जन को विद्या, धन और परिश्रम का समीकरण कर, उसे स्थिर बनाये रखने के लिए उद्योग करते रहना चाहिए ।

इस समय भारत के बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, प्रयाग, मद्रास, लाहौर और नागपुर आदि प्रधान प्रधान नगरों में जो बड़े-बड़े भवन भगवती लक्ष्मी के क्रीडा-स्थल बने हुए पाये जाते हैं, उसके स्वामियों में से अधिक ऐसे सज्जन हैं जिनके पिता और पितामह आदि विपन्न अवस्था में थे, किन्तु उन लोगों ने, विद्या, परिश्रम और धन के समीकरण द्वारा अपनी सर्वथा प्रशंसनीय और अनुकरणीय वर्तमान उन्नत अवस्था प्राप्त की है । इन प्रत्यक्ष उदाहरणों को देखकर भारत की उन्नति की लालसा रखनेवाले प्रत्येक विवेकी जन को नीच स्वार्थ त्याग पूर्वक विद्या परिश्रम और धन का समीकरण करने के लिए चेष्टा करते रहना चाहिए ।

विद्या और परिश्रम के सेवन की मात्रा यथावर्त न मिलने के कारण ही भारत में इस समय कहीं-कहीं 'अजात व्यंजन' लोगों ने भारत का उद्धार करने के बहाने अत्यन्त निंद्य तथा सर्वत्याज्य काम कर डाले हैं । ऐसे लोग यदि भारत में कहीं और भी हों तो उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि राजा से श्रेय प्राप्त करने का उपाय वह नहीं है जिसका वे अवलम्बन कर रहे हैं, किन्तु भारत के दूरदर्शी ऋषियों ने राजा से श्रेय प्राप्त करने का उपाय यों कथन किया है—

आराधिताः सुशीलेन प्रयत्नैश्रोपसेविताः ।
राजानः संप्रसीदंति प्रकुप्यंति विपर्य्यये ।। —रामायण

अर्थात् जिन लोगों को राजा से अपना श्रेय प्राप्त करने की इच्छा हो उन्हें उचित है कि वे राजा की अत्यन्त सुशीलता के साथ आराधना करें, बहुत प्रयत्नों के साथ उसकी सेवा करें, तभी वह प्रसन्न होकर उनकी मनोभिलापित कामनाओं को पूर्ण कर उन्हें सिद्धार्थ और सकाम करेगा, अन्यथा आचरण से वह प्रकोप को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होगा । पाठक ! देखिये हमारे परिणामदर्शी पूर्व पुरुष हमारे हित के लिए कितना उत्तम और हितकारक उपदेश छोड़ गये हैं । हम उस उपदेश का आदर न करने के कारण ही उन्नति से विमुख हो रहे हैं । फलितार्थ यही है कि भारत में विद्या, परिश्रम और धन के समीकरण को बढ़ाने के लिए यथाशक्ति उद्योग करते रहना चाहिए । जिस समय इनका समीकरण भारत में यथार्थ रूप से विद्यमान हो जायेगा, उस समय उन्नति बड़े प्रेम और चाव के साथ भारत को अपना विलास मन्दिर बना लेगी । "तथाहि शीघ्रम् भवतु ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभ्युदय', 22 जनवरी 1911

बालकों की शिक्षा

संसार की क्षुद्रातिक्षुद्र तथा उच्चातिउच्च घटनाओं पर समाहित चित्त होकर विचार करने से यह बात विदित हो सकती है कि इस संसार में बसने वाली मनुष्य जाति की उन्नति और अवनति का उस जाति के बालकों की शिक्षा से बहुत घनिष्ठ संबंध रहता है। जिस जाति के लोग अपने बालकों को बहुत दक्षता के साथ शिक्षा दिया करते हैं, जिस जाति के लोग अपने बालकों का चरित्र संगठन करने में कभी अणुमात्र की उपेक्षा नहीं करते, जिस जाति के लोग अपने बालकों को संसार की हर एक बात का तत्व समझा देने के लिए निरन्तर यत्न किया करते हैं उस जाति के लोग प्रायः इस जग में सुखी, विजयी और मानार्ह हुआ करते हैं। प्राचीन समय में भारतवासी लोग बालक-बालिकाओं की शिक्षा को बड़ा भारी ऋण मानकर उसके संशोधनार्थ बहुत सचिन्त रहा करते थे। भगवान शुक्राचार्य का नीचे लिखा पद्य इस बात का समर्थन पूर्ण रूप से करता है—

विद्यागमार्थं पुत्रस्य वृत्यार्थयतते वयः।
पुत्रं सदा साधुशास्ति प्रीति कृत्स पिताऽनृणी॥

इसका भावार्थ यह है कि वही पिता अपनी संतति को प्यार करने वाला और उसके ऋण से उत्तीर्ण समझा जाता है जो अपनी संतति की शिक्षा के लिए, उसकी आजीविका के लिए और उसे सच्चरित्र बनाने के लिए पूर्ण यत्न किया करता है।

पाठक आप लोग देखें इस पद्य में बाल शिक्षा के लिए कितना उत्तम उपदेश किया गया है। प्राचीन समय के भारतवासी ऐसे ही उपदेशों का अनुकरण किया करते थे। इस पद्य में एक बात सविशेष ध्यान देने योग्य कही गई है। वह यह है कि जब पिता अपनी संतति को पूर्ण विद्वान बना उसकी आजीविका का प्रबन्ध कर देता था तब वह अपनी संतति के ऋण से मुक्त समझा जाता था किन्तु आजकल ठीक इसके विपरीत बात हो गई है। आजकल तो प्रायः सर्वत्र यह कहावत सुनी जाती है कि ज्यों ही पिता लड़के के 'दो हाथ के चार हाथ' कर देता है त्योंही वह (पिता) उसके (पुत्र के) ऋण से मुक्त हो जाता है!!! अब पाठक, उक्त श्लोक की शिक्षा पर और आजकल की परिपाटी पर विचार करें; उक्त श्लोकांतंगत शिक्षा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम यह होता था कि पिता अपनी संतति को योग्य शिक्षा देकर अर्थात् उसे विद्वान्, चरित्रवान्, परिश्रमी, अक्लिष्टकर्मी, स्वकर्तव्यकर्म जागरूक बनाकर जब इस संसार में छोड़ देता था तब वह इस संसार में अपना जीवन, बहुत आनन्द, सुख और मान-सम्मान के साथ व्यतीत कर सकता था। आजकल माता-पिता अपनी संतति को बिना परिश्रमी, बिना कर्तव्य-कर्मज्ञ बनाये ही उन पर विवाह जन्य परिणाम का बोझ लाद देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका जीवन दुःखमय हो जाता है। आजकल की प्रणाली का दुखद परिणाम सधन निर्धन लोगों को एक सा भोगना पड़ता है। सधन पुरुष की संतति अविद्वान होने के कारण अपनी पैतृक संपत्ति को नष्ट कर अपना जीवन दुःखमय कर डालती है और निर्धन पुरुष की संतति अयोग्य होने के कारण जीवन का सुख लाभ नहीं कर सकती। तात्पर्य किसी देश की, किसी राष्ट्र की या जाति की उन्नति का अनुसंधान करने पर यह बात प्रमाणित पाई जायेगी कि जिस देश, जिस राष्ट्र या जिस जाति ने अपने बालकों को योग्य शिक्षा दी उसी ने संसार में मान-सम्मान और सुख-शान्ति पाई; अन्य ने नहीं।

इस समय भारत में पाठशाला, विद्यालय और विश्वविद्यालय की स्थापना जहाँ तहाँ हो गई है। इनके द्वारा विद्या का प्रचार हो रहा है। निःसंदेह यह सब देश का मंगल करने वाले हैं। पर हम भारतवासियों को केवल इन्हीं के भरोसे अपनी संतति को न ही छोड़ देना चाहिए। स्वयं हमें भी अपनी संतति को उचित शिक्षा देने का नित्य उठ प्रयत्न करते रहना उचित है। आजकल की परिपाटी यह है कि लड़के या लड़की को माता-पिता पाठशाला में पहुँचाकर निश्चित हो जाते हैं। वह मान लेते हैं कि अब हमारा लड़का सुशिक्षित हो जायेगा। जो धनी लोग होते हैं वह अपने लड़के को घर पर पढ़ाने का भी प्रबन्ध कर देते हैं। इस प्रकार की पढ़ाई से साक्षर अवश्य हो जाते हैं, पर वह चरित्रवान्, परिश्रमी और स्वकर्तव्य कर्मदक्ष नहीं हो सकते। यही कारण है कि उनके द्वारा सुख-शान्ति सम्पादक बड़े-बड़े कार्य नहीं हो सकते। अपना और अपने लड़के-लड़कियों का शुभ चाहने वाले प्रत्येक माता-पिता को उचित है कि वह अपने लड़के-लड़कियों की शिक्षा पर उचित ध्यान देना अपना सर्वोपरि श्रेष्ठ धर्म मानकर उसे पूरा करने का यत्न किया करें। इस शिक्षा का आरम्भ तभी से हो जाना चाहिए जब से बालकों को बोलने और समझने का ज्ञान होने लगता है। पाठशाला और विद्यालय में पढ़ने वाले लड़के और लड़कियों के माता-पिताओं को उचित है कि वह लोग निरन्तर इस बात की जाँच-पड़ताल और देखभाल स्वयं करते रहा करें कि उनके बालक सत्यप्रिय, चरित्रवान, परिश्रमी, सहिष्णु, वस्त्वर्थज्ञ और विद्वान होते जाते हैं। क्योंकि इन्हीं गुणों से उन्नति होती है और उन्नति द्वारा ही मनुष्य का पुरुषार्थ सिद्ध हो सकता है। इन उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए हमारी प्रजावत्सल सरकार बहुत कुछ कर रही है। पर ज्यों ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोगों को उचित सहायता सरकार से इस दिशा में मिलने लगेगी त्यों ही इस शिक्षा का मीठा फल हम लोगों को मिलने में देर नहीं लगेगी। इस समय बालक-बालिकाओं के लालन-पालन विषयक बातों की उपेक्षा हमारे देश में देशव्यापिनी हो रही है। जो लोग सधन और सामर्थ्यवान हैं वह तक अपने बालक-बालिकाओं के लालन-पालन और शिक्षण में उचित ध्यान नहीं देते तो फिर साधारण श्रमजीवी तथा अन्य लोगों की बात ही क्या कहना है। हमारे यहाँ के वर्तमान धनी लोग अपने बालकों के खानपान को नौकरों पर छोड़ आप निश्चित हो जाते हैं। नौकरों को स्वकर्तव्य कर्म का महत्व विदित न होने के कारण वह लोग उनकी यथातथ्य सेवा नहीं कर सकते। इसका परिणाम यह होता है कि लड़कों के स्वास्थ्य और उनकी रुचि आबाल्यात बिगड़ जाती है। फिर वह सुधारे नहीं सुधरती। जान पड़ता है इन्हीं सब बातों के तत्वों को भली भाँति समझ-बूझकर सहस्रों वर्ष पूर्व आचार्यवर शुक्रजी ने उपदेश दे रक्खा है कि—

क्षणं नासावधानः स्यात् भृत्य स्त्री पुत्र शत्रुषु।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह पुत्र, स्त्री और नौकर आदि के विषय में क्षण भर भी असावधान न रहे। तात्पर्य वह सदा इनकी उचित शिक्षा और रक्षा में लगा रहे। जब प्रत्येक माता-पिता अपने बालकों को परिश्रमी, चरित्रवान, विद्वान और सत्योपासक बनाने के लिए यत्न करेंगे—तभी विद्या प्रचार का हेतु यथातथ्य सिद्ध होकर इस देश की उन्नति होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 14 जनवरी, 1911

उन्नति के तत्त्व

इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि वर्त्तमान भारतवासी लोगों की कल्पना शक्ति, विचार परम्परा, रहन-सहन, चाल-चलन, रीति भाँति और आदर प्रदान आदि में उनके पूर्वजों की अपेक्षा आकाश पाताल कैसा अन्तर पड़ गया है। इस अन्तर का एकमात्र कारण कालचक्र की महिमा ही कही जा सकती है।

गत वर्ष के नवम्बर मास की सरस्वती में हिन्दी भाषा जानने वालों के चिर परिचित सुयोग्य श्रीयुत् बाबू काशीप्रसाद जी जायसवाल बी० ए० बारिसार ने वर्त्तमान भारतवासी लोगों की विचार शैली की तुलना वर्त्तमान यूरोपवासी लोगों की विचार-शैली के साथ बहुत योग्यतापूर्वक की है। हमें भरोसा है कि जायसवाल जी की उस गम्भीर भावगर्भित टिप्पणी पर हमारे देश के विद्वज्जनों ने अवश्य ही विचार किया होगा। निस्संदेह यह विषय बहुत विचारणीय है। इस छोटी-सी टिप्पणी में जो बातें लिखी जाती हैं वह रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों से ली गई हैं। इन्हीं बातों को हम अपनी प्राचीन बातें मानते हैं। इनके अनन्तर हमारे देश के लोगों की विचार-परम्पराओं में जो परिवर्त्तन हुआ है वह अविद्या जनित घोर अन्धकार के समय का है। इसी की छाया से वर्तमान समय के भारतवासियों की विचार परम्परा आच्छादित है।

महाभारत के सभापर्व में उन्नति के विषय में नीचे लिखा हुआ पद्य पाया जाता है—

अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्म्मनसु।
रक्षणं समुपात्ताना मेतद्वैभव लक्षणम्॥

उन्नति को पैदा कर उसे स्थिर बनाये रखने वाले जो तीन मूल कारण हैं वे इस पद्य में बड़ी निपुणता के साथ व्यक्त किए गए हैं। पाठकगण देखते हैं कि इस पद्य में स्पष्टतया कहा गया है कि दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करना, अपने कर्तव्य कर्म में निरन्तर रत रहना और अपने आश्रित की रक्षा करना यहीं तीन बातें उन्नति की रक्षक हैं। इस पद्य की भाव प्रवणता और शब्द रचना द्वारा प्राचीन भारतवासी के कर्त्तव्य कर्म विषयक विचारों का पूरा-पूरा पता लग सकता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य में बहुत ही स्पष्ट और सरलता से कहा गया है कि जिसे विभव प्राप्ति की इच्छा हो उसे आजन्म अर्थात् अपने जीवन भर में अपने कर्त्तव्य कर्म्म का पालन करते रहना चाहिए। तात्पर्य यह कि मनुष्य चाहे साधारण अवस्था में हो चाहे असाधारण अवस्था में हो उसे अपने कर्त्तव्य कर्म्म से कभी किसी अवस्था में विमुख नहीं होना चाहिए। जिस अवस्था में जो कर्त्तव्य कर्म्म सम्बन्ध रखता हो उस अवस्था में उसको उसे करते ही रहना चाहिए।

रामायण और महाभारत से भी अधिक प्राचीन ग्रन्थ श्री शुक्राचार्य का है। इन आचार्य्यजी ने कर्त्तव्य कर्म्म के विषय में अपने ग्रन्थ में निम्नलिखित पद्य लिखा है।

विना स्वधर्म्मापन्न सुखं, स्वधर्म्माहि परंतपः।
तपः स्वधर्म्म रुपंयद् र्वाहिन्त् येन वै सदा।।

पाठकगण देखें इस पद्य में उन्नति के परम तत्वों को हस्तामलकवत् जानने वाले कुशाग्रबुद्धि श्री शुक्राचार्यजी स्पष्टतया कहते हैं कि बिना स्वधर्म्म का अर्थात् कर्त्तव्य कर्म्म का पालन किए किसी को कभी सुख, जो कि एकमात्र उन्नति द्वारा ही मिला करता है, प्राप्त ही नहीं हो सकता। आचार्य्यजी कहते हैं कि यह कर्त्तव्य कर्म्म ही परम तप है। इसी को साधना से समस्त विभव प्राप्त हो सकते हैं। भारत के प्राचीन अधिवासी जन स्वकर्त्तव्य कर्म्म को जिस भक्ति-भाव के साथ माना करते थे उसका पता उक्त दो प्राचीन पद्यों से भली-भाँति लग सकता है।

यह कहना शायद असंगत नहीं होगा कि वर्त्तमान् समय के भारतवासी स्वकर्त्तव्य कर्म्म के उतने निःसीम भक्त तथा आराधक नहीं हैं जितने कि उनके पूर्वज थे। इतिहास इस बात को स्पष्ट रूप से लक्षित करा रहा है कि ज्यों-ज्यों भारतवासी जनों के समूह की स्वकर्त्तव्य भक्ति की मात्रा क्षीण होती गयी त्यों-त्यों उनकी सुख समृद्धि की मात्रा भी उत्तरोत्तर हीन क्षीण होती गयी। इसे ईश्वर की अत्यन्त कृपा मानना चाहिए कि अनेक दुःखों के पश्चात् इस समय हम भारत-वासियों को अंग्रेज जैसे प्रजा वत्सल राजा मिले हैं। इनकी छत्र छाया में रहकर हमें कर्त्तव्य कर्म्म विषयक शिक्षा का लाभ करना चाहिए। इस देश की एक कहावत है कि बूढ़े सुआ राम-राम नहीं पढ़ते। इस कहावत का सर्वांश भले ही सत्य न हो, पर इसका बहुलांश अवश्य ही सत्यता से पूरित है। तात्पर्य यह है कि वर्त्तमान भारतवासियों को अपनी स्वकर्त्तव्य कर्म्म भक्ति की मात्रा बढ़ाने के लिए चेष्टा करनी चाहिए। उससे कहीं अधिक चेष्टा उन्हें अपने होनहार संतानों के पूरे स्वकर्त्तव्य कर्म्म परायण बनाने की करनी चाहिए। जिस दिन भारतवासियों के बड़े भारी समुदाय में विद्या का उचित प्रचार हो जाएगा, जिस दिन उनमें स्वकर्त्तव्य जागरूक लोगों की संख्या अधिक पायी जाएगी उस दिन सुख समृद्धि उनके पीछे दौड़ेगी और समस्त उन्नत जन उन्हें आदर देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे संक्षिप्त रूप से दैववाद की चर्चा की जाती है। विद्या प्रचार की उपेक्षा और कर्त्तव्य कर्म्म की बिरल भक्ति ने भारत की दुर्दशा करने में जो कोर कसर रख छोड़ी थी उसकी पूर्ति इस दैववाद ने कर डाली। इस समय बड़े से छोटे तक सब श्रेणी के लोग इस दैववाद के जाल में फँसे हुए हैं। महात्मा शुक्राचार्य्य के ग्रन्थ को समादृत करने वाले लोग अवश्य ही देव को उसी प्रकार मानते होंगे जिस प्रकार शुक्रजी ने उसे अपने ग्रन्थ में लिखा है। शुक्रजी ने दैव के विषय में निम्नस्थ पद्य लिखा है।

धीमन्तो वन्द्य चरिता, मन्यंते पौरुष महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं, स्कीवा दैवमुपासते।।

पाठक देखें, इस पद्य में आचार्य्य प्रवर शुक्रजी कहते हैं कि बुद्धिमान और पूज्य चरित्र लोग पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ मानते हैं। जो आलसी और कातर पुरुषार्थ नहीं कर सकते वही दैव को मानते और पूजते हैं। इसी भाव को मुनिवर बाल्मीक जी ने अपनी रामायण में यों व्यक्त किया है—

विल्कवी वीर्य्यहीनो यः स दैवमनुवर्त्तते।
वीराः सम्भा वितात्मानो न दैवं पर्य्यु पासते।।

पाठक देखें इस पद्य में भी यही कहा गया है कि दैव को वही मानते हैं जिनसे कुछ करते धरते न नहीं बनता। सामर्थ्यवान् श्रेष्ठ जन दैव को नहीं मानते।

जो लोग संस्कृत नहीं जानते उन्हें भारतवर्ष के प्राचीन लोगों की दैव विषयक सम्मति को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में नीचे लिखी हुई चौपाई द्वारा यों समझा दिया है—

कादर मन कहं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।

पुरुषार्थवादी श्रीकृष्ण जी ने विभूतियों का वर्णन करते हुए गीता में कहा है—पौरुषं नृषु।

अर्थात् मनुष्य में ईश्वर की विभूति पुरुषार्थ रूप में रहा करती है। इस कथन में यही अभिप्राय जान पड़ता है कि मनुष्य मात्र को पुरुषार्थी एवं उद्योगी ही होना चाहिए। यहाँ तक स्वकर्त्तव्य कर्म्म और दैव के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे हमारे मननशील पाठकों को भारत के प्राचीन विद्वानों की एतद्विषयक सम्मति का भली-भाँति परिचय और बोध हो सकता है। अब रही इनके सेवन से होने वाली सुख शान्ति की निश्चयात्मकता उसका परिचय हमारे पाठकों को वर्त्तमान यूरोप निवासी सज्जनों के चरित्रों से प्राप्त करना चाहिए। पदार्थ विज्ञान और रसायन शास्त्र की सहायता से सज्जनों ने आविष्कार किया है वह सब सर्व्वतोभाव स्वकर्त्तव्य कर्म्म और पौरुष के अविरल भक्त रहे हैं। इस समय जो सज्जन इस ओर काम में रत हैं वे स्वकर्त्तव्य कर्म्म और पुरुषार्थ के एकान्ततः अव्यभिचारी भक्त हैं। वास्तव में वर्त्तमान समय भारतवासियों के लिए बहुत ही अनुकूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय उनके पूर्व्वजों के प्राचीन उपदेश उनके समीप हैं, उन उपदेशों को मानकर उनके प्रत्यक्ष लाभ उठाने वाले यूरोपीय सज्जनों की कृति भी उनके समीप है। साथ ही हमारी दयालु अंग्रेज सरकार भी भारतवासियों को उन्नति करने के लिए सहायता दे रही है। ऐसा सुसमय पाकर भारतवासियों को अपनी उन्नति का 'ॐ नमः सिद्धम्' विद्या प्रचार, चरित्रगठन स्वकर्त्तव्य-कर्म्म की भक्ति और पुरुषार्थ की आराधना द्वारा करना चाहिए, क्योंकि उन्नति के तत्व इन्हीं में अधिष्ठित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मारवाड़ी', 4 अक्टूबर, 1911

त्योहार

जिन दिनों इस प्राचीन भारतवर्ष के विद्या व्यसनी लोग सर्वसाधारण की मंगल कामना से प्रेरित होकर नाना प्रकार के आविष्कार कर रहे थे उन दिनों इस भारत में जिस प्रकार त्योहार मनाये जाते थे उसमें जिस आज के प्रकार में यद्यपि आकाश पाताल का अन्तर हो गया है तथापि यह बात विशेष सन्तोष की है कि हमारे त्योहारों का मानना अभी तक चला आ रहा है। भारत के जिन विद्यापूत आचार्यों ने मनुष्य मात्र के हित से सम्बन्ध रखने वाले क्षुद्रातिक्षुद्र और उच्चाति-उच्च विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं उनमें त्योहारों का महत्त्व समझने की उपेक्षा नहीं की है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का मनोनिवेश पूर्वक पठन-पाठन करने से यह बात तुरन्त ही ज्ञात हो सकती है कि मनुष्य जाति की उन्नति का त्योहारों से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। जो-जो जाति अपने त्योहारों को जितने अधिक उत्सव के साथ मनाती है वह उतनी ही अधिक अपनी उन्नति कर सकती है। मानस शास्त्र के पूर्णवेत्ता मुनिवर वाल्मीकिजी अपनी रामायण में सहस्रों वर्षों के पूर्व निम्नलिखित पद्य लिख गये हैं—

उत्साही बलपा नार्य्यं नास्त्युत्साहात्परंबलम्।
सोत्साहस्यहि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।।

इस पद्य का भावार्थ है :

हे आर्य्य, इस संसार में उत्साह से बढ़कर अन्य कोई बलाढय नहीं है। जिस मनुष्य में उत्साह पूर्ण रूप से विद्यमान रहता है उसके लिए, अकेले इसी लोक में ही नहीं किन्तु तीनों लोकों में भी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।

पाठक मुनिवर वाल्मीकिजी ने उक्त पद्य में उत्साही की प्रशंसा में जो कुछ लिखा है उसकी तुलना जिस समय आप आजकल के पाश्चात्य आविष्कर्ताओं के उत्साह के साथ करेंगे उस समय आपको उक्त पदस्थ भाव की सत्यता प्रतीत होने में अणुमात्र भी विलम्ब नहीं लगेगा।

यह संसार बड़ा विचित्र है। इसमें रहते समय लोगों को कई प्रकार के दुःखों का भार सहना पड़ता है। दुःखों के भार से मनुष्यों के उत्साह मात्रा हीन क्षीण न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पावे इसी अभिप्राय से हमारे देश के आचार्यों ने थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से त्योहारों की योजना की है। इन त्योहारों को प्रचलित करने में उनका मुख्य अभिप्राय यही था कि जिस नायक को अधिकृत कर जो त्योहार प्रचलित किया गया है उसके जीवन की घटनाओं का स्मरण कर लोग अपने दु:खों को भूलें और उसके उत्साह से शिक्षा ग्रहण कर अपने चित्त को इतना उत्साहित कर लें कि उसकी सहायता से वह अपने घोर परिश्रम साध्य काम करने के लिए समर्थ हो सकें।

कुटिल काल की वक्रता, अविद्या की प्रबलता अज्ञानता की अधिकता के कारण इस समय हमारा प्रत्येक त्योहार यों ही मना लिया जाता है। जिस अभिप्राय से जितने उत्साह के साथ जो त्योहार मनाया जाना चाहिए उस अभिप्राय से उतने उत्साह के साथ वह नहीं मनाया जाता। इसका एक मात्र कारण अज्ञान है। सन्तोष का विषय है कि अब हमारे देश के साक्षर लोगों का ध्यान हमारे जातीय त्योहारों की ओर आकृष्ट होकर उनके प्रधान लक्ष्य की खोज में लग रहा है। विद्वानों की खोज से प्रत्येक त्योहार का मूल अभिप्राय सर्वसाधारण को जब अवगत हो जायगा और जब उसके मनाने से सर्वसाधारण के चित्तों में उत्साह की मात्रा बलवती हो जायगी तब भारत की भलाई होने में देर नहीं लगेगी। जिस प्रकार एंजिन से पूरा काम लेने के लिए समय-समय पर उसमें भाप भरने की अत्यन्त आवश्कता होती है, जिस प्रकार बाइसिकल को पूर्ण वेग के साथ दौड़ाने के लिए उसमें समय-समय पर हवा भरने की अत्यन्त आवश्यकता हुआ करती है ठीक उसी प्रकार मनुष्यों के चित्तों में उत्साह भरने के लिए त्योहारों की अत्यन्त आवश्यकता को जानकर ही हमारे पूर्वजों ने प्रचलित किया है। तात्पर्य त्योहारों का उचित उत्साह के साथ मनाया जाना मनुष्य के अभ्युदय एवं उत्कर्ष से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। भरोसा है कि हमारे विवेकी पाठकगण हमारी इस छोटी-सी टिप्पणी की ओर उचित ध्यान देने की कृपा करेंगे और अपनी मण्डली में जातीय त्योहारों के महत्व का उचित उत्साह के साथ प्रचार करने का उद्योग करते रहेंगे। प्रत्येक मनुष्य को मुनिवर वाल्मीकि जी का निम्नस्थ उपदेश स्मरण रखना चाहिए—

उत्साहवंतः पुरुषाः नावसीदंति कर्म्मसु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ० भा० हि० सा० सम्मेलन, द्वि० अधि० प्रयाग,
(कार्य विवरण दूसरा भाग), 1911 ई०

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था

आज जिस विषय पर हम आप लोगों को निबन्ध श्रवणत कराना चाहते हैं विषय निस्सन्देह अत्यन्त महत्व का है। उसे लिपिबद्ध करने के लिए एक पूर्ण विद्वान तथा सुयोग्य लेखक की जिस प्रकार अत्यन्त आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार अत्यन्त आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार अनुकूल स्थान, सुवृहत पुस्तकालय, विद्वज्जन-समागम धुरन्धर ग्रन्थकर्तागणों की सहानुभूति तथा निस्वार्थ कृपा और समय की अनुकूलता आदि सामग्रियों की भी अत्यन्त आवश्यकता है। इस गुरुतर विषय पर लेख लिखने के लिए जिम सामग्री की अत्यन्त आवश्यकता है उनमें से एक भी हमें यहां उपलब्ध नहीं है। अर्थात् न हम विद्वान ही हैं और न हमें यहाँ सुबृहत् तो क्या एक क्षुद्रातिक्षुद्र पुस्तकालय से भी सहायता ही प्राप्त हो सकती है। न विद्वज्जन-समागम ही प्राप्त हो सकता है। न नामी लेखकों की सहानुभूति ही प्राप्त है और न आवश्यक तथा अनुकूल समय ही प्राप्त है। इन प्रतिकूल अवस्थाओं में भी एक पूर्ण विद्वान तथा सुयोग्य जन द्वारा सम्पादनीय कार्य को करने के लिए हम जो साहस कर रहे हैं उसके प्रधान कारण दो हैं उसमें से प्रथम तो हिन्दी के सेवक का पद प्राप्त करने की उत्कट इच्छा तथा अनिवार्य लालसा है, और दूसरा इस द्वितीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के कर्त्तारों की आज्ञापालन करने का अनुराग है।

इस द्वितीय हिन्दी-सम्मेलन के कर्त्तारों ने आप सज्जनों के समीप पढ़ने के लिए 'मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था' नामक लेख प्रस्तुत करने की आज्ञा दे सचमुच ही हमें अत्यन्त उपकृत किया है। इस सम्मेलन के कर्त्तागण हमें इस लेख को लिखने की यदि आज्ञा न देते और हमारे इस लेख को आप सज्जनों के कर्णगोचर होने का अवकाश न देते तो हम जैसे अल्पज्ञ के विचारों को आप जैसे विद्वचक्र चूड़ामणियों के विचार क्षेत्र पर्यन्त पहुंचने का सौभाग्य ही कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। इस कृपा के लिए हम इस सम्मेलन के कर्तारों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं। साथ ही आप सज्जनों से अत्यन्त विनम्र भावपूर्वक हम प्रार्थना करते हैं कि हमारी अल्पज्ञता, विषय प्रतिपादन शैली की अव्यवस्था और अभिप्रेतार्थ को सुचारुरूपेण प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की योग्यता न रखने वाली हमारी टूटी-फूटी भाषा-प्रणाली आदि की उपेक्षा कर आप लोग, अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य से एवं अपनी कुशाग्र बुद्धि से इस लेख द्वारा मध्यप्रदेश में बापुरी हिन्दी की वास्तविक अवस्था को समझ लेने की कृपा करेंगे और भारत के अन्यान्य प्रान्तों में उसकी उन्नति के लिए आप लोग जो उद्योग करेंगे, वही उद्योग मध्यप्रदेश में उसकी उन्नति साधन के निमित्त करने की दया करेंगे। हमें आप जैसे सज्जनों से सुदृढ़ आशा है कि जब तक इस विषय पर एक कुशाग्र बुद्धि विचक्षण एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य-सम्पन्न विद्वान् द्वारा प्रौढ़ तथा भाव व्यंजक भाषा में लिखा हुआ सकलांग पूर्ण लेख आप लोगों के समीप नहीं पहुँचाया जा सकता है। तब तक आप लोग इस अल्पज्ञ लेखक द्वारा टूटी-फूटी भाषा में लिखी हुई हिन्दी की अवस्था को मनोनिवेशपूर्वक जान लेने का कष्ट 'हिन्दी भक्ति गौरवात्' सहर्ष एवं सानन्द स्वीकृत करेंगे। जिस समय कोई राष्ट्र उन्नति की बाल्यावस्था में रहा करता है। उस समय राष्ट्र के विद्वानों का अधिक समूह प्रायः तत्कालीन राजसेवा की उच्च श्रेणी में ही पाया जाता है। मध्यप्रदेश के वर्तमान हिन्दी-भाषी विद्वान लोगों की संख्या का अनुमान करने के लिए हमने आगे जो प्रयत्न किया है। उसमें इसी बात को प्रधानता दी है। इससे कोई सज्जन यह न समझ लेवें कि हमने यह प्रदर्शित करने का उद्योग किया है कि जो हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान् लोग राजसेवा की उच्च श्रेणी के पदों पर पाये जाते हैं वे ही विद्वान हैं, उक्त सज्जन विद्वान नहीं हैं। नहीं, हमारा अभिप्राय ऐसा कदापि नहीं है। राजसेवा के निम्न श्रेणी के पदों पर स्थित लोगों में और स्वतन्त्र व्यवसाय करनेवाले लोगों में भी अच्छे-अच्छे विद्वान पाये जाते हैं। किन्तु उनकी संख्या का अनुदान करने के लिए तादृश विश्वस्त मार्ग हमें अनुकूल न होने के कारण, उस दिशा में हम प्रयत्न नहीं कर सके।

मध्यप्रदेश का जिस प्रकार और जितना इतिहास हमारे वर्तमान ज्ञानार्जन स्पृहालु अंग्रेज लेखकों की कृपा से इस समय हमें प्रायः उससे यह जाना जा सकता है कि जिस प्रदेश का नाम आजकल मध्यप्रदेश है, उसका पुराना नाम गोंडियाना था। गोंडियाना नाम होने का कारण स्पष्ट ही है। वह यही है कि इस प्रदेश के तत्कालीन राजा तथा राजकर्मचारी गोंड थे। गोंडों से इस प्रान्त को मराठों ने लिया और मराठों से इसके कुछ अंश को सन् 1818 में और शेषांश को नागपुर के राजा तीसरे राघोजी के निःसन्तान स्वर्गवासी होने पर सन् 1853 में राज-काज-विशारद अंग्रेजों ने प्राप्त किया। कहना नहीं होगा कि हमारी वर्तमान अंग्रेजी गवर्नमेण्ट में शान्ति और सुव्यवस्था करने की अद्भुत शक्ति और सामर्थ्य है। इस आदरणीय और अनुकरणीय शक्ति के प्रसाद से हमारी वर्तमान गवर्नमेण्ट में नूतन प्राप्त प्रदेश में चारों ओर बहुत शीघ्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर सन् 1861 में इस प्रान्त को 'मध्यप्रदेश' के नाम से संयुक्त कर दिया। तब से आज तक इस प्रदेश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समयानुसार अंग्रेजी गवर्नमेण्ट की कृपा से अन्यान्य प्रान्तों के सदृश क्रम-क्रम से उन्नति होती जाती है इस प्रान्त की क्रमोन्नति का एक प्रत्यक्ष उदाहरण यही है कि प्राचीन गोंडवाने का रहने वाला मुझे ऐसा एक अल्पज्ञ एवं साधारण जन आज इस विद्वद्धुरीण सज्जनों की सभा में अपनी वाक्चपलता प्रकाशित करने का साहस कर रहा है। निस्सन्देह यह सब हमारे वर्तमान शासन कर्त्ताओं की असीम कृपा तथा शासन प्रणाजी की अगाध विदग्धता का एक सुस्वादु एवं सुमधुर फल है।

अब आगे उन बातों का यथाक्रम बहुत ही संक्षिप्त रीति से निरूपण किया जाता है। जिनका इस प्रान्त में हिन्दी की अवस्था प्रकाशित करने में सहायक होना किसी-न-किसी प्रकार सम्भव है। वर्तमान् सन् के गत मार्च महीने में भारत की जो मनुष्य-गणना की गयी थी उसका लेखा अभी प्रस्तुत नहीं हुआ है। अतः गत् 1901 की मनुष्य-गणना के विवरणानुसार इस प्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या आदि का विवरण नीचे दिया जाता है।

(1) मध्यप्रदेश का क्षेत्रफल 115894 वर्गमील है।

(2) मध्यप्रदेश की जनसंख्या 11873029 है।

(3) जिनकी जन्म भाषा हिन्दी है उसकी समूची मध्यप्रदेश में जनसंख्या 6782200 है।

(4) जिनकी जन्मभाषा वा मातृभाषा हिन्दी है उनमें से हिन्दी लिखे-पढ़ों की मध्यप्रदेश में जनसंख्या 198332 है।

ऊपर मध्यप्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या का जो लेखा दिया गया है। उसमें यहाँ की देशी रियासतों का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या भी सम्मिलित है। उक्त लेखे पर विचार करने से यह बात तुरत ही ध्यान-स्थित हो सकती है कि समूचे मध्यप्रदेश में जितने जन निवास करते हैं उतने में जिनकी जन्म भाषा हिन्दी है उनकी जनसंख्या मध्यप्रदेश की समूची जनसंख्या के आधे से अधिक है अर्थात् मध्य-प्रदेश में हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों की जनसंख्या प्रतिशत पीछे 57 है। हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की संख्या में हिन्दी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या प्रतिशत पीछे 2.92 और अंग्रेजी जानने वालों की जनसंख्या प्रतिशत पीछे 0.35 है। मध्यप्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी लोग विद्या के प्रांगण में जिस प्रकार पीछे पड़े हुए हैं उनका उक्त अंकों से भली-भाँति पता लग सकता है। भारत के जिन प्राचीन महर्षियों का सिद्धान्त वाक्य 'विद्याव्यसनं व्यसनं अथवा हरिपाद सेवनम् व्यसनम्' था उन्हीं महर्षियों के वर्तमान वंशजों का विद्या क्षेत्र में इस प्रकार पीछे पड़े रहना निस्सन्देह अत्यन्त दुःख और लज्जा की बात है।

कालचक्र की कुटिल गति को पार कर आज दिन संस्कृत के जो ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं उनसे हमें यह बात 'सुचारुरूपेण' विदित हो सकती है कि हमारे पूर्वज विद्यादेवी के महत्त्व को तथा तज्जन्यज्ञान की पवित्र महिमा को करामलकवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते थे। महात्मा शुक्रजी ने अपने उपदेश ग्रन्थ में निम्नलिखित शिक्षा का उपदेश किया है—

विद्यागमार्थं पुलस्य वृत्यर्थं यतते च यः।
पुत्रं सदा साधु शास्ति प्रीति कृत्सपितः नृणी ।।

इसका भावार्थ यह है कि जो पिता अपने पुत्र को विद्या सम्पन्न करा उसे आजीविका से लगा देता है और निरन्तर उसे मंगलकारिणी शिक्षा देता रहता है वही अपने पुत्र के ऋण से उऋण हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता। महाभारत में महात्मा व्यासजीने एक स्थान पर लिखा है --"नहि ज्ञानेन सादृशं पवित्रमिह विद्यते" अर्थात् ज्ञान के समान मनुष्य का विमल हितैषी अन्य कोई नहीं है। इससे और इसके समकक्ष जो अनेक उपदेश वाक्य खण्ड हमारे आर्षग्रन्थों में पाये जाते हैं उनसे हमारे पूर्वजों का विद्याप्रवण तथा ज्ञानतत्वपारीण होना पूर्ण रूप से प्रमाणित किया जा सकता है। उन्नत देशों के सच्चे इतिहास ने इस बात को अब सिद्धांतकोटि में पहुँचा दिया है कि जिस देश और जिस राष्ट्र में जब तक विद्या की उपासना तथा ज्ञानार्जन की स्पृहा उत्तरोत्तर होती जाती है। और ज्योंही किसी देश और राष्ट्र के लोग अपनी वर्तमान अवस्था से संतुष्ट हो विद्या की आराधना तथा ज्ञानप्राप्ति की उत्कंठा से विरक्त एवं उदासीन हो जाते हैं त्योंही उस देश वा जाति के अधःपात का सूत्रपात हो जाता है। यही बात भारत की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवनति के विषय में भी चरितार्थ हो सकती है। अर्थात् जब तक इस देश के लोग विद्या की उपासना तथा ज्ञान के अनुसन्धान में लगे रहे तब तक यह देश सब प्रकार से उन्नत रहा किन्तु जब से विद्या और ज्ञान की चर्चा का हवस होकर यहाँ के लोग विषय प्रवण तथा अकर्मण्य होने लगे तब से धीरे-धीरे यह देश और देश के लोग उसी दुर्दशा को पहुँच गये जिसे विवेक भ्रष्ट लोग प्रायः प्राप्त हुआ करते हैं। अस्तु,

जब से इस देश का अधःपात प्रारम्भ हुआ है तब से इस देश में कई जाति के लोग शासक रूप से आये, पर वह विद्या तथा ज्ञान के तादृश उपासक न होने के कारण थोड़े ही दिनों में यहाँ से चलते-फिरते देख पड़े। सारांश, हमारे पूर्वजों के पश्चात् विद्या तथा ज्ञान की महिमा को भली-भाँति जानने वाली यदि किसी जाति के लोगों ने इस पुराने भारत में शासक-रूप से पदार्पण किया है तो वह एकमात्र अंग्रेज-जाति के हमारे वर्तमान शासकों ने ही। ऐहिक सुख-शान्ति को उत्पन्न कर उसकी निरन्तर वृद्धि करने वाली विद्या तथा ज्ञान का मध्यप्रदेश में प्रचार करने के लिए हमारी गवर्नमण्ट ने कोई बात उठा नहीं रखी है।

सन् 1861 में जब से इस मध्यप्रदेश का संगठन किया गया है तब से उनका इस दिशा में एक सा उद्योग चला जाता है। उनके इस सराहने योग्य उद्योग का ही मीठा फल है कि आज दिन मध्यप्रदेश में स्थूल अनुमान से निम्नलिखित कालेज और हाईस्कूल पाये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) नागपुर—(अ) हिसलाप कालेज (आ) मारिस कालेज
(2) भण्डारा—हिंगनघाट हाईस्कूल
(3) सागर—हाईस्कूल

इन कालेज, हाईस्कूल और नार्मल स्कूलों के सिवा अंग्रेजी के 174 और हिन्दी के 124 मिडिल स्कूल हैं जो हर जिले के हर तहसील के प्रधान-प्रधान स्थानों में पाये जाते हैं। इस प्रदेश में हिन्दी के प्राथमिक स्कूलों की संख्या अनुमान 1761 के लगभग है।

मध्यप्रदेश के नागपुर, वर्धा, चांदा, भण्डारा और छिंदवाड़ा जिले की सौंसर तहसील में मराठी भाषा प्रधानतया बोली जाती है, शेष सब जिलों में हिन्दी प्रधानतया बोली जाती है।

मध्यप्रदेश के सरकारी कार्यालयों में सन् 1890 के पूर्व कहीं-कहीं उर्दू और मोड़ी लिपि का प्रचार था किन्तु हर्ष का विषय है कि अब समूचे मध्यप्रदेश के सरकारी कार्यालयों में उनके स्थान पर भी देवनागरी अक्षरों का प्रचार कर दिया गया है। मध्यप्रदेश के महाराष्ट्र के लोग देवनागरी अक्षरों को 'बालबोध' कहा करते हैं। मध्यप्रदेश के सरकार की कृपा तथा प्रेरणा से मध्यप्रदेश में जो-जो कालेज, हाईस्कूल आदि विद्याभवन स्थापित किये गए हैं उनमें शिक्षा प्राप्त किए गये लोगों में हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की संख्या जिस प्रकार पाई जाती है उसका आगे बहुत ही संक्षिप्त रीति से उल्लेख किया जाता है। मध्यप्रदेश के सरकारी दफ्तरों में इस समय डिप्टी कमिश्नर, डिस्ट्रिक्ट जज, सेशन्सजज, मुँसिफ, एकस्ट्रा असिस्टेन्ट, कमिश्नर तहसीलदार, नायब तहसीलदार, सुपरिन्टेण्डेण्ट लैण्ड रेकार्ड, बन्दोबस्त विभाग, पुलिस विभाग, इन्जीनियरिंग विभाग, विद्या विभाग इत्यादि के पदों पर जो हिन्दुस्थानी लोग नियुक्त हैं, उनकी संख्या स्थूल प्रमाण पर अनुमान 623 के लगभग है। इन 623 हिन्दुस्थानी सज्जनों में हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की संख्या केवल 188 है। इन 188 भाषा-भाषी लोगों में ग्रेज्यूएटों की संख्या केवल 43 वा प्रतिशत पीछे 7 है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश में इस समय वकीलों की संख्या 250 के लगभग है। मध्यप्रदेश में इस समय लगभग 45 बैरिस्टर हैं। इनमें जिनकी जन्म-भाषा हिन्दी है उनकी संख्या केवल पाँच है।

उक्त संख्याओं पर टुक विचार करने से यह बात बहुत ही शीघ्र और थोड़े ही प्रयास से विदित हो सकती है कि जब से इस प्रदेश में हमारे वर्तमान विद्याप्रिय प्रभु अंग्रेजों ने इस प्रदेश के लोगों में शिक्षा का प्रचार करने के अभिप्राण से पाठशालाएं और शिक्षा भवन आदि खोले हैं तब से उनके वहुत परिश्रम करने और प्रशंसनीय उत्साह देने पर भी जिन लोगों की संख्या इस प्रदेश में आधे से अधिक अर्थात् प्रतिशत पीछे 57 है उन हिन्दी-भाषा भाषी लोगों में विद्या का प्रचार बहुत ही कम हुआ है। इसका कारण यही है कि इस समूह के लोगों का अधिकांश भाग विद्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ज्ञान के पवित्र तथा श्रेयस्कर परिणामों से विमुख एवं अनभिज्ञ है। जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। उन लोगों में जो हिन्दी के कृपापात्र हैं वे लोग मध्यप्रदेश की सरकार के साथ विद्या वृद्धयर्थ सहानुभूति प्रकाशित कर 'लोकसंग्रह का' अनुकरण करते तो आज दिन हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की मातृ वा जन्म हिन्दी भाषा की मध्यप्रदेश में आशातीत उन्नति हो गई होती। जिस समय आपको वे श्लाध्यउपाय विदित होंगे जिन्हें मध्यप्रदेश की सरकार ने यहाँ की हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों में विद्या प्रचारार्थ प्रयोग किये हैं। उस समय केवल आप ही नहीं किन्तु आपके शरीर का प्रत्येक रोमकूप मध्यप्रदेश की सरकार की एतदर्थ मुक्त कंठ से प्रशंसा करेगा। आरंभिक शिक्षा प्रचार के लिए पुस्तकें लिखने को जब कोई हिन्दी भाषा-भाषी सज्जन मध्यप्रदेश में नहीं मिला तब यहाँ की सरकार ने युक्त प्रान्त निवासी सज्जनों से, अक्षरावली, विद्यांकुर जीविका परिपाटी, भोजप्रबन्धसार और सभाविलास आदि पुस्तकें लिखवाकर उन्हें इस प्रदेश की प्रारम्भिक पाठशालाओं में प्रचलित किया। इन पुस्तकों के पश्चात् पण्डित गणपतिराव गोखले और राय-बहादुर मुन्शी डोरीलाल साहब द्वारा लिखी हुई पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकें प्रचलित की गईं। श्रीमान मुन्शी डोरीलाल साहब ने अपनी जन्म भाषा हिन्दी की जो सेवा की उसके पुण्य प्रताप से वह बहुत ऊँचे पद पर पहुँच गये। उच्च पद पर पहुँचने के पश्चात् भी यदि आप चाहते तो अपनी मातृभाषा हिन्दी की और भी समयानुकूल सेवा कर सकते। पर उच्च पद पर स्थित कार्य-भार की गुरुता के कारण आपको वैसा करने का अवकाश नहीं मिल सका। आपके पश्चात् भी मध्यप्रदेश की सरकार को हिन्दी में ग्रन्थ लिखने के लिए हिन्दी भाषा-भाषी सज्जन जब मध्यप्रदेश में नहीं मिल सके तो उसने अन्य भाषा-भाषी निम्न-लिखित सज्जनों से निम्नलिखित पाठ्यपुस्तकें हिन्दी में लिखवाकर हिन्दी को उन्नत करने का स्तुत्य एवं प्रशंसनीय कार्य किया।

अनुक्रम	पुस्तक का नाम	ग्रन्थकार का नाम	ग्रन्थकर्ता की जन्म भाषा
1.	हिन्दी की पहली पुस्तक	पण्डित विनायक राव	मराठी
2.	हिन्दी की दूसरी पुस्तक	सुपरिन्टेंडेंट मेलनार्मल स्कूल	मराठी

मध्यप्रदेश की प्रारम्भिक पाठशालाओं में इस समय हिन्दी की जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनकी उक्त सूची की ओर योंही दृकपात करने से जाना जा सकता है कि उनके लेखक हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन नहीं हैं। उनकी मातृभाषा हिन्दी न होने पर भी उक्त सज्जनों ने इस प्रदेश की सरकार की प्रेरणा से हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें लिखने की कृपा की एतदर्थ हिन्दी का शिक्षित समाज उक्त सज्जनों का 'नैरंतर्ण' कृतज्ञ बना रहेगा।

उक्त पुस्तकों में से तीसरी पुस्तक का संशोधन हिन्दी-भाषा-भाषी श्रीयुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित कन्हैयालालजी गुरु एम० ए० हेडमास्टर हाईस्कूल सागर ने किया था। पाँचवीं पुस्तक का संशोधन नहीं किया गया। उसे जिस प्रकार मुन्शी मुहम्मद खाँ साहब ने संकलित किया उसी प्रकार वह आज तक कई बार छापी गई है। इन पुस्तकों की भाषा प्रणाली यद्यपि सहसा दोषमुक्त नहीं है तथापि जब हम इस बात का विचार करते हैं कि ये पुस्तकें उस समय लिखी गई थीं जिस समय हिन्दी भाषा-भाषी कोई ऐसा विद्वान इस प्रदेश की सरकार के पास नहीं था जिससे वह हिन्दी में इन पुस्तकों को लिखाती जब हम बात का विचार करते हैं कि ये पुस्तकें उन सज्जनों द्वारा लिखी गईं जिनकी जन्म-भाषा हिन्दी नहीं है। तब हमारा चित्त इन पुस्तकों की भाषा-प्रणाली के अल्प दोषों को भूल इन पुस्तकों के हिन्दी में संकलनार्थ इनकी बार-बार प्रशंसा करने के लिए ही उत्कंठित हो जाता है।

उक्त पुस्तकों के सिवा मध्यप्रदेश की प्रारम्भिक हिन्दी-पाठशालाओं में हिन्दी व्याकरण, अंकगणित, बीजगणित और पदार्थ-विज्ञान आदि की जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, वे भी हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों की लिखी हुई नहीं हैं। गणित की पुस्तक एक बंगाली सज्जन की लिखी हुई है। 'प्रिन्सिपल्स आफ बाटनी' और 'केमेस्ट्री प्रायमर' एक दक्षिणी सज्जन की लिखी हुई है।

जिस समय इस प्रदेश की प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए हिन्दी पुस्तकें लिखने के लिए इस प्रदेश की सरकार को हिन्दी-भाषा-भाषी कोई विद्वान नहीं मिलते थे उस समय हमारी विद्या तत्व-पारीण अंग्रेज सरकार ने अन्य भाषा-भाषी विद्तजनों से हिन्दी की उक्त पाठ्यपुस्तकें लिखवाईं। यह उसने बहुत ही उचित और समयानुमोदित कार्य किया। किन्तु आज दिन वह बात नहीं है। आज दिन तो ईश्वर की अगाध कृपा तथा विद्याप्रिय अंग्रेज सरकार के प्रसाद से समूचे मध्य-प्रदेश में हिन्दी भाषा-भाषी लोगों में लिखे-पढ़े लोगों की संख्या एवं निम्नस्थ लेखानुसार पाई जाती है।

मध्यप्रदेश में हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की जनसख्या	—	6782200 है
हिन्दी पढ़े-लिखे लोगों की जनसंख्या	—	198342 है
अंग्रेजी ,, ,,	—	24094 है।

जिस समय उक्त अंकों पर हम विचार करते हैं, जिस समय हम अपने वंग-भाषा-भाषी तथा महाराष्ट्र भाषा-भाषी भाइयों आदि को हिन्दी की निसर्गजात सरलता और सुबोधता पर मुग्ध हो, उसे भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए निर्व्याज भाव से प्रयत्न और परिश्रम करते देखते हैं। और जिस समय हम देखते हैं कि आज दिन मध्यप्रदेश के राजकीय कार्यालयों के उच्च पदों पर काम करने वाले हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की संख्या उक्त अंकों तक पहुँच चुकी है। और तब भी हिंदी की उन्नति करने वाली इस प्रदेश की गुणग्राहिणी एवं गुणज्ञ सरकार की हिंदी में पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिए उन सज्जनों में से कोई सहायक नहीं मिल सकता, उस समय लज्जा से हमारा मुख अवनत हो जाता है। इस प्रदेश की सरकार की हिंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रचारार्थ हिन्दी भाषा में ग्रन्थ लिखने वाले हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान आज दिन भी नहीं मिल सकते। इसका कारण यह नहीं है कि यहाँ हिन्दी भाषा-भाषी वर्तमान विद्वजनों में ग्रन्थ प्रणयन-पटु लोगों का अभाव है। नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है। इस प्रदेश के हिंदी भाषा-भाषी बैरिस्टर गौर बंधुओं ने अंगरेजी भाषा में कानून की कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें इतनी योग्यता के साथ लिखी हैं कि उन्हें देख यूरोप तथा भारत के बड़े-बड़े नामोग्रामी पण्डितग्रगण्य लोगों को उक्त गौर बंधुओं की तदर्थ मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है। इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि उक्त गौर बंधुओं ने अंगरेजी में जिन वृहत्काय ग्रन्थों को लिख मनोभिलषित धन कमाया है उतना तो क्या उसका न्यूनातिन्यूनांश धन भी, यदि वह हिन्दी की भलाई की प्रेरणा से प्रेरित होकर हिन्दी में ऐसे उपयोगी ग्रन्थ लिखते तो, उन्हें नहीं मिल सकता।

हाँ, अपनी मातृभाषा हिंदी की सेवा करने का अक्षय पुण्य उन्हें अवश्य मिलता। अपनी जन्मभाषा को उन्नत करने के लिए जो विद्वज्जन असक्ततापूर्वक उसकी सेवा करते हैं। उन्हें राष्ट्र के इतिहास में जो पद प्राप्त होता है उसकी, इन सज्जनों की हम जैसे अल्पज्ञ द्वारा सूचना देना छोटे मुँह बड़ी बात कहने के साहस को प्रदर्शित कर, सहस्र रश्मि भगवान् भास्कर को खद्योत द्वारा दीप प्रदर्शन वाली कहावत को चरितार्थ करना है तथापि प्रसंगवशात् जिन थोड़ी सी बातों को हम आगे लिखते हैं। उन्हें मध्यप्रदेश निवासी हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जन उपदेशदायक नहीं, किन्तु स्मृतिदायक मानकर हमारे इस साहस को हमारी इस ढिठाई को क्षमा करेंगे। इस बीसवीं शताब्दी में मनुष्य मात्र की सुख समृद्धि के लिए संसार के जिन आदरणीय तथा अनुकरणीय विद्वज्जनों ने उद्योग और परिश्रम किये हैं उन सबकी सम्मतियों को एकत्रित कर देखा जाए तो उन सबसे यही बात सिद्धान्त कोटि को पहुँची हुई पाई जायेगी कि संसार के यावत् सुधार एकमात्र जन्मभाषा की उन्नति पर अवलम्बित रहा करते हैं। अनेक राष्ट्रों की जन्मभाषाओं के इतिहासों को देखने से जाना जाता है कि अभी थोड़े दिनों पूर्व उनकी जन्म भाषाओं में उन्हें उन्नत करने वाली सामग्री नाम मात्र को भी नहीं थी। पर इस समय उन भाषाओं के सपूत विद्वानों के अवतरित तथा निःस्वार्थ परिश्रम के कारण वे भाषाएँ आशातीत उन्नत अवस्था में पाई जाती हैं अर्थात् इस समय उनका साहित्य परिपूर्ण अवस्था को पहुँच रहा है। यहाँ पर यह प्रश्न किसी प्रकार के आपत्ति के बिना पूछा जा सकता है कि जिन विद्वज्जनों ने अपनी मातृभाषा की उन्नति की है वे यदि अपनी मातृभाषा की सरस्वती और मर्यादा जैसी मासिक पुस्तकों को अपने छोटे-छोटे बच्चों को चित्र दिखलाने के अभिप्राय से ही खरीदा करते, अपनी जन्मभाषा के साप्ताहिक पत्रों को, "इनमें कुछ नहीं रहा करता" ऐसा कहकर उनके ग्राहक न बनते अथवा ग्राहक बन जाते तो उन पत्रों के आने पर उन्हें बन्धन मुक्त करने तक की दया न करते, मातृभाषा में लिखी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों को मोल लेकर तो कभी पढ़ते नहीं, किन्तु कोई मित्र मातृभाषा की किसी पुस्तक को उनके अवलोकनार्थ उन्हें समर्पित करता तो आपाततः सारहीन मानकर वा समय का थोथा अभाव बताकर उसे नहीं पढ़ते, उदर पूर्ति के लिए जिन्हें जो व्यवसाय करने पड़ते हैं वे हाथ धोकर उन्हीं के पीछे पड़े रहते, अन्याय भाषाओं से उत्तमोत्तम ग्रन्थों को अपनी जन्मभाषा में अनुवादित कर और अपनी जन्मभाषा में सर्वसाधारण में विद्या तथा विज्ञान का अधिकता के साथ प्रचार करने के अभिप्राय से उत्तमोत्तम ग्रन्थ न लिखते तो भला कहिए तो सही उनकी जन्म भाषा को आज दिन संसार में जो उच्चातिउच्च गौरवान्ति पद प्राप्त हो रहा है वह कब और क्यूँ मिलने वाला था ? इसके उत्तर में प्रत्येक विवेकी पुरुष निस्संकोच होकर यही कहेगा कि ऊपर जिन साधनों का उल्लेख किया गया है उनका आश्रय लेकर कार्य न किया जाता किन्तु केवल दस पाँच मनुष्य अपने कामकाज से अवकाश पाने पर थोड़ी देर के लिए मन बहलाने के अभिप्राय से बैठकर यों ही बातें-चीतें किया करते तो उनकी मातृभाषा की वर्तमान श्लाध्य उन्नति किसी प्रकार और कदापि नहीं हो सकती।

किसी भाषा की उन्नति का पता उसमें प्रकाशित की गई पुस्तकों की संख्या तथा उनके विषय के महत्व से जाना जा सकता है। पिछले पाँच वर्षों में मध्यप्रदेश में हिन्दी की पुस्तके जिस प्रकार प्रकाशित की गयी हैं उसका लेखा अगले पृष्ठ 164 दो कोष्ठकों में पर प्रदर्शित किया गया है।

पहले कोष्ठक से यह ज्ञात होता है कि गत पाँच वर्षों में हिन्दी की केवल 164 पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। कहना नहीं होगा कि मध्यप्रदेश की हिन्दी भाषा-भाषी 6782200 जनसंख्या में विद्या का प्रचार करने के लिए पाँच वर्षों में छापी हुई ये 164 पुस्तकें सिन्धु सुधार करने के लिए विन्दुवत् ही हैं। हम चाहते थे कि यह बात भी आपको विदित करा दें कि इन 164 पुस्तकों में से कितनी इस प्रदेश की हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनों की लिखी हुई हैं और कितनी अन्य भाषा-भाषी सज्जनों द्वारा लिखी हुई हैं। साथ ही हम आप लोगों पर यह भी प्रकट कर देना चाहते थे कि इन 164 पुस्तकों में से किस विषय पर कितनी पुस्तकें हिन्दी में लिखी गयी हैं। पर खेद का विषय है कि ऐसा करने के लिए हमें आवश्यक सामग्री यहाँ नहीं मिल सकी। वह सामग्री नहीं मिल सकी तो भी दूसरे कोष्ठक से यह बात भली-भाँति ज्ञात हो सकती है कि सर्वसाधारण को आत्मचरित्र संगठन में सहायता पहुँचाने वाले आदर्श पुरुष के जीवन-चरित, सर्वसाधारण को वस्तु स्थिति का बोध करने वाले इतिहास ग्रन्थ, सर्वसाधारण के ज्ञान को प्रौढ़ करनेवाले साहित्यिक ग्रन्थ तथा सर्वसाधारण में ललित कला, कृषि वाणिज्य आदि का प्रचुर प्रचार करने वाले पदार्थ विज्ञान तथा रासायनिक विषयों पर ग्रन्थ लिखने के लिए इस प्रदेशवासी हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जनों को यह बात पूर्णतया स्मरण रखनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. मध्यप्रदेश की प्रधान-प्रधान भाषाओं में प्रकाशित की हुई पुस्तकों का लेखा

सन्	हिन्दी	हिन्दी मराठी	हिन्दी अंग्रेजी	मराठी	उर्दू	अंगरेजी	संस्कृत	संस्कृत हिन्दी	तामिल	मारवाड़ी	गुजराती	अन्य भाषा	योग
1905-6	26	—	—	25	—	—	—	—	—	—	—	—	51
1906-7	27	—	—	17	—	5	3	—	—	—	—	—	52
1907-8	17	—	—	39	—	1	7	—	—	1	—	—	65
1908-9	53	—	—	42	—	15	2	6	1	—	1	—	122
1909-10	41	1	—	42	7	13	6	1	—	1	1	—	115

2. उक्त पुस्तकों के विषयों का ज्ञापक कोष्ठक

सन्	काव्य	धार्मिक	नाटक	पोलीटिकल	दार्शनिक	साहित्य	इतिहास	भूगोल	शास्त्र मानस	विज्ञान शास्त्र	कानून	वैद्यक	अंक गणित और यन्त्र	अन्य	योग
1905-6	12	2	3	—	—	5	1	5	1	1	—	—	—	21	51
1906-7	—	12	3	—	—	—	1	2	—	—	2	1	1	30	52
1907-8	20	9	—	2	—	—	1	3	—	—	3	1	2	24	65
1908-9	10	41	1	1	4	—	1	3	—	—	2	—	—	59	122
1909-10	12	35	4	—	—	—	—	11	—	—	3	—	—	50	115

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए कि जब तक वे लोग उक्त जैसे उपयोगी तथा आवश्यक विषयों पर हिन्दी में ग्रन्थ लिखकर उनका अधिकता के साथ प्रचार नहीं करेगे तब तक उनके 6782200 देशवासियों की उन्नति होने में 'वा न वा' ही बनी रहेगी। अतः मध्यप्रदेश के सब हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जन का यह परम पवित्र कर्तव्य एवं धर्म है कि वे लोग अपने वर्तमान 6782200 देशवासियों की भलाई के लिए हिन्दी भाषा में उपयोगी तथा आवश्यक ग्रन्थों को लिखने का प्रयत्न करें।

इस समय हिन्दी में जो पुस्तकें छापी जाती हैं उनकी भाषा प्रणाली के विषय में यहाँ थोड़ा-सा उल्लेख कर देना हम समझते हैं अनावश्यक नहीं माना जायेगा। जिस प्रकार युक्तप्रान्त के लोग हिन्दी की किसी नूतन पुस्तक में संस्कृत के अधिक शब्दों का प्रयोग देखकर डर जाते हैं और घबड़ा कर कहने लगते हैं कि इसकी भाषा बड़ी कठिन है, इसमें हठात् प्रचलित सरल शब्दों के स्थान पर संस्कृत के क्लिष्ट, जटिल और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। ठीक उसी प्रकार इस प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जन भी कहा करते हैं। वे लोग इतना ही कहकर नहीं रह जाते किन्तु साथ ही उस पुस्तक पर दृष्टिपात करना बन्द कर देते हैं। ऐसा कहने वाले सज्जनों की सेवा में हम आगे लिखी हुई दो-एक बातों की प्रार्थना करते हैं। भरोसा है कि हमारे विनम्र निवेदन पर आप लोग धीरज के साथ भावपूर्वक मनन करने की कृपा करेंगे।

कोई भाषा उन्नत तभी मानी जाती है जब उसके ग्रन्थ समुदाय में भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेकानेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ पाये जाते हैं। ये ग्रन्थ उस भाषा में तभी पाये जाते हैं जब उसके कृतविद्य लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं से उत्तमोत्तम सामग्री एकत्रित कर उसके कोष की पूर्ति करते हैं। अन्य भाषा के भावों को अपनी भाषा में व्यक्त करने के लिए कई तद्भावव्यंजक शब्द ग्रन्थकारो को अन्य भाषाओं से लेकर अपनी भाषा में प्रचलित करने पड़ते हैं। शास्त्रीय तथा दार्शनिक ग्रन्थों को लिखने में इस बात की विशेष आवश्यकता उपस्थित हुआ करती है। ऐसी अवस्था में हिन्दी भाषा-भाषी लोगों का यह प्रथम कर्तव्य है कि जब उन्हें हिन्दी भाषा में किसी भाव को व्यक्त करने वाला शब्द न मिले तब प्रथम वे लोग भारत की विश्व समादृत तथा अनेक भाषाओं की जन्मदात्री संस्कृत भाषा उनके मनोभिलाषित कार्य को पूर्ण न कर सके तब वे भारत के बाहर की भाषा से भी अपने अभिप्रेतार्थ को सिद्ध करने के लिए सहायता ले सकते हैं। इस समय हिन्दी भाषा के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले विद्वान दो दलों में विभक्त हुए पाये जाते हैं। एक दल के विद्वानों की सम्मति है कि आधुनिक हिन्दी भाषा में अन्य भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं उनके स्थान में संस्कृत के शब्द लेकर प्रचलित नहीं करना चाहिए क्योंकि उन्हें समझने में बहुतेरे पाठकों को बहुत असुविधा का सामना करना पड़ता है। इतना ही नहीं किन्तु कई पाठकगण संस्कृत के अधिक शब्दों को न जानने के कारण पुस्तक पढ़ना ही छोड़ देते हैं। जब लोग पुस्तक ही नहीं पढ़ते तब उस पुस्तक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने से किस प्रकार के लाभ की संभावना की जा सकती है। दूसरे दल के विद्वानों का कथन है और वह भी बहुत ठीक कि हिन्दी भाषा के उन्नायकों का यह प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है कि वे लोग हिन्दी भाषा में अन्य भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं उनके स्थानों में भी संस्कृत के शब्द लेकर प्रचलित करें ऐसा करने से कुछ काल में हिन्दी भाषा का निज का शब्द कोष भी बढ़ जायेगा और अन्य भाषा-भाषी लोगों को प्रसंग पड़ने पर यह कहने का अवकाश नहीं मिलेगा कि हिन्दी में अमुक भाव व्यक्त करने के लिए उसका निज का कोई शब्द ही नहीं है। दूसरा इसका कथन हिन्दी के हितार्थ बहुत समर्थक और सारगर्भित जान पड़ता है। दूसरे दल के कथनानुसार आदि से ही कार्य आरम्भ कर दिया होता तो जिन विदेशी शब्दों को बहुत दिनों से प्रचलित होने के कारण प्रथम दल के थोड़े से लोग हटना नहीं चाहते, उनके स्थान में उसी प्रकार प्रचलित संस्कृत से लिए हुए हिन्दी के निज के शब्द पाये जाते। और जो लोग आज दिन इन शब्दों को संस्कृत के कठिन शब्द कहकर इनसे डरते हैं और इनके कारण हिन्दी के ग्रन्थों का पठन-पाठन छोड़ देते हैं उन्हें आज इन शब्दों से भयभीत होने की तादृश संभावना ही नहीं रहती। दूसरे दल के लोगों का कथन निःसन्देह बहुत उपयुक्त सयौक्तिक है। अन्य भाषा-विशारद जन भी दूसरे दल के इस कथन का समर्थन करते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप में हम निम्नलिखित प्रसंग को श्रीयुत् बाबू कौड़ीमलजी मालू लिखित 'हिन्दी की वर्तमान दशा और उसकी समुन्नति का उपाय' शीर्षक लेख से उद्धृत करते हैं।

'मखजन' उर्दू भाषा का एक विशाल मासिक पत्र है जो लाहौर से प्रकाशित होता है। इसके मई सन् 1910 के अंक में 'तालीम संस्कृत की जरूरत' शीर्षक लेख जो एक मुसलमान सज्जन की सुयोग्य लेखनी और उदार हृदय का परिचय देता है, पढ़ने योग्य है। उस बड़े लेख में मौलवी महमूद अली साहब, प्रोफेसर रणधीर कालेज लिखते हैं :

संस्कृत भी ऐसी ही वसीअ, ज़बान है। इसलिए अगर इसको जानने वाले बहुत हो जाँय तो रोजमर्राह के कारोबार में इन लोगों की जबान से जरूर संस्कृत अल्फाज़ निकला करेंगे और होते-होते मुर्राब्बज ज़बान का जुज़ बन जायेंगे और इसलिए संस्कृत की इशाअत का एक बड़ा फायदा यह होगा कि हमारी मुल्की ज़बान बसीअ हो जायगी और इख्तसार के साथ बहुत से उम्दा मतालिब अदा कर सकेंगे।

उक्त अवतरण पर टीका-टिप्पणी करते हुए बाबू कौड़ीमलजी ने निम्नलिखित बातें बहुत ही उचित लिखी हैं 'एक मुसलमान बन्धु के कलम से ऐसी सुमति देखकर उन हिन्दुओं को लज्जित होना चाहिए जो हिन्दी में संस्कृत का शब्द बाहुल्य देखकर खिन्न होते हैं जिस संस्कृत का विदेशी अथवा विधर्मीय विद्वान जिनका संस्कृत के साथ कोई धार्मिक सम्बन्ध नहीं, इतना आदर करें। उस देववाणी पर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हमारी धार्मिक विद्या है, हम लोगों का अश्रद्ध रहना हमारा मौर्ख्य एवं दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? चाहे जितनी सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्य-सम्बन्धिनी सभाएँ रची जाएँ, किन्तु हिन्दू समाज की वास्तविक उन्नति, बिना संस्कृत प्रचार के नितान्त दुःसाध्य है ।" मौलवी महमूद अली साहब की उक्त सम्मति मालूजी द्वारा गत वर्ष आप लोगों की सेवा में उपस्थित कर दी गयी थी उस पर आप लोगों ने पूर्णतया अब तक विचार कर लिया होगा । सम्भव है, आप में से बहुतेरे सज्जन उक्त प्रोफेसर मौलवी साहब की उक्त सम्मति के समर्थक, पोषक और पक्षपाती होंगे । हिन्दी के उन्नायक सज्जनों की सेवा में हमारी सादर यही प्रार्थना है कि वे लोग दूसरे दल की सम्मति के अनुसार संस्कृत से आवश्यक शब्दों को लेकर उनका हिन्दी में निर्भयतापूर्वक प्रचार करें । इसका परिणाम ठीक वही होगा जो उक्त मौलवी साहब ने अपने लेख में व्यक्त किया है । इसके उदाहरणस्वरूप हम नीचे दो बातों का और उल्लेख करते हैं । प्रथम बात यह है कि सन् 1877 में गोलोकवासी श्रीयुत् भारतेन्दुबाबू हरिश्चन्द्रजी श्रीमती महारानी विक्टोरिया के लिए 'राज राजेश्वरी' शब्द का प्रयोग प्रचलित नहीं कर देते तो आज दिन उसे विद्वानों के सिवा अन्य लोग क्वचित् ही जानते । तब से प्रचलित किये हुए इस शब्द का प्रचार उक्त मौलवी साहब के कथनानुसार इतना अधिक हो गया है कि अब तक तो ग्राम्य पाठशालाओं के छोटे-छोटे बच्चे तक इस शब्द को जानते हैं, और समयानुसार इसका उच्चारण बड़े प्रेम से करते हैं । दूसरी बात यह है कि थोड़े से ग्राहकों के सरस्वती से सम्बन्ध छोड़ देने के भय से संस्कृत के अविरल भक्त सगुण विख्यात पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी अपनी लेख प्रणाली में आवश्यक के स्थान पर 'दरकार' और बस वा अलम् के स्थान पर 'काफी' का प्रयोग आरम्भ न कर देते तो आजतक द्विवेदीजी के पाठकों को उक्त दोनों शब्द उक्त मौलवी साहब के कथनानुसार भली-भाँति विदित हो जाते और अब कोई उनके विषय में आपत्ति भी न करता । इस समय सम्भव है कोई अन्य भाषा-भाषी द्विवेदीजी के पाठकों से यह बात साभिमान कहे कि तुम्हारी हिन्दी में क्या धरा है । उसमें 'दरकार' और 'काफी' शब्दों के भाव द्योतक शब्द ही नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्विवेदीजी के पाठकों को मौनावलम्बन के अतिरिक्त उपायान्तर ही नहीं दीख पड़ेगा । यहाँ लों जो कुछ निवेदन किया गया है उससे यह बात स्पष्टतया जानी जा सकती है कि जो लोग हिन्दी भाषा को सुसम्पन्न तथा सुसमृद्ध बनाना चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे लोग थोड़े से अनभिज्ञ पाठकों के अनुचित दबाव के नीचे अपने को न दब जाने दें । किन्तु दृढ़ता के साथ अपने व्रत के व्रती बने रहें । ऐसा करने से अर्थात् संस्कृत से शब्द लेकर हिन्दी की कोषवृद्धि करते रहने से धीरे-धीरे उनका अभिप्रेतार्थ अवश्यमेव सिद्ध और सफल हो जायेगा ।

भाषा की उन्नति का पता उन मुद्रणालयों से भी लग सकता है जो किसी भाषा की सेवा कर उसकी उन्नति में तत्पर रहा करते हैं । इस समय मध्यप्रदेश में जहाँ-जहाँ जो-जो मुद्रणालय हिन्दी की सेवा किया करते हैं, उनका किंचित् परिचय अधोलिखित कोष्ठक में दिया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश के मुख्य-मुख्य मुद्रणालयों की सूची

अनु० क्र० संख्या	मुद्रणालय का नाम	मुद्रणालय का स्थान	मुद्रणालय के स्वामी का नाम	मुद्रणालय में जो काम प्रायः किये जाते हैं।	विशेष विवरण
1.	क्यूम प्रेस	रायपुर	मुल्ला शमसुद्दीन साहब	इसमें बहुधा सरकारी कार्यालयों के फार्म और निमन्त्रण पत्र आदि छापे जाते हैं।	
2.	करीमी प्रेस	,,	मुन्शी अब्दुल करीम साहब	,, ,,	इससे एक सप्ताहिक पत्र हिन्दी में निकाला गया था।
3.	बलरामदास प्रेस	राजानन्द गाँव	एक कम्पनी	,, ,,	
4.	सेंट्रल ला प्रेस	छिन्दवाड़ा	रायसाहब मुन्शी मथुराप्रसाद वकील	अंग्रेजी कानूनी पुस्तकों का देवनागरी में हिन्दी अनुवाद छापा जाता है।	
5.	सरस्वती विलास प्रेस	नरसिंहपुर	श्रीयुत नन्हेलाल मुरलीधरजी	सरकारी कार्यालयों के फार्म छापे जाते हैं।	इसमें हिन्दी की छोटी-मोटी पुस्तकें छापी जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा नागपुर और जबलपुर में भी कई बड़े-बड़े छापेखाने हैं इस कोष्ठक की ओर यों ही दृक्पात करने से जाना जा सकता है कि इस समय मध्यप्रदेश में जितने मुद्रणालय हैं उनमें प्रायः सरकारी कार्यालयों के फार्म, रिपोर्ट और हिन्दी की छोटी मोटी पुस्तकें छापी जाती हैं। बम्बई के श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय और लखनऊ के नवलकिशोर छापेखाने के सदृश यहाँ के एक भी मुद्रणालय में हिन्दी की बड़ी-बड़ी उपयोगी पुस्तकें नहीं छापी जातीं। छापी कहाँ से जायँ? इस प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वधुरीण हिन्दी में वैसी पुस्तकें लिखते ही नहीं तो वापुरे मुद्रणालय के स्वामी उन्हें कहाँ से लाकर छापें, पाश्चात्य देशों के छापेखाने वाले, विद्वानों को धन देकर उनसे ग्रन्थ लिखवाते हैं उन्हें अपने व्यय से छापकर प्रकाशित करते हैं। इन सब बातों का यहाँ प्रचार करने के लिए अभी कुछ देरी है। ज्यों-ज्यों हिन्दी की उन्नति होती जायेगी त्यों-त्यों इन बातों का प्रचार मध्य-प्रदेश में भी होता जायेगा।

आज दिन इस बात को बलिष्ठ प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दिखलाने की विशेष आवश्यकता नहीं रही है कि किसी भाषा की उन्नति का उसके सामयिक पत्रों और पत्रिकाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा करता है। मध्यप्रदेश के 6782200 हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की मातृ-भाषा हिन्दी की उन्नति करने के लिए इस प्रान्त में इस समय जो हिन्दी के पत्र पाये जाते हैं, उनका उल्लेख आगे पृष्ठ 170 पर कोष्ठक-1 में किया गया है।

दूसरा पत्र बालाघाट-समाचार है। बालघाट के वर्तमान डिपुटीकमिश्नर श्रीमान् डेवर साहब बहादुर की असीम कृपा और वहाँ के कतिपय अन्यान्य उच्च पदस्थित कर्मचारियों के उद्योग से एक मण्डली संगठित की गयी है। उसी मण्डली द्वारा यह पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रदेश के और जिलों में भी ऐसी मण्डलियाँ संगठित कर हिन्दी की उन्नति का उपाय किया जाय तो बहुत अच्छा हो।

प्राचीन समय से यह प्रदेश गोंडवाना कहा जाता है। उस समय हिन्दी भाषा के साहित्य को उन्नत करने की यद्यपि आज की सी सुविधा अनुकूल नहीं थी तथापि उस समय के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जन हिन्दी भाषा की सेवा से एकदम विमुख और उदासीन नहीं थे। उस समय के विद्वान लोग जिस प्रकार के ग्रन्थों से सर्वसाधारण की भलाई समझते थे उस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में उन लोगों ने परिश्रम किया था। उस समय के लोगों ने हिन्दी भाषा में जो-जो ग्रन्थ लिखे थे उनका उल्लेख हम, जहाँ तक हमें ज्ञात हो सका है, आगे पृष्ठ 171 पर करते हैं। इन ग्रन्थ कर्ताओं के वर्तमान उत्तराधिकारियों का यह परम पुनीत कर्तव्य है कि ये लोग उनके ग्रन्थों को, जो अब तक छापे नहीं गये हैं छपवावें और वर्तमान समय में जैसे ग्रंथों की आवश्यकता है वैसे ग्रन्थ स्वयं लिखकर अपने पूर्वजों का पदानुसरण करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोष्ठक-1

पत्र का नाम	उसके निकालने का समय	पत्र के स्वामी का नाम	निकालने के स्थान का नाम	संपादक का नाम और जन्मभाषा
मारवाड़ी	साप्ताहिक	श्रीयुत सेठ रामनारायण जी राठी	नागपुर	श्रीयुत ठाकुर शिवनारायण-सिंह हिन्दी
सुबोधसिंधु	साप्ताहिक		खण्डवा	मराठी
हितकारिणी	मासिक	हितकारिणी सभा	जबलपुर	पण्डित रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी बी०ए० हिन्दी
बालाघाट	मासिक	बालाघाट के उत्साही अफसरों की सभा	बालाघाट	
कृषि समाचार	मासिक	डायरेक्टर कृषि विभाग मध्यप्रदेश	नागपुर	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेश के प्राचीन ग्रन्थकारों तथा उनके ग्रन्थों के नाम

अनुक्रम संख्या	ग्रन्थकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रन्थों के नाम	ग्रन्थों में वर्णित विषयों का परिचय	विशेष परिचय
1.	श्रीमान महंत राजा लक्ष्मनदासजी फ्यूड-टरी चीफ छुई खटान	1. दोहावली	इसमें कई प्रकार के शिक्षा-प्रद उपदेशों का वर्णन है।	प्रकाशित
		2. श्रीकृष्ण और श्रीराधाजी की लीला के छोटे-मोटे 100 ग्रन्थ।	इन ग्रन्थों में दोहा चौपाई मनहर आदि छंदों में भिन्न-भिन्न लीलाओं का बहुत ही मनोहर भाषा में वर्णन है।	ये सब ग्रन्थ बिना छापे ही रखे हुए हैं।
2.	श्रीमान पण्डितवर महाराज वेनीराम जी पाठक, खण्डवा	1. छप्पय राम गीता	इसमें छप्पय छन्द में अध्या-त्म रामायणांतर्गत राम-गीता का सुबोध वर्णन है।	प्रकाशित
		2. आर्य रामायण	इसमें आर्या छन्द में आध्यातम रामायण का मराठी भाषा में वर्णन है।	यह ग्रंथ एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण द्वारा मराठी भाषा के पद्य में लिखा गया है। और ग्रंथकारों के शिष्य स्वनाम-धन्य रावबहादुर राजारामजी दीक्षित द्वारा छपवाया गया है अन्य भाष के पद्य में ग्रन्थ लिखना सचमुच ही बड़ा कठिन काम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
3.	श्रीयुत पण्डित गोपाल कविजी मिश्र, रतनपुर	1. रामप्रताप 2. भक्ति चिंतामणि 3. जैमिनी अश्वमेध 4. खूब तमाशा	इसमें रामचरित है इसमें कृष्ण चरित्र है। पाण्डवों का अश्वमेध यज्ञ इसमें चाणक्य नीति और वर्तमान काल की स्थिति का वर्णन है।	ये सब ग्रन्थ बहुत बड़े-बड़े हैं। और इनकी कविता बहुत रोचक है प्रथम दो प्रकाशित हो चुके हैं।
4.	श्रीयुत कवि माखन मिश्र			यह उक्त गोपाल मिश्र के पुत्र थे इन्होंने अपने पिता के ग्रंथ प्रणयन में सहायता दी थी।
5.	श्रीयुत बाबू रेवारामजी कायस्थ, रतनपुर	1. रामाश्वमेध 2. विक्रम विलास 3. माधवगीता 4. गंगालहरी 5. नर्मदा लहरी	राम के अश्वमेध की कथा है। इसमें सिंहासन बत्तीसी का पद्यानुवाद है। इसमें श्रीकृष्ण चरित्र है। इसमें गंगाजी की स्तुति है। इसमें नर्मदाजी की स्तुति है।	यह संस्कृत में है।
6.	श्रीयुत वक्षीहंसराज जी रतनपुर	1. प्रेमसागर 2. सनेह सागर 3. वरसातरंग	नाम से ही प्रकट है	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नस्थ कोष्ठक में मध्यप्रदेश के उन अर्वाचीन स्वर्गास्थित ग्रंथकारों तथा उनके ग्रन्थों का परिचय दिया जाता है जिन्होंने हिन्दी की सेवा कर अक्षय पुण्य लाभ किया। इन ग्रन्थकारों के वर्तमान उत्तराधिकारियों को उचित है कि वे भी इस दिशा में अपने पूज्य पूर्वजों का वर्तमान समय के अनुकूल पदानुसरण करें और अपनी मातृभाषा हिन्दी से वर-प्रसाद प्राप्त करने का प्रशंसनीय उद्योग करें।

मध्यप्रदेश के अर्वाचीन स्वर्गवासी ग्रन्थकारों तथा उनके ग्रन्थों की सूची

अनुक्रम संख्या (1)	ग्रन्थकारों के नाम (2)	ग्रन्थ का नाम (3)	परिचय (4)	अप्रकाशित वा प्रकाशित (5)	विशेष विवरण (6)
1.	श्रीमान् राजा साहब कमल नारायण सिंह, खैरागढ़	1. कमल प्रकाश 2. कमल नारायण विनोद 3. कमल प्रहर्ष	नाम ही से प्रकट	प्रकाशित " "	
2.	रायबहादुर मुन्शी डोरीलाल सेटेलमेंट आफीसर, मध्यप्रदेश	हिन्दी की (पुरानी) प्रथम चार पुस्तकें	प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें		इनकी ये पुस्तकें प्रारंभिक पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है।
3.	श्रीयुत पण्डित अनन्तरामजी पाण्डेय, रायगढ़	1. कपटी मुनि नाटक 2. इशोपनिषद	तुलसीकृत रामायण के कालकेतु के उपाख्यान पर रचित	प्रकाशित	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
4.	पं० मालिकराम त्रिवेदी	रामराज्य वियोग नाटक	नीति और उपदेश	अप्रकाशित	
5.	श्रीयुत बाबू दशरथलालजी	राधा स्नेह		,,	
6.	श्रीयुत पं० नन्दलालजी बी० ए०	1. शकुन्तला नाटक 2. मालिनी माला			
7.	श्रीकृष्ण किशोरदासजी दाऊ	1. कृष्णचंद्रिका 2. सुमन चेतिनी	कृष्णखण्ड पुष्पों के नाम से ही प्रकट है	प्रकाशित ,,	
8.	श्रीयुत उमराव बख्शीजी खैरागढ़	1. फतेहविलास 2. फतेह विनोद 3. नवस्कंध भागवत् 4. आदित पर्व्वं महाभारत 5. रासलीला 6. कवित्त रामायण 7. रामायण नाटक 8. सतसई टीका 9. काव्य प्रबोध			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
9.	श्रीयुत पण्डित जयगोविन्द सिंघोरी निवासी	1. गीत गोविन्द 2. भजनावली 3. लीलावती	नाम से ही प्रकट है ,,	अप्रकाशित	
10.	श्री मोहन राजा जगमोहन सिंह	1. श्यामास्वप्न 2. मेघदूत 3. शकुन्तला	श्रृंगार विषयक	अप्रकाशित	इनको एकमात्र श्रृंगार रस की ही कविता रुचती थी।
11.	श्रीयुत गोपाल कवि, खैरागढ़	1. पिंगल छन्दावली 2. राधाविनोद 3. ज्ञानमाला	नाम से ही प्रकट		
12.	श्रीयुत खण्डेरावजी मराठे, सिमगा	1. भक्त विरदावली 2. राधा विनोद 3. ज्ञानमाला	नाम से ही प्रकट	अप्रकाशित	
13.	श्रीयुतभूपालसिंहजी खैरागढ़	वैद्य विलास (संस्कृत)	,,	,,	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आगे इस प्रदेश के उन वर्तमान हिन्दी ग्रन्थकारों तथा उनके ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है जो इस समय हिन्दी की सेवा यथाशक्ति कर रहे हैं—

अनुक्रम	ग्रन्थकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रन्थों के नाम	ग्रन्थों में वर्णित विषयों का परिचय	विशेष परिचय
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1.	श्रीयुत बाबू जगन्नाथ प्रसादजी, बिलासपुर	1. छन्द प्रभाकर	इस ग्रन्थ में समस्त वैदिक और लौकिक छन्दों का वर्णन है।	यह पुस्तक इस प्रदेश में प्राइज और लाइब्रेरी बुक स्वीकृत की गई है।
		2. नव पंचामृत रामायण		
		3. काल प्रबोध		
		4. काव्य प्रभाकर		प्रकाशित
2.	रायसाहब मुन्शी मथुरा प्रसादजी वकील (छिन्दवाड़ा)	1. ताजीरातहिन्द 2. जाब्ताफौजदारी 3. जाव्दादीवानी	इसमें भारत के वर्तमान पेनल कोड का अनुवाद है।	यह ग्रंथ देवनागरी अक्षरों में छापे गये हैं।
3.	श्रीयुत पण्डित कामता प्रसादजी गुरु	भाषा वाक्य पृथककरण	नाम से ही विषय प्रकट है।	यह पुस्तक मध्यप्रदेश की पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
4.	श्रीयुत पण्डित लोचन प्रसादजी पाण्डेय, रायगढ़	1. कविता कुसुममाला 2. प्रवासी 3. नीति कविता 4. बालिका विनोद 5. शोकोच्छ्वास	इसमें प्रसिद्ध कवियों के 91 पद्य संग्रह है।	प्रकाशित
5.	श्रीयुत पण्डित विश्वनाथ जी दुबे, राजिम	एडवर्ड काव्य	इसमें स्वर्गवासी राज राजेश्वर सप्तम एडवर्ड का पद्यमय जीवन चरित्र है।	प्रकाशित
6.	श्रीयुत बाबू जिवराखन लालजी भूतपूर्व डिप्टी इंसपेक्टर स्कूल, मुरवाड़ा	सन्ततिरत्न	इसमें सन्तति के सुधारने का बहुत अच्छा वर्णन है।	
7.	पण्डित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री	1. निबन्ध मालादर्श	इसमें अच्छे अच्छे प्रबंध हैं।	प्रकाशित
		2. संस्कृत कवि पंचक	इसमें संस्कृत के कालिदासादि पाँच कवियों के ग्रन्थों की आलोचना और इतिहास है	
		3. राष्ट्रभाषा	इसमें हिन्दी की राष्ट्रभाषा होने की योग्यता प्रदर्शित की की गई है।	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
7.		4. प्रणयीमाधव	उपन्यास	प्रकाशित
		5. रसवाटिका	इसमें सब रसों का सरल गद्य में उदाहरण और स्पष्टीकरण सहित वर्णन है।	
		6. नर्मदा विहार	इसमें नर्मदा तीरस्थ होशंगाबाद का पद्य में वर्णन है।	प्रकाशित
8.	श्रीयुत चम्पालालजी जौहरी, खण्डवा	—	—	इन्होंने ने भी कुछ हिन्दी में पुस्तकें लिखी हैं।
9.	श्रीयुत रायसाहब जबलपुर	पदार्थ विज्ञान	नाम से ही प्रकट है।	यह पुस्तक मध्यप्रदेश की पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है।
10.	श्रीयुत पंडित गणपति लालजी चौबे, रायपुर	देशी कसरत का अनुक्रम	नाम से ही प्रकट	—
11.	श्रीयुत बरवारी प्रसाद जी, रायपुर	अमृतफल	इसमें श्रीमद्भागवत का छंदोबद्ध अनुवाद है।	
12.	श्रीयुत हीरालालजी मास्टर, धमतरी	दुर्गायण	इसमें दुर्गाजी का चरित्र है।	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
13.	श्रीयुत चुन्नीलालजी रायपुर	भक्तानन्द पयोनिधि	इसमें श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद है।	
14.	श्रीयुत बिसाहूरामजी सुवर्णकार, धमतरी	कृष्णायण	कृष्णचरित्र	
15.	श्रीयुत पण्डित मेदिनी प्रसादजी पांडेय, रायगढ़	1. गणपति उत्सव दर्पण 2. शृंगार सुधानिधि 3. पद्यमंजूषा	इसमें स्फुट पद्यों का संग्रह है।	
16.	श्रीयुत बाबू श्यामलाल, सारंगढ़	1. खगेश शतक 2. सूर्यश्चंद्रिका		
17.	मुन्शी मुहम्मद याकूब, रायपुर	लावनी भवन		
18.	श्रीयुत ठाकुर प्यारेसिंह जी, राजिम	राजिम माहात्म्य	इसमें राजिम का वर्णन है।	
19.	श्रीमान राजासाहब वीर विक्रम देवजी, खरिहार	1. राजकुमार शिक्षा 2. गजशास्त्र	नाम से प्रकट है।	
20.	मुन्शी उमरयारबेग, रायपुर	नीति फुटकर		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
21.	ठाकुर कुंवर बहादुर	1. अबला प्रबला कर		
		2. सोऽहम् विलास		
22.	श्रीयुत स्वामी विद्या प्रकाशजी	1. मन की खेलवाड़		इन स्वामी जी ने छोटे-मोटे कई ग्रन्थ लिखे हैं।
		2. विद्या नाटक		
		3. मित्र प्रमोद		
23.	श्रीयुत पण्डित जीवधर प्रसादजी दुवे	सीता स्वयंवर		
24.	श्रीयुत बाबू हरिदासजी खण्डेलवाल, जबलपुर	1. धर्म्म समीक्षा	नाम से ही प्रकट है।	प्रकाशित
		2. ईश्वर ध्यान		
		3. विवाद दिग्विजय		
		4. मर्यादा		
25.	रायबहादुर पण्डा बैजनाथ, भंडारा	1. थियोसोफीमार्ग	दर्शन धर्म विषयक	प्रकाशित
		2. मुमुक्ष मार्ग		
26.	पं. मंगलाप्रसादजी द्विवेदी, वर्धा	1. कलिकाशतक		
		2. मंगला विनोद	भक्ति विषयक	"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय मध्यप्रदेश के राजकीय कार्यालयों में उच्च श्रेणी के पदों पर जो हिन्दी भाषा-भाषी सज्जन विद्वान प्रतिष्ठित हैं उनकी और हिन्दी भाषा-भाषी वकील वैरिस्टरों की संख्या का अनुमान 263 के लगभग है। इसके सिवा और भी कई स्वतन्त्र व्यवसायी सज्जन अच्छे विद्वान हैं। इस प्रदेश में हिन्दी भाषा-भाषी इतने विद्वान होने पर भी हिन्दी की सेवा करने वाले इसमें से इतने थोड़े हैं कि उनकी संख्या नहीं के सदृश कही जा सकती है। इस प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान लोग हिन्दी की सेवा में योग नहीं देते। इसके दो कारण हमें ज्ञात हुए हैं। प्रथम कारण तो ये लोग यह कहा करते हैं कि हम जिस कार्य पर नियुक्त हैं उसके कारण हमें अवकाश ही नहीं मिला करता, और दूसरा कारण ये लोग यह कहा करते हैं कि ग्रन्थ लिखने से इस प्रदेश की सरकार की अप्रसन्नता का भय बना रहता है। इन दोनों कारणों की निःसारता एक ही उदाहरण से प्रकट हो सकती है। उदाहरण श्रीयुत बाबू जगन्नाथ प्रसाद साहब असिस्टेण्ट सेटिलमेण्ट आफिसर बिलासपुर का है इस बात को हम साधिकार कह सकते हैं कि जितना अधिक कार्य बन्दोबस्त के दफ्तरों में करना पड़ता है उतना अन्यत्र कदाचित् ही करना पड़ता है। समय की इतनी संकीर्णता होने पर भी मातृभाषा हिन्दी की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। इस बुद्धि के जागृत रहने के कारण छन्द प्रभाकर और काव्य-प्रभाकर जैसे वृहत् ग्रन्थ उक्त बाबू साहब ने हिन्दी में रचे हैं उनमें इच्छा वलवती होती तो आप अंग्रेजी में ग्रन्थ लिखकर अन्यान्य पुरुषों की नाईं बहुत सा धन कमा लेते। पर आपने ऐसा नहीं किया। आपने प्रचण्ड परिश्रम के साथ उक्त ग्रन्थों को लिखने और छपवाने में अपनी गाढ़ी कमाई के सहस्रों रुपये खर्च कर डाले। आपकी इस उदार सेवा के कारण करुणामयी मृदुल प्रकृति माता हिन्दी का वरदहस्त सदा आपके माथे पर बना रहेगा। और जब तक हिन्दी-भाषा का इतिहास इस संसार में बना रहेगा तब तक आपका नाम उनमें चमकता रहेगा। इन बाबू साहब ने अपनी पुस्तकें इस प्रदेश के प्रायः सभी बड़े-बड़े अधिकारियों को भेंट में अर्पण की हैं। पर उन पर किसी ने आपत्ति नहीं की। किन्तु सन् 1894 में वेतूल जिले में जब तत्कालीन श्रीमान् चीफ कमिश्नर साहब बहादुर ने बहुत आदर और हर्षपूर्वक स्वीकार कर बहुत लोगों के समीप उक्त बाबू साहब को सम्बोधन करके अपने श्रीमुख से कहा था कि आप जैसे ग्रन्थकारों को अपने अधीनस्थ उच्चश्रेणी के कर्मचारियों में देख हमें असीम आनन्द होता है।

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था प्रदर्शित करने के अभिप्राय से यहाँ लों जो कुछ कहा गया है उससे अनायास ही आप लोग जान सकते हैं कि जिस हिन्दी को महाराष्ट्र देश तथा बंग देश के भाषातत्व-पारीण सज्जन भारत की राष्ट्रभाषा का उच्च पद प्रदान करने के लिए मुक्त-कण्ठ से अपनी उत्कण्ठा प्रकाशित कर रहे हैं। जिस हिन्दी की उन्नति के लिए मध्यप्रदेश की सरकार तन, मन, धन से उद्योग कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है उस हिन्दी के अत्यन्त आवश्यक उत्कर्ष के लिए इस प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जन कुछ भी नहीं कर रहे हैं। निःसन्देह यह बहुत दुःख, शोक और लज्जा की बात है। जिस समय इस प्रदेश में हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान नहीं थे उस उस समय यहाँ के हिन्दी भाषा-भाषी जनों को शिक्षा देने के लिए यहाँ की विद्या-प्रिय सरकार ने अन्य भाषा-भाषी सज्जनों से हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें लिखवाकर हिन्दी को उन्नत करने का सराहने योग्य उद्योग किया। अब ईश्वर की इच्छा और हमारी सरकार की उदार कृपा से इस प्रदेश में सैकड़ों हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान हो गये हैं। ऐसी अवस्था में इन हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जनों का सर्व-प्रधान कर्त्तव्य है कि इस प्रदेश की सरकार हिन्दी की उन्नति के लिए जो उद्योग कर रही है उसके लिए पूरी-पूरी सहानुभूति प्रकाशित कर आप भी हिन्दी के उन्नति विषयक कार्य में सहायता दें। इस प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जनों के ऐसा करने से ही हिन्दी का हिन्दित्व स्थिर रहकर उत्कर्ष को प्राप्त होगा। अन्यथा अर्थात् हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जनों के हिन्दी के विषय में उपेक्षा करने से उसका अत्यन्त कड़ुआ फल यही होगा, ईश्वर ऐसा न करे, कि इस प्रदेश की बोल-चाल तथा ग्रन्थ प्रणयन की हिन्दी-भाषा धीरे-धीरे राय साहब मुंशी मथुराप्रसाद साहब के कानूनी हिन्दी अनुवाद ग्रन्थों की भाषा का रूप धारण कर लेगी। अतः जिन हिन्दी भाषा-भाषी विद्वज्जनों की सर्वगुण आगरी, अपनी मातृभाषा हिन्दी पर भक्ति और श्रद्धा है जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है, उन्हें उचित है कि वे अपनी जन्म भाषा हिन्दी विषयक उपेक्षा, आलस्य, अवकाश न मिलने का थोथा बहाना आदि को छोड़कर जिससे जितना और जिस प्रकार का हिन्दी की उन्नति के लिए उद्योग और परिश्रम किया जा सकता है, उतना उद्योग करने का अभिप्राय यह नहीं है कि सभी लोग उसमें ग्रन्थ लिखने के लिए दौड़ पड़ें, और न यही है कि जो लोग उसके उत्कर्ष के लिए परिश्रम करते हैं उनके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति ही प्रकाशित न की जाय। हिन्दी की उन्नति के लिए प्रयत्न करने का अभिप्राय यही है कि जो लोग उसकी उन्नति के लिए ग्रन्थ लिखते हैं वा पत्र प्रकाशित करते हैं, उन्हें सब प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाय, अर्थात् उनके ग्रन्थ वा पत्र मूल्य देकर लिए जांय, वे सावधानतापूर्वक पढ़े जांय, उनकी उचित आलोचना की जाय, इत्यादि, इत्यादि।

मध्यप्रदेश के वर्तमान हिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों तथा धनवानों को उचित है कि वे अपने 6782200 हिन्दी भाषी जनों में जबलपुर की हितकारिणी पत्रिका सदृश उत्तमोत्तम अनेक मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों का प्रचार करने के लिए उद्योग करें। जब तक पत्रों की संख्या नहीं बढ़ाई जाती तब तक हितकारिणी को ही साप्ताहिक रूप देने के लिए सहायता प्रदान करें। अकेले जबलपुर में ही हिन्दी भाषा-भाषी ऐसे धनाढ्य सज्जन हैं कि जो चाहें, और अब उन्हें ऐसी चाह करनी ही चाहिए, तो अर्थ सहायता दें। अभी हितकारिणी को साप्ताहिक कर दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। अब यह बात किसी से छिपी नहीं है कि सभ्य देशों में जिस नगर की जनसंख्या 5000 से भी न्यून होती है उसमें भी छः-छः दैनिक और कौड़ियों मासिक, साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसी अवस्था में मध्यप्रदेश के जिन हिन्दी-प्रधान नगरों को जनसंख्या एक लाख से ऊपर है, उनमें हिन्दी में एक भी साप्ताहिक पत्र प्रकाशित न किया जाना आज दिन संसार के सभ्य समाज के समीप अकेले आश्चर्य की ही सामग्री नहीं किन्तु महालज्जा की भी बात है। अन्त में उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर से हमारी यह सादर और सानुरोध प्रार्थना है कि वह इस प्रदेश की सरकार जो उद्योग कर रही है, उसके साथ सहानुभूति प्रकाशित कर हिन्दी की उचित सेवा कर सकें, और इस प्रकार राजा, प्रजा दोनों का कल्याण तथा मंगल साधन कर सकें।

इस लेख के आदि में ही हम इस बात को सूचित कर चुके हैं कि हमें आज के इस लेख से ऐसे महत्वपूरित लेख को लिखने के लिए यहाँ किसी प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्य नहीं है। ऐसी अवस्था में भी जिन भाषायी सज्जनों ने इस विषय में हमें सामग्री प्रदान की है, उन सबके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। श्रीमान् पण्डित गणपतिलालजी चौबे, एजेन्सी इन्सपेक्टर, शिक्षा विभाग, रायपुर के हम अधिकतर कृतज्ञ हैं। आपने निःसन्देह बड़ी उदारता और उत्कण्ठा के साथ इस लेख के लिए उपयोगी बहुत सी सामग्री हमारे पास भेजने की कृपा की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मारवाड़ी', 1 अप्रैल 1914

रामनवमी

सन्तोष का विषय है कि अब हमारे देश के विद्वान सज्जनों का ध्यान हमारे उत्सवों की ओर आकृष्ट हो रहा है, और वे लोग इनमें उत्साह शक्ति भरने की चेष्टा कर रहे हैं। वर्तमान अवस्था को देखकर विश्वास करने को जी चाहता है कि हमारे सद्विद्वान सज्जनों के उद्योग से हमारे समस्त उत्सवों का यथार्थ रूप लोगों को विदित हो जायेगा, और जो उत्सव जिस अभिप्राय से चलाया गया है, उस अभिप्राय को लोग यथा तत्त्व जानकर उससे अभिप्रेत लाभ उठावेंगे।

प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला नवमी को रामनवमी का उत्सव मनाया जाता है। रामनवमी के दिन कर्मठ लोग उपवास करते हैं और जहाँ रामचन्द्रजी की मूर्ति का मन्दिर होता है वहाँ जाकर, उनके दर्शन करते हैं, उनके जन्मोत्सव की कथा सुनते हैं। उनके दर्शन करते हैं, उनके जन्मोत्सव की कथा सुनते हैं। कहीं-कहीं मन्दिरों में अब इस अवसर के समय मंगलामुखी नामक स्त्रियों के नृत्यगान भी किये कराये जाते हैं। इतना करके ही लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं। कहना नहीं होगा कि हमारे जिन आचार्यों ने इस रामनवमी के उत्सव को प्रचलित किया है, उनका उद्देश्य बहुत ऊँचा था। उनका उद्देश्य यही था कि साल भर में एक दिन तो भी सर्वसाधारण श्री रामचन्द्रजी के जीवन चरित की बातों का स्मरण कर उनसे अपने जीवन चरित को संगठित करने की शिक्षा ग्रहण करें। पर यह उद्देश्य आजकल लक्ष्यच्युत हो गया है। हमारे देश के देशभक्त सद्विद्वान सज्जनों का काम है कि अपने अपने समाज में वे लोग अपनी शक्ति के अनुसार इस रामनवमी के महत्व का तत्व लोगों को समझाने का यत्न करें।

श्री रामचन्द्र जी के चरित्र को आदिकवि वाल्मीकि मुनि ने प्रचुर प्रभावशालिनी भाषा में चित्रित किया है। जो लोग संस्कृत समझ सकते हैं वे लोग और कभी नहीं तो नवमी के दिन तो भी एक बार उनके शिक्षाप्रद जीवन को पढ़ें और उससे सीखें कि पुत्र को माता-पिता की आज्ञा किस प्रकार मानना चाहिए। भाई-भाई को परस्पर किस प्रकार प्रेमपूर्वक बर्ताव करना चाहिए, स्त्री को अपने पति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल और प्रतिकूल समय में किस प्रकार सहायक बनी रहना चाहिए, सत्य और परिश्रम की सहायता से वह किस प्रकार बड़े-बड़े प्रभावशाली पापी और पाखण्डियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते हैं वे लोग गोस्वामी तुलसीदासकृत विश्वविख्यात रामायण के पाठ से जान सकते हैं कि रामचन्द्रजी अपने पिता के जेठे पुत्र थे, धर्मशास्त्र की विधि के अनुसार राज्य के अधिकारी वे ही थे, पर पिता की आज्ञा का मान करने के अभिप्राय से राज्य जैसी दुर्लभ वस्तु का मोह छोड़कर वे बनवास करने के लिए चले गये। भरत को जब मालूम हुआ कि हमारी माता ने हमारे लिये राम को बनवास दिलाकर राज्य प्राप्त कर रखा है, तब उनको भ्रातृ स्नेहवश इतना दुख हुआ कि उन्होंने तदर्थ अपनी माता की निन्दा की, और श्रीरामचन्द्रजी को लौटा लाने के लिए बहुत भारी यत्न किया। इस दिशा में उनका यत्न यद्यपि सिद्ध नहीं हुआ तथापि उन्होंने भ्रातृस्नेह का बहुत अच्छा उदाहरण संसार के समीप रख दिया है। श्रीसीताजी एक बड़े भारी राजा की बेटी और उससे अधिक विभवशाली राजा की पुत्रवधू थीं, पर उन्होंने वनवास में श्रीरामचन्द्रजी के साथ जाकर पति भक्ति का पवित्र उदाहरण स्त्री जाति के समीप रख दिया है। छोटे भाई को बड़े भाई का आदर सत्कार किस प्रकार करना चाहिए इसकी शिक्षा लक्ष्मणजी के जीवन चरित्र से बहुत अच्छी मिलती है। वन में लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी के साथ रहा करते थे पर उन्होंने श्रीसीताजी का मुख तक कर कभी नहीं देखा। इससे पाठ यह न मान लीजिए कि श्रीसीताजी परदे में रहा करती थीं। उस समय परदे की प्रथा इस देश में प्रचलित नहीं हुई थी। यह उनके चरित्र बल का प्रभाव था कि लक्ष्मणजी को श्रीसीताजी के मुख की ओर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे भक्ति भावपूर्वक श्रीसीता-जी के चरणों का ही नित्यप्रति अभिनन्दन किया करते थे। एक ओर तो रामनवमी के उत्सव के ब्याज से हमें ऐसी-ऐसी उत्तमोत्तम शिक्षायें देने के लिए हमारे पूर्वज उक्त उत्सव को प्रचलित कर गये हैं और दूसरी ओर अज्ञानवश हम आज दिन उनके उत्सव के दिन पिता पुत्र एक साथ बैठकर चरित्रहीन कुत्सित हाव-भाव दिखाने वाली वेश्याओं का नाच देखते हैं और उनका कुरुचिपूर्ण गाना सुनते हैं। यह सब हमारे अज्ञान और मोह की चरम सीमा का दृश्य है।

सारांश श्रीरामचन्द्रजी का पुनीत जीवन चरित्र हमको इस बात की शिक्षा देता है कि रावण प्रबल प्रतापी होने पर भी, असत्य और निंद्य कर्मों का पक्षपाती होने के कारण सत्य और सदनुष्ठान के पक्षपाती, चरित्रवान श्रीरामचन्द्रजी द्वारा अपने घर में ही पराभव को प्राप्त हो गया। तात्पर्य, रामनवमी के उत्सव से हमें चरित्र बल की शिक्षा ग्रहण कर अपना चरित्र ऐसे ढंग से संगठित करना चाहिए कि उसकी सहायता से सर्वत्र हमारा मान-सम्मान हो और उसके साथ हमें सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति मिले। श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र के साथ सटे हुए रावण के चरित्रहीन जीवन से हमको यह बात सीखनी चाहिए कि "मानेन लभते सत्सुभिन्न चरित्र दर्शनः" जिसका चरित्र बलहीन होता है उसको सज्जन समाज में आदर नहीं मिल सकता, अतः आत्मगौरव की इच्छा रखने वाले भारतवासियों को श्रीरामचन्द्रजी के जीवन चरित्र से शिक्षा लेकर आत्मचरित संगठित करना चाहिए, और उसकी सहायता से संसार में सज्जनों के द्वारा समाहृत होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कान्यकुब्ज हितकारी', 21 मार्च 1914

कर्म और उसका फल

सकल पदारथ है जग माहीं ।
कर्महीन नर पावत नाहीं ।। —तुलसीदास

आजकल कर्म का अर्थ बहुत लोग उस लेख से मानते हैं, जिसे वे समझते हैं कि, ब्रह्मदेव ने उनके माथे में लिख दिया है, क्योंकि जब बातचीत करते समय कर्म से सम्बन्ध दिखाने वाली कोई बात आती है तब वे लोग अपने माथे को पीट कर कहते हैं कि जो कुछ इसमें लिखा होगा वही होगा और उसी के अनुसार हमें फल मिलेगा । इस लेख में उक्त प्रकार की भाल लिपि से कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया है । इस लेख में कर्म शब्द का प्रयोग काम वा क्रिया करने के अर्थ में किया गया है, और उसके फल का प्रयोग काम वा क्रिया के फल के अर्थ में किया गया है ।

थोड़ा सा विचार कर देखने से विवेकी मनुष्य को यह बात तत्क्षण ज्ञात हो सकती है कि इस संसार में जो मनुष्य जितना अच्छा और चतुराई के साथ काम कर सकता है उसको उतना ही अधिक और उत्तम फल उसके उस कर्म का मिल सकता है । इस समय देखा जाता है कि जितने लोग, समय की आवश्यकतानुसार लिखने-पढ़ने और ललित कला आदि में कर्म कर अर्थात् परिश्रम कर कुशलता और निपुणता प्राप्त कर लेते हैं उतने लोगों को संसार में अपनी जीवन यात्रा को सुखपूर्वक समाप्त करने के लिए, धन-धान्यादि वस्तुओं की जितनी आवश्यकता होती है उतनी उन्हें सुखेन मिल सकती है, किन्तु जो लोग समय की आवश्यकतानुसार कर्म नहीं करते उन्हें खाने-पीने तक के लाले पड़ा करते हैं तो फिर अन्य चीजों का उन्हें मिलना तो दूर की बात है । इस कर्म की विशेषता के विषय में ज्यों-ज्यों अधिक विचार किया जाय त्यों-त्यों इसकी प्रधानता का रहस्य अधिकाधिक विदित होता जाता है । बालक के पैदा होते ही, उसे उस असमर्थ और अज्ञान अवस्था में भी अपनी शरीर यात्रा के लिए कर्म अर्थात् श्रम करना ही पड़ता है । अर्थात् बालक के पैदा होने पर उसकी माता उसके मुँह में अपना स्तन दे देती है, उस स्तन से दूध खींचने की क्रिया को अर्थात् कर्म को वह बालक स्वयं यदि न करेगा तो उसे माता के स्तन से न दूध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मिलेगा और न उसका पोषण ही होगा। पाठक देखें कि ईश्वर ने बालक के पैदा होने के पूर्व उसकी माता के स्तनों में दूध पैदा कर दिया है, पर उसकी प्राप्ति उस बालक के कर्म अर्थात क्रिया के अधीन कर रखी है। ईश्वर की इस योजना से स्पष्ट जाना जाता है कि उसका यह मतलब है कि इस संसार में जितने जीव पैदा होते हैं वे सब अपनी आवश्यक वस्तुओं को अपने कर्मबल से प्राप्त करें। उसकी यह अभिप्राय कदापि नहीं बोध होता कि एक कर्म करे और दूसरा उसका फल पावे। जो लोग ईश्वर के इस इंगित को नहीं समझते हैं उन्हें इस संसार में पद-पद पर दुःख भोगने पड़ते हैं। और कोटि-कोटि धन्यवाद है हमारे उन पूर्वज विद्वान ऋषि महर्षियों को जो हमें कर्म का यह तत्व और महत्व समझाने के लिए अनेक ग्रन्थ लिखकर छोड़ गए हैं। उन ग्रन्थों को न पढ़कर वा उनके उपदेशों को न मानकर यदि हम दुःख भोगते हैं तो यह हमारी अबोधता का ही तीता फल है।

भारत के दर्शन शास्त्रों के सर्वस्व स्वरूप सूपनिषत् नामक ग्रन्थ के तीसरे अध्याय के 10वें मन्त्र में कर्मतत्व के पूर्ण ज्ञाता भगवान श्रीकृष्ण परम जिज्ञासु अर्जुन से कहते हैं :—

सहृदयाः प्रजाः सृष्टा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेनं प्रसविस्वध्वमेष वोऽस्तिवस्ट कामधुक ।।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सृष्टि के आदि काल में ब्रह्मदेव ने प्राणी और उसके द्वारा किये जाने वाले कर्म को साथ ही साथ पैदा करके उस प्राणी को उपदेश किया कि तू कर्म द्वारा अपनी उन्नति को प्राप्त कर; यह कर्म (यज्ञ) कामधेनु के सदृश्य तुझे उन्नत कर सर्वतोभाव सुख सम्पन्न करेगा। उक्त ग्रन्थ में श्रीकृष्ण ने इस कर्म की महत्ता का वर्णन बहुत बलिष्ठ युक्तियों द्वारा कर अन्त में कह दिया है कि जो लोग हमारे कहे हुए इस कर्म स्वरूप उपाय का आश्रय लेकर उसका अनुष्ठान करेंगे वे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त कर सकेंगे, किन्तु जो लोग हमारे इस सिद्धान्त स्वरूप उपदेश की निन्दा कर उसका तिरस्कार करेंगे वे मूर्ख नष्ट हो जायेंगे। हमारे विवेकी पाठकों को विचार कर देखना चाहिए कि कर्मतत्व पारीण श्रीकृष्ण का उपदेश न मानने वाले हम लोगों की इस समय कैसी दुर्दशा हो रही है। लोगों की इस दुर्दशा का दायी कौन कहा जा सकता है इसका उल्लेख भी परमात्मा श्रीकृष्ण ने कर दिया है। आपने प्रकारांतर से कह दिया है कि सर्व-साधारण को अकर्मजन्य दुःख तभी प्राप्त होता है जब उनके तत्कालीन सम्पन्न नेता और नायक कर्मतत्व की अवहेलना कर उसकी उपेक्षा करते हैं अर्थात् जब वे लोग अपनी धराढ्य और धनाढ्यता के मद में मत्त होकर स्वयं कार्य कर्म करना छोड़ देते हैं तब उनकी देखा-देखी सर्वसाधारण भी कर्मतत्व को भूल भूखों मरने लगते हैं। इस भयंकर अनिष्ट परिणाम से बचाने के लिए श्री भगवान ने अर्जुन से कहा है कि जिसे किसी बात की आवश्यकता नहीं है ऐसे धनी जन को भी 'लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहार्थं' अर्थात् सर्वसाधारण को कर्मतत्व की शिक्षा देने के लिए स्वयं कर्म करते रहना चाहिए। हमारे इस स्वल्प निवेदन से हमारे विवेकी पाठकों को कर्म का तत्व पूर्णतया भले ही न ज्ञात हो सका हो, पर उसके दिग्दर्शन स्वरूप में यह बात उन्हें अवश्य ही ज्ञात हो जायगी। हमारे समाज में बड़े और पूज्य माने जाने वाले लोगों की अकर्मण्यता के कारण ही आज दिन हमारे समाज की यह हीन दशा हो रही है।

जब तक हमारे नेता और नायकगण हमारे समाज के प्रत्येक जन को कर्मशील बनाने का समष्टि रूप में उपाय नहीं कर सकते हैं तब तक हमारे समाज के प्रत्येक जन को अपने लड़के लड़कियों को कर्मशील बनाने की यथा शक्ति स्वयं शिक्षा देते रहना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि अभी जो लोग अकर्मण्यता के कारण अन्नवस्त्र विहीन होकर मारे-मारे इधर-उधर फिर रहे हैं वे लोग कर्म के प्रसाद से अपनी शरीर यात्रा निर्वाह कर सकेंगे।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में जो लोग इस समय अपने को कुलीन और नेता माने जाने का दावा करते हैं वे लोग देखें कि उनके अकर्मण्य हो जाने के कारण उनके बड़े भारी समूह की आज दिन कैसी हीन क्षीण दशा हो रही है। कर्म करने के विषय में श्रीकृष्ण भगवान ने जो उपदेश दिया है उसका अब उन्हें काया वाचा मनसा अनुष्ठान करना चाहिये, क्योंकि अब अकेले पुत्र बेचने (यहाँ पर दहेज स्वीकार कर विवाह करने वालों की ओर कटाक्ष किया गया है। सं०) के व्यवसाय से वे इस संसार में वे सुखी और माननीय नहीं हो सकते इसका अनुभव आज तक वे बहुत कर चुके हैं। जो लोग कुलीनों के पुत्रों का मोल देने में अपना धन व्यय कर डालते हैं उन्हें अब यह उचित है कि उस धन से वे अपने लड़के लड़कियों को ऐसी शिक्षा देवें जिससे वे संसार में अपना जीवन सुख शान्ति और मान सम्मान के साथ व्यतीत कर सकें। तात्पर्य अन्त में समस्त जनों से इस अल्पज्ञ विनम्र जन की हाथ जोड़कर यह प्रार्थना है कि वे अपने लड़के बच्चों को यह शिक्षा देवें कि मनुष्य मात्र को सुख शान्ति देने वाले सब पदार्थ इसी संसार में हैं और वे पदार्थ कर्मशील अर्थात उदयोगी पुरुष को ही प्राप्त हो सकते हैं अन्य को कदापि प्राप्त नहीं हो सकते, अतः समाज के प्रत्येक जन को कर्मशील बनाना चाहिये। अपने लड़के बच्चों को कर्मशील बनाना उनके माता-पिता का कर्त्तव्य कर्म है। जो जितना ही अधिक कर्मशील होगा उसे उतना ही अधिक सुख-सम्मान मिलेगा।

जिसके कर्म सम्पादन में ज्ञान की जितनी अधिक मात्रा रहती है, उतना ही अधिक फल उसको उसके कर्म का मिलता है। इससे यह पाया जाता है कि ज्ञान के साथ कर्म करना अधिकतर सुखदायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ,
(**कार्यक्रम-दूसरा भाग**) 1914 ई०

हिन्दी कविता किस ढंग की हो ?

"धर्म्मार्थ काममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिचं, साधु काव्य निषेवणम् ।।"

जो काव्य तत्व पारीण विद्वज्जन, आप जैसे साहित्याचार्य और काव्यतीर्थादि उपाधिधृक् सज्जनों द्वारा मण्डित और अलंकृत की हुई इस सभा में, मुझ ऐसे अल्पज्ञ का 'हिन्दी कविता किस ढंग की हो' ऐसे गूढ़ एवं गम्भीर विषय पर वाग्वि-लास प्रकट करना निःसन्देह बड़ी ढ़िठाई और साहस का काम है। यद्यपि मेरा यह उद्योग विश्वविख्यात महाकवि कालिदास की 'प्रांशुलभ्ये फले मोहादु द्वाहुरिव वामनः' नामक सूक्ति को अक्षर-अक्षर चरितार्थ करने वाला है तथापि मुझे भरोसा है कि मेरा यह उद्योग आप लोगों की माननीय आज्ञा का फल होने के कारण सर्वथा उपहास्य एवं उपेक्षणीय नहीं होगा। इसके शिवा आपकी इस विद्वंचक्र-चूड़ामणि मण्डित मण्डली ने 'बालादपि सुभाषित ग्राह्यम्' नामक जो सर्वहितकर व्रत धारण किया है वह भी मेरे उत्साह को अपने विचार आज के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाशित करने के लिए प्रेरित और बाध्य कर रहा है। आपकी समिति के स्तोतव्य गुण और अनुकरणीय उद्देश्य मुझे आशा दिला रहे हैं कि आपकी यह उदार समिति मेरे कथन में सार वस्तु को ग्रहण कर उसे हिन्दी काव्य रस लोलुप सज्जनों तक पहुंचाने की कृपा अवश्य करेगी।

विवेकी सभ्य गण, आज के आलोच्य विषय का नामाभिधान है "हिन्दी कविता किस ढंग की हो ?" इस विषयाभिधान का जिन सज्जनों ने विधान किया है उनका इससे यही अभिप्राय जान पड़ता है कि वर्तमान समय में हिन्दी भाषा में कविता के नाम से जो पद्य रचना की जाती है उसके भाव किस प्रकार के होने चाहिए, उसकी भाषा शैली किस ढंग की होनी चाहिए, और उसके छन्द वृत्तादि किस आकार और प्रकार के होने चाहिए। इन बातों का निश्चय करने के लिए प्रथम हमें उस काव्य ग्रन्थ समूह पर विचार करना चाहिए जिसे हिन्दी भाषा के पूर्व कवि लोग हमारे लिए छोड़ गये हैं।

विज्ञ सभ्यगण आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दी के प्राचीन काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों का संग्रह इतना विपुल और सर्वांगपूर्ण है कि वैसा भारत की वर्तमान भाषाओं में से किसी अन्य भाषा का कदाचित् ही हो। हिन्दी भाषा के प्राचीन काव्य संग्रह के क्षेत्र की विस्तीर्णता और उपयोगिता का यथार्थ ज्ञान तो काव्य तत्व जिज्ञासु लोगों को तभी होगा जब हिन्दी भाषा के धुरन्धर लेखक मिश्रबन्धुओं द्वारा लिखित 'हिन्दी काव्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ प्रकाशित होकर इस विषय के प्रेमी लोगों को अवलोकनार्थ प्राप्त हो सकेगा।

इस समय हिन्दी के काव्य का पूरा-पूरा महत्व सुशिक्षित समाज पर प्रकट करने के लिए मिश्रबन्धुगण जैसा अभिनन्दनीय उद्योग कर रहे हैं, वैसा ही प्रशंसनीय उद्योग आज से 37 वर्ष के पूर्व हिन्दी भाषा के परमभक्त एवं पूर्णज्ञाता श्री सेंगरवंशावतंश श्रीमन्महाराज कुमार ठाकुर शिवसिंह साहब ने किया था। आपका 'शिवसिंह सरोज' हिन्दी भाषा के प्रेमियों के बड़े आदर की चीज है। आज से 37 वर्ष के पूर्व हिन्दी भाषा की जो अवस्था थी, उस पर विचार कर जब हम उक्त ग्रन्थ का अवलोकन करते हैं तब उक्त ठाकुर साहब की उक्त कृति के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा करने पर भी हमारी मन तुष्टि नहीं होती। हमारी यह निश्चल धारणा है कि उस समय ठाकुर साहब ने उक्त ग्रन्थ लिखकर हिन्दी के काव्य की खासी मानरक्षा की। इस कृपा के लिए हिन्दी काव्य का इतिहास आपका 'नैरंतर्य्येण' कृतज्ञ बना रहेगा। आपके पश्चात् जिन लोगों ने उक्त विषयक ग्रन्थ वा लेख लिखे हैं वा इतः पर लिखेंगे वे लोग भले ही आपकी लिखी हुई बातों पर प्रतिकूल टीका-टिप्पणी करें उनसे आपके ग्रन्थ की अणुमात्र भी गौरव हानि नहीं होगी। किन्तु आपको अपने टीका टिप्पणी करने वालों के पथ प्रदर्शक का माननीय पद प्राप्त रहेगा।

उक्त सेंगर महोदय ने अपने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रन्थ में 1003 कवियों का नामोल्लेख किया है। इन 1003 कवियों में से अपने 844 कवियों के लिखे हुए काव्यों में से अपनी रुचि के अनुसार उत्तमोत्तम अवतरण दिए हैं। इन 844 कवियों में 323 कवि ऐसे हैं जिन्होंने 472 ग्रन्थों की रचना की है। शेष 521 कवि ऐसे हैं जिनके कोई ग्रन्थ सेंगर महोदय को नहीं मिले, अतः आपने उनके स्फुट काव्यों के ही अवतरण अपने उक्त ग्रन्थ में दिये हैं। सेंगर महोदय के इस काव्येतिहास विषयक ग्रन्थ का मननपूर्वक अध्ययन करने से हिन्दी के काव्य की उस महत्ता का खासा बोध हो सकता है जिससे हिन्दी के काव्य को हमारे पूर्वजों ने सर्वतोभाव अलंकृत और परिपूर्ण किया है।

अब आगे हम इस विद्या-विमुख जनाकीर्ण स्थान में बैठे-बैठे, अपने काव्येतिहास विषयक अल्पाति-अल्पज्ञान की सहायता से हिन्दी के प्राचीन काव्य का दिग्दर्शन करने का यत्न करते हैं उससे विज्ञ लोगों को हिन्दी के काव्य की विपुलता, विस्तीर्णता और पूर्णता का अनुमान करने के लिए थोड़ा-सा सहारा अवश्य ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जायेगा।

संस्कृत के पण्डितों ने काव्य के जो दश अंग माने हैं उनका विस्तृत वर्णन संस्कृत के वामनकृत काव्यालंकार, दण्डीकृत काव्यादर्श, जयदेवकृत चन्द्रालोक भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण आदि ग्रन्थों में बहुत विस्तार के साथ किया गया है। आजकल जो लोग संस्कृत के उन ग्रन्थों का यथाविधि अध्ययन करें उन्हें काव्य का मर्म भली-भाँति ज्ञात हो सकता है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते केवल हिन्दी ही जानते हैं वे लोग काव्य के सब लक्षणों से विमुख न रहने पावें इसका प्रबन्ध हमारे प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों ने बहुत अच्छा किया है। संस्कृत ग्रन्थलेखकों ने काव्य के जो लक्षण लिखे हैं उनमें से पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर में जो 'रमणीयार्थ प्रतिपादक, शब्दःकाव्यम्' श्रव्यकाव्य का लक्षण लिखा है उसे संस्कृत के बहुतेरे पण्डित आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार दृश्य काव्य का जो लक्षण भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है उसे उस विषय के ज्ञाता लोग प्रमाण स्वरूप मानते हैं वह लक्षण इस प्रकार है—

मृदु-ललित-पद्यांश गूढ़शब्दार्थहीनम्
जनपद सुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृत रसमार्ग सन्धि संधान युक्तं
स भवति शुभकाव्यं नाटक प्रेक्षकाणम्॥

अब आगे हम अपने भाषा कवियों की काव्य विषयक दो एक समितियों का उल्लेख करते हैं, उससे आप लोग जान जायेंगे कि हमारे प्राचीन भाषा-कवियों ने इस विषय पर कितना विवेकपूर्ण विचार किया है।

सुधानिधि नामक ग्रन्थ में तोष कवि ने कविता का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

भूषण भूषित दूषण हीन प्रवीण महारस में छवि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जिहि में परमारथ स्वारथ पाई॥
औ उकती युवती उलही कवि तोष अनोष भरी चतुराई।
होति सवै सुख की जनिता बनि आवत यों बनिता कविताई॥

बदन कवि ने कविता की व्याख्या यों लिखी है—

रस अनुकूल गुण जामें धुनि झलकत,
नाहीं जति भंग है, रुचिर अति छन्दगति।
जाको पान करत बदन कवि सुधाकोन,
कामिनी अधर मधुमाधुरी यों ना रुचति॥
जा पै ऐसे वचन की रचना करि जानै तौ
निशंक सुख भूपन को कबित्त कहि पैहे पति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाहीं तो सभा में आय आगे सुकविन के तूँ
आपने कलुष से करेजे सों निकासे मति ।।

इस पद्य के अन्त में काव्य गुणोपेत रचना के फल के विषय में कवि कहता है कि यदि कवि काव्य गुण सम्पन्न पद्य रचना बना सकता है तो उसके द्वारा उसे रचनाओं का सुख और राजाओं के ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है, किन्तु इसके विपरीत रचना करने वाले का पद्य कवि के हृदयस्थ पाप का द्योतक हुआ करता है। तात्पर्य बदन कवि कहते हैं कि जो रसोत्पादक कविता नहीं बना सकता उसे उचित है कि वह कविता के नाम से रूखी पद्य रचना न किया करे।

विश्वनाथ कवि ने काव्य की व्याख्या में जो कुछ कहा है वह भी ध्यानास्थ करने योग्य है—

उकति जुगति करि उपमा विचारि चारु
तुक निरधारि शुभ अक्षरन कीजिए।
छन्द दृढ़ बन्दकरि अरथ अनूप धरि
यमक जड़ाऊँ जड़ शोध शुद्ध लीजिए ।।
ललित ललित पद लहै विश्वनाथ कहै
यहै कवि रीति रीझि रीझि रीझि रस पीजिए।
उदक उदायक बलायक समान दान,
गाहक बिना कवित्त नाहक न दीजिए ।।

कविता के लक्षण के विषय में गुलाल कवि ने जो कहा है सो भी नीचे दिया जाता है—

उकति अनूठी आवै ललित नवीन पद
आखर जमावे आछे अमल सुढ़ार में।
अरथ अनूप रूप रस दरसावे हर
बादना बनावे विश्वविविध विचार में ।।
कहत गुलाल छन्द आभरण राखे और
अतिरस भाखे पति वनिता विहार में।
पूछे-कहि आवे औ कहे पै गहि आवे बेगि
सो कवि कहावे छबि पावै दरबार में ।।

एक अज्ञातनामा कवि की उक्ति इस विषय में सुन लीजिए—

प्रथम गणागण और दूजे गण मित्रा मित्र
अनुप्रास वर्णबल इष्ट चहियतु है।
लीला हाव भाव केलि करुणा कटाक्ष व्यंग
अलंकार नायिका को भेदलहियतु है ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंगल की मथन औ भेदाभेद ग्रन्थन को
यमक मिलाय शुभ छन्द गहियतु है।
दूषण न आवे पर भूषण सरस जामें
एतोक्ति होय तो कवित्त कहियतु है।।

ठाकुर कवि का मत भी इस विषय में विचारणीय है। उसका पता निम्नस्थ पद्य से लग सकता है—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर रीझ रिझावैं।
प्रेम को पन्थ कथा हरिनाम की उक्ति अनूठी बनाय सुनावैं।।
ठाकुर सो कवि भावैं हमें जोई भारी सभा में बड़प्पन पावैं।
पण्डित और प्रवीनन हूँ को जो चित्त हरै सो कवित्त कहावैं।।

उक्त पद्यों पर विचार करने से ज्ञात हो सकता है कि अकेली छन्दोमयी वाणी ही काव्य पद की व्यंजक तथा द्योतक नहीं है किन्तु छन्दोमयी रचना में जब कोई लोकोत्तर आनन्द देने वाली अनूठी उक्ति ललित एवं नवीन पदों द्वारा व्यक्त की जाती है, जब वह उक्ति भाव-प्रवण एवं रसात्मक होती है साथ ही वह रचना रस, विवेक, अलंकार तथा छन्दोविवेकादि गुण सम्पन्न होते हैं, तभी वह काव्यपद भोगी हो सकती है। ऐसी ही कर्णप्रिय मनोहारिणी रचना, चाहे वह पद्यमयी हो या गद्यमयी। काव्यत्व पारंगत प्रवीण पण्डितजनों का चित्त प्रसन्न कर सकती है। जिस रचना में रसात्मकता नहीं पाई जाती, जिस रचना में भावप्रवणता की बास तक नहीं जान पड़ती, जिस रचना में कोई लोकोत्तरता नहीं जान पड़ती वह अकेली पद्यमयी होने के कारण कविता नहीं मानी जा सकती। ऐसी पद्य रचना करने वालों के साहस का वर्णन ठाकुर कवि ने निम्नस्थ पद्य में बड़ी मार्मिकता के साथ लिखा है—

सीखलयो मीन मृग खंजन कमल चन्द
सीखलयो जस और प्रताप की कहानी है।
सीखलयो कामधेनु कल्प वृक्ष चिन्तामणि
सीखलयो मेरु औ कुमेरु उर आनी है।।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन रीति
भूलकर याकी नहीं बाँधियत बानी है।
ढेलसो बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल कर जानी है।।

इस पद्य में काव्य तत्व के ज्ञाता ठाकुर कवि ने बड़ी निपुणता के साथ इस बात को इंगित किया है कि जो लोग कविता की मीन, मृग, खंजन, कमल, चन्द्र, कामधेनु, कल्पवृक्ष, और मेरु आदि अलंकारोपयोगी सामग्री को एकत्र कर उसी के भरोसे पद्य रचना कर किसी कवि समाज में उसे उपस्थित करते हैं। उनकी वह कृति रसात्मक एवं चमत्कृति सम्पन्न न होने के कारण कवि समाज में कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप में नहीं मानी जाती किन्तु वह शुष्क और नीरस होने के कारण प्रस्तर प्रहार रूप में मानी जाती है, तात्पर्य यहाँ लौं जो बहुत ही संक्षेप में कहा गया है उससे लेख के श्रोता वा पाठक उस बात को जान सकते हैं कि कविता का सर्वस्व एक मात्र सरस, सुबोध एवं अनूठी उक्ति है और नाना प्रकार के छन्द प्रबन्ध तथा अलंकारादि उसकी सहायक एवं पोषक सामग्री मात्र है। कविता के इस अल्प परिचय को पढ़ वा सुन केवल हिन्दी जानने वालों को प्रसन्नता होगी कि उन्हें काव्य विषयक शिक्षा देने के लिए उनके भूतपूर्व कवियों ने एतद्विषयक उत्तमोत्तम अनेक ग्रन्थों की रचना कर रखी है। इसका विशेष परिचय आगे चलकर इस लेख में दिया जाएगा। उससे कविता के विद्यार्थियों को लाभ उठाना चाहिए। आजकल जो लोग केवल पद्यरचना को ही काव्य मानकर पद्यप्रबन्ध की रचना करते हैं उसे कविता के नाम से छपवाया करते हैं वे लोग यदि हमारे काव्य नियम प्रधान ग्रन्थों को एक बार मनोनिवेशपूर्वक पढ़ लेवें तो उनका एतद्विषयक भ्रम दूर हो जाए और वे सच्ची कविता करने लगें।

यहाँ पर थोड़ी-सी चर्चा कवि के विषय में कर देना उचित और आवश्यक बोध होता है। विदित विश्व में आज दिन जो काव्य ग्रन्थ विद्यमान हैं उनका कृतविद्य सज्जनों में भली-भाँति पठन और मनन किया है। उन लोगों की यह एक ही सम्मति है कि मनुष्य में काव्य करने की शक्ति निसर्गजात हुआ करती है। ऐसे ही प्रकृति सुलभ कवियों का वाग्विलास सच्चा काव्य कहाता है, और अकेले उसी में अपने पाठक वा श्रोता को अलौकिक आनन्द देने की शक्ति रहा करती है। जिन लोगों में कविता करने की शक्ति प्राकृतिक नहीं होती, किन्तु जो लोग काव्य विषयक ग्रन्थों को प्रचण्ड परिश्रम और अध्यवसाय के साथ पढ़कर हठात् कविता करने का साहस किया करते हैं, उनकी वह रचना काव्य तत्व विचक्षण लोगों को, वह लोकोत्तर आनन्द नहीं दे सकती जो उन्हें नैसर्गिक कवि के वाग्विजृम्भण से प्राप्त हो सकता है। ऐसी अवस्था में जो लोग निसर्गजात कवि नहीं हैं वे यदि कविता करने के हठ और दुराग्रह को छोड़कर अपनी शक्ति को काव्यातिरेक साहित्य के अन्य विभाग में लगावें तो हिन्दी के साहित्य का अत्यधिक उपकार हो सकेगा।

काव्य के आचार्यों ने संस्कृत में काव्य लक्षण विषयक जो ग्रन्थ लिखे हैं उनमें काव्य को दस अंगों में विभक्त कर प्रत्येक अंग का वर्णन बहुत ही विस्तारपूर्वक किया है। जो लोग केवल हिन्दी ही जानते हैं उन्हें निराश होने का भय नहीं है। क्योंकि हमारे भूतपूर्व हिन्दी के कवियों ने काव्य के अंगोपांग के विषय में इतने अधिक और विस्तृत ग्रन्थ लिखे हैं कि उनका पूरा-पूरा पता लग जाय तो केवल उनके नामावली की सूची ही एक ग्रन्थ का कलेवर भर देगी। हमारे पास यहाँ पर हिन्दी के काव्य ग्रन्थों का जैसा चाहिए वैसा समुच्चय नहीं है। जो थोड़े से ग्रन्थ हैं उसमें काव्य के विषय में हमने जो स्वल्पातिस्वल्प पढ़ा है उसकी सहायता से आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम बहुत संक्षिप्त रीति से उन कवियों के नाम तथा ग्रन्थों के नाम देते हैं जिन्होंने काव्य के भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन किया है। सबसे पहले हम उन कवियों के नामों की सूची देते हैं जिन्होंने काव्य के छन्द विषयक अंग पर ग्रन्थ लिखे हैं।

हिन्दी भाषा के पिंगल विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत् केशवदास	राम अलंकृत मंजरी
2.	श्रीयुत् गुरुदीन पांडे	वांग्मनोहर
3.	श्रीयुत् गजराज उपाध्याय	वृत्तहार
4.	श्रीयुत् क्षेमकरण	वृत्त भास्कर
5.	श्रीयुत् जगतसिंह	छन्द शृंगार
6.	श्रीयुत् बालकृष्ण त्रिपाठी	रस चन्द्रिका
7.	श्रीयुत् मनिराम कवि	छन्द छप्पनी
8.	श्रीयुत् मतिराम त्रिपाठी	छन्दसार
9.	श्रीयुत् रामसहाय	वृत्तरंगिनी
10.	श्रीयुत् रसपुंजदास	वृत्त विनोद

सभ्यगण, भारत में आज दिन जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें से हिन्दी भाषा के अतिरिक्त और कितनी ऐसी भाषाएँ हैं जिनके पास अकेले छन्द शास्त्र पर इतने वा इनसे अधिक ग्रन्थ होंगे? भरोसा है हमारे इस प्रश्न का उत्तर निषेधात्मक ही मिलेगा। अब आगे हम रस विषयक ग्रन्थ ग्रन्थप्रणेतृ लोगों की तथा उनके ग्रन्थों के नामों की सूची देते हैं—

हिन्दी भाषा के रसविषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत कर्ण भट्ट	रसकल्लोल
2.	सखीसुख	रसदीपक
3.	भिखारीदास	रससारांश
4.	देवककवि	रस बिलास
5.	पुस्कर कवि	रस रत्न
6.	भोज कवि बन्दीजन	रस विलास
7.	मतिराम त्रिपाठी	रसराज
8.	लेखाराज कवि	रस रत्नाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9.	सुखदेव मिश्र	रसावर्ण
10.	शुंभूनाथ मिश्र	रस कल्लोल
11.	विश्वनाथ कवि	रसरंजन
12.	सूरत मिश्र	सरस रस

सभ्यगण, देखिए अकेले रस का बोध कराने के लिए हिन्दी भाषा के पास कितने ग्रन्थ हैं। अब आगे हम नायिका भेद विषयक ग्रन्थों की सूची देते हैं।

नायिका भेद विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत अस्कन्दगिरि	अस्कन्दविनोद
2.	श्रीयुत अनन्त	अनन्तानन्द
3.	श्रीयुत खण्डन कवि	भूषणदास
4.	श्रीयुत यशवन्तसिंह	शृंगार शिरोमणि
5.	श्रीयुत दयानाथ दूवे	आनन्दरस
6.	श्रीयुत बलदेव अवस्थी	शृंगार सुधाकर

विज्ञ सभ्यगण, नायिका भेद के ग्रन्थों की यह बहुत छोटी सूची है इस विषय पर न जाने कितने ग्रन्थ होंगे जिनका पता मिश्रबन्धुकृत हिन्दी काव्य का इतिहास नामक ग्रन्थ से लगेगा। अब आगे हम नख शिख विषयक ग्रन्थों की सूची देते हैं।

नखशिख वर्णन विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत आजम	नखशिख
2.	श्रीयुत अनुनैन	नखशिख
3.	श्रीयुत उमेद	नखशिख
4.	श्रीयुत कामताप्रसाद	नखशिख
5.	श्रीयुत गुरुदीन पाण्डे	नखशिख
6.	श्रीयुत ग्वालकवि	नखशिख
7.	श्रीपुत दिनेश कवि	नखशिख
8.	श्रीयुत देवकीनन्दन शुक्ल	नखशिख
9.	श्रीयुत नवीकवि	नखशिख
10.	श्रीयुत पजनेश	नखशिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11.	श्रीयुत परमकवि	नखशिख
12.	श्रीयुत परमानन्द पुराणिक	नखशिख
13.	श्रीयुत बलिभद्र सनाढ्य	नखशिख
14.	श्रीयुत रसराज कवि	नखशिख

सभ्य, महोदयगण इसके आगे हम अलंकार विषयक ग्रन्थों की सूची देते हैं।

अलंकार विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत गदाधर	अलंकार चन्द्रोदय
2.	श्रीयुत गिरिधर वनारसी	भारती भूषण
3.	श्रीयुत गोपकवि	अलंकार चन्द्रिका
4.	श्रीयुत जगतसिंह	साहित्य सुधानिधि
5.	श्रीयुत युगलकिशोर भट्ट	अलंकार निधि
6.	श्रीयुत यशवन्तसिंह	भाषा दूषण
7.	श्रीयुत हरिनाथ	अलंकार दर्पण
8.	श्रीयुत भूषण त्रिपाठी	शिवराज भूषण

इसके बाद काव्य के अंगोपांग ग्रन्थों की सूची देते हैं। जिनमें काव्य के अंगोपांग का एक ही ग्रन्थ में वर्णन किया गया है।

काव्य के अंगोपांग विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत केशवदास	कविप्रिया
2.	श्रीयुत ग्वालकवि	1. साहित्य भूषण 2. साहित्य दर्पण
3.	श्रीयुत चिन्तामणि त्रिपाठी	काव्य प्रकाश, काव्य विवेक
4.	श्रीयुत भिखारीदास	काव्य निर्णय
5.	श्रीयुत धनीराम कवि	काव्य प्रकाश
6.	श्रीयुत भावन कवि	काव्य शिरोमणि
7.	श्रीयुत रघुनाथ कवि	काव्य कलाधर
8.	श्रीयुत सेनापति	काव्य कल्पद्रुम
9.	श्रीयुत समनेश कवि	काव्य भूषण
10.	श्रीयुत बाबू जगन्नाथप्रसादजी (भानु)	काव्य प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञ एवं विवेकी सभ्यगण, क्या इस छोटी-सी सूची को देखकर भी कोई ऐसा हठी होगा जो कहेगा कि हिन्दी भाषा का प्रवेश कालेजों में करा दिया जाए तो काव्य विषयक उच्च शिक्षा देने के लिए हिन्दी भाषा ग्रन्थ कहाँ से देगी ? बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई के लिए हम समझते हैं इतने ग्रन्थ ही कई वर्ष लौं काम दे सकेंगे। इसके आगे उन ग्रन्थों की सूची दी जाती है जिनमें हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों के नाना विषयक काव्यों का संग्रह किया गया।

संग्रह	संग्रहकर्ता का नाम	संग्रह का नाम
1.	श्रीयुत कालिदास त्रिवेदी	कालिदास हजारा
2.	श्रीयुत युगलकिशोर	किशोर संग्रह
3.	श्रीयुत तुलसी	कविमाला
4.	श्रीयुत बालादेव कवि	सत्यकवि गिराविलास
5.	श्रीयुत मातादीन	कवित्त रत्नाकर
6.	श्रीयुत बाबू परमानन्द सुहाने	नखशिख
7.	श्रीयुत बाबू परमानन्द सुहाने	हजारा
8.	श्रीयुत बाबू परमानन्द सुहाने	पावस कवित्त रत्नाकर
9.	श्रीयुत नानक	ग्रन्थ साहब
10.	श्रीयुत भारतेन्दुबाबू हरिश्चन्द्र	सुन्दरी तिलक
11.	श्रीयुत पं० महेशदत्त	भाषा काव्य संग्रह
12.	श्रीयुत लाला गोकुल प्रसाद	दिग्विजयभूषण
13.	श्रीयुत ठाकुर प्रसाद	रस चन्द्रोदय

कहना नहीं होगा कि दूत संग्रहात्मक ग्रन्थों में सैकड़ों कवियों के विविध विषयात्मक काव्यों के सहस्रों उदाहरण दिये गये हैं। ये ग्रन्थ हिन्दी के पद्यात्मक ग्रन्थों का खासा दिग्दर्शन करा सकते हैं। इसके आगे जो सूची दी जाती है उससे पाठकों को ज्ञात होगा कि हिन्दी में कितने कवियों ने रामायण नामक पद्यात्मक ग्रन्थ लिखे हैं।

भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा रची हुई रामायणों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत अयोध्याप्रसाद वाजपेयी	राम कवितावली
2.	श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी	रामविलास
3.	श्रीयुत केशवदास	रामचन्द्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.	श्रीयुत गजराज उपाध्याय	रामायण
5.	श्रीयुत गुलाबसिंह पंजाबी	रामायण
6.	श्रीयुत क्षेमकरण	रामगीतमाला
7.	श्रीयुत जानकीप्रसाद पवार	रामायण
8.	श्रीयुत महात्मा तुलसीदासजी	चौपाई रामायण बरवैरामायण, कवित्तरामायण
9.	श्रीयुत यूथपूरणचन्द	रामरहस्य रामायण
10.	मून ब्राह्मण	रामरावण युद्ध
11.	शम्भूनाथ बन्दीजन	रामविलासरामायण
12.	शंकर कवि	कवित्त रामायण
13.	सहजराम बनिया	रामायण सातों काण्ड

सहृदय सभ्यगण, पीछे जिन ग्रन्थों की सूचियाँ दी गई हैं उनमें से किसी ग्रन्थ के विषय में हमने लेखा विस्तारभय के कारण कुछ नहीं लिखा पर इस रामायण विषयक सूचीस्थ तुलसीदासकृत चौपाई रामायण के विषय में निम्नलिखित दो एक समालोचना गर्भित पद्यों का उल्लेख करने के लोभ को हम संभाल नहीं सकते—

वेद मत सोधि सोधि बोधि के पुराण सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नामहू की चरचा चलावतो॥
बेनी कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीत यह,
पाहन हिये में कौन प्रेम उमगावतो।
भारी भव सागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥1॥

विद्या को नितान है कि वेद को विधान है कि,
नीति को विधान है कि शास्त्र को प्रमाण है।
विपति विहान है कि सम्पति मकान है कि,
कलिकों कृशानु है कि भाषत प्रधान है।
भक्ति खरिहान है कि मुक्ति को निशान है कि,
धर्म की दुकान है कि जगत को त्रान है॥
सन्तन को प्राण है कि शंकर को ध्यान है कि,
रामरूपमानिक गुँसाई की जबान है॥2॥

तुलसीकृत रामायण के विषय में उक्त पद्यों में जो कुछ कहा गया है वह अक्षर अक्षर सत्य है। ऐसे उत्तम महाकाव्य जिस हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं उस हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा के साहित्य की ओर अंगुली दिखाने का साहस कौन कर सकेगा ? भारत में यह एक ही ग्रन्थ है जिसका नव करोड़ भारतवासी नित्यप्रति पारायण किया करते हैं।

आगे उन ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थों की सूची दी जाती है जिन्होंने संस्कृत के बड़े-बड़े पौराणिक, नीतिविषयक और कोषविषयक ग्रन्थों का हिन्दी में काव्य-गुणीपत पद्यों में अनुवाद किया है।

संस्कृत के पौराणिक नीति और कोष ग्रन्थों के अनुवादों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत अनन्य कवि	भाषादुर्गा
2.	श्रीयुत कालीदीन	भाषादुर्गा
3.	श्रीयुत श्रीधर कवि	भवानी छन्द (दुर्गा)
4.	श्रीयुत कृपाराम ब्राह्मण	भागवत का उल्था
5.	श्रीयुत लोनेसिंह	भाषादशम स्कन्ध
6.	श्रीयुत नन्ददास	दशम स्कन्ध
	श्रीयुत नन्ददास	अनेकार्थ (कोष)
7.	कुम्भकर्ण राना	गीत गोविन्द तिलक
8.	श्रीयुत खुमान कवि	अमरकोष का उल्था
9.	श्रीयुत रामचन्द गुजराती	गीत गोविन्दादर्श
10.	श्रीयुत प्रेमीयमन	अनेकार्थ नाम माला (कोष)
11.	श्रीयुत सुवंश शुक्ल	भाषा अमरकोष
12.	श्रीयुत पराग कवि	भाषा अमर (तीनों कांड)
13.	श्रीयुत चिरंजीव	भाषा भारत
14.	श्रीयुत देवमणि	भाषा चाणक्य नीति
15.	श्रीयुत लाल कवि	चाणक्य नीति का उल्था
16.	श्रीयुत शिवसिंह सेंगर	भाषा ब्रह्मोत्तर खण्ड
17.	श्रीयुत दीनानाथ	भाषा ब्रह्मोत्तर खण्ड
18.	श्रीयुत नारायणदास कवि	हितोपदेश भाषा
19.	श्रीयुत मधु सूदनदास	रामाश्वमेध (भाषा)
20.	श्रीयुत शम्भूनाथ त्रिपाठी	भाषा वैताल
21.	श्रीयुत महाकवि नन्ददास	रसपंचाध्यायी
22.	श्रीयुत शम्भूनाथ मिश्र	भाषा शिव पुराण
23.	श्रीयुत बलदेवदास	कृष्णखण्ड भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यगण; जिस समय हिन्दी भाषा के उक्त काव्य ग्रन्थों पर जिनका स्थानाभाववश यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया है, मिश्रबन्धु कृत 'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक ग्रन्थ में समालोचनात्मक सोदाहरण टीका-टिप्पणियाँ प्रकाशित की जायेंगी, उस समय हिन्दी भाषा के साहित्य की प्रौढ़ता और अद्‌यता का लोगों को ठीक-ठीक बोध होगा। जब तक उक्त ग्रन्थ प्रकाशित नहीं किया जाता तब तक भरोसा है कि यह स्वल्पसूची ही हिन्दी भाषा के काव्य विभाग की अद्‌यता पर कुछ प्रकाश पहुँचावेगी।

इन पौराणिक तथा नीति विषयक ग्रन्थों के सिवा, पदात्मक भक्ति विषयक तथा पद्यात्मक नीति एवं उपदेश विषयक और भी जो काव्य लक्षणयुक्त ग्रन्थ हिन्दी में लिखे गये हैं उनका बोध नीचे लिखी हुई सूची से हो सकेगा।

पदात्मक भक्ति और नीति तथा उपदेश विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत अनाथदास	विचारमाला
2.	श्रीयुत कबीरदास	बीजक रमैनी
3.	श्रीयुत पं० उमापति त्रिपाठी	दोहावली
4.	श्रीयुत बाबू गोपालचन्द्र शाह	दशावतार कथामृत
5.	श्रीयुत श्री गुरु गोविन्दसिंह	ग्रन्थसाहब
6.	श्रीयुत क्षेमकरण	रामगीत माला, पदविलास
7.	श्रीयुत महात्मा तुलसीदास	कवितावली, गीतावली, छन्दावली, दोहावली, सतसई, संकटमोचन, जानकीमंगल आदि
8.	श्रीयुत देवीदास	प्रेमरत्नाकर
9.	श्रीयुत नन्दकिशोर	रामकृष्णगुणमाला
10.	श्रीयुत नवलसिंह	हरिनामावली
11.	श्रीयुत मानिकदास	मानिक बोध
12.	श्रीयुत नन्ददास	नाममाला
13.	श्रीयुत रामकृष्ण चौबे	विनयपचीसी
14.	श्रीयुत वृन्दकवि	वृन्द विनोद सतसई
15.	श्रीयुत बिहारीलाल चौबे	सतसई

हिन्दी भाषा के लोग पौराणिक, धार्मिक, नीति एवं उपदेशादि विषयों पर ही ग्रन्थ लिखकर चुप नहीं रह गये, किन्तु उन लोगों ने वेदान्त जैसे जटिल किन्तु हितकर विषयों पर भी ग्रंथ लिखकर हिन्दी भाषा के साहित्य की मान-मर्यादा बढ़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हिन्दी में इस विषय पर जो ग्रन्थ पाये जाते हैं उनका उल्लेख निम्नलिखित सूची में किया जाता है—

योग और वेदान्त विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकार का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत अनन्यदास	अनन्ययोग
2.	" इच्छाराम	ब्रह्मविलास
3.	" गुलाबसिंह पंजाबी	मोक्ष पन्थ
4.	" चरणदास	ज्ञानस्वरोदय
5.	" देवदत्त कवि	योग तत्त्व
6.	" निपटनिरंजन स्वामी	शातसरसी
7.	" नवलदास	ज्ञान सरोवर
8.	" श्यामाशरण	भाषा स्वरोदय

इसमें अणुमात्र भी शंका नहीं है कि हिन्दी भाषा में शृंगार रस विषयक कविता का विस्तार अत्यधिक है। उक्त रस विषयक कविता के 'जानि परैन कछु मन की मिली हैं कबहूँ हमें ठगती हो।' 'कहो प्राणप्यारी क्या यों ही हाथ मला करें'…इत्यादि पद्यों को पढ़ लोग सहसा कह उठते हैं कि हिन्दी भाषा का काव्य बस ऐसे-ही-ऐसे भावों की कविता से भरा हुआ है। ऐसे लोगों के भ्रम निवारणार्थ हम थोड़े से ऐसे कवियों और उनके काव्यों की सूची देते हैं। जिन लोगों ने अपने आश्रयदाता राजा महाराजाओं के चरित्र, उनके वंश वर्णन, यशोगान, युद्ध आदि का बहुत उत्साहपूर्वक भाषा में वर्णन किया है। इस सूची को देख वर्तमान राजा लोग अपने पूर्वजों का वर्तमान समयानुसार यदि पदानुसरण करें तो उससे हिन्दी भाषा की और उसके साथ उनकी बहुत कुछ भलाई होने की सम्भावना है।

राजाओं की प्रशंसा, उनके युद्ध तथा जीवन चरित्रादि विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीमान् राजा उदयसिंह	ख्यातनामा (जीवनचरित्र)
2.	श्रीयुत चन्द्रकवि	पृथ्वीराज रायसा
3.	" बेनीमाधवदास	तुलसीदास का जीवन चरित्र
4.	" नारायणदास	शिवपुर के चन्देलों की वंशावली
5.	" भोजकवि मिश्र	मिश्र शृंगार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.	"	महाराजा मानसिंह कछवाह	मान चरित्र
7.	"	मानदास	रामचरित्र
8.	"	नरोत्तमदास	सुदामाचरित्र
9.	"	पं० श्यामबिहारी मिश्र	लवकुश
10.	"	प्रियादास स्वामी नाभादासकृत भक्तमाल की कवित्तात्मक टीका	
11.	"	सरस्वती ब्राह्मण	कविन्द्र कल्पलता
12.	"	खुरमानसिंह सिसोत	खुमानरायसा
13.	"	गोविन्दराम बन्दीजन	हारावती
14.	"	चन्दनराय कवि	केशरीप्रकाश
15.	"	प्राणनाथ	चकाव्यूह

जिस वस्तु की जिस समय आवश्यकता है उसके प्रचार की जब धनी लोग वा राजा महाराजागण चाहते हैं तब वह किस द्रुतगति से वृद्धि लाभ करती है, इसकी कल्पना हमारे पाठकों को नीचे दी हुई शालिहोत्र विषयक ग्रन्थों की सूची से हो सकेगी। इस देश के राजा-महाराजाओं धनी लोगों के पास जब धन विपुलता के साथ था, जिससे वे लोग घोड़े व हाथी बहुत सुलभता के साथ खरीदकर पाल सकते तब उन्हें उन पशुओं के अंगप्रत्यंग के परीक्षा के ज्ञान की नित उठ आवश्यकता पड़ा करती थी, जान पड़ता है इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही हिन्दी भाषा के पद्य में शालिहोत्र विषयक इतने ग्रन्थों की सृष्टि की गई है। जिन लक्ष्मी कृपा पात्र सज्जनों की सहायता से ये ग्रन्थ बनाये गये हैं उनकी इस दान शूरता से इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि ग्रन्थकारों की सहायता करना इस देश के धनाढ्य लोगों के लिए कोई नयी बात नहीं है किन्तु वह उनके यहाँ की प्राचीन वस्तु है। भारत के वर्तमान धराधीश धनाढ्यों को अपनी इस प्राचीन प्रथा का वर्तमान समयानुमोदित अनुसरण करना उचित बोध होता है।

शालिहोत्र विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या		ग्रन्थकर्त्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत	चेतनचन्द्र	अश्वविनोद
2.	"	यशवन्तसिंह	शालिहोत्र
3.	"	दयानाथ	"
4.	"	निधान	"
5.	"	प्रधान	"
6.	"	लाला पाठक	"
7.	"	लक्ष्मण कवि	"
8.	"	हुलासराम	"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के साहित्य संसार में आजकल चारों ओर से इस बात का निनाद कर्णगत हो रहा है कि हिन्दी के साहित्य में दृश्य काव्य के ग्रन्थों का सहसा अभाव ही है और है भी बहुलांश में ऐसा ही। अधोभाग में जिन ग्रन्थों की विवरणावली दी गयी है उनमें से थोड़े से ऐसे हैं कि जो इस बात को प्रमाणित और समर्थित करते हैं कि हिन्दी के प्राचीन काव्य लेखकों ने नाटक लिखने की सर्वतोभाव उपेक्षा नहीं की है। हाँ, यह बात सच है कि उनके ग्रन्थ आजकल के नाटक ग्रन्थों की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते। सन्तोष का विषय है कि हिन्दी के जीवन-सर्वस्व भारतेन्दुजी ने जब से हिन्दी में स्वयं नाटक लिखकर लोगों को इसका पथ लखा दिया तब से आज पर्यन्त हिन्दी में बहुत नाटक ग्रन्थ लिखे गये हैं। आशा है कि थोड़े समय में ही हिन्दी के साहित्य की नाटक विषयक ऊनता दूर हो जायेगी।

नाटकों, काव्यों और राग रागिनी विषयक ग्रन्थों की सूची

संख्या	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	ग्रन्थ का नाम
1.	श्रीयुत कृपाराम	माधव सुलोचना (भाषा चम्पू)
2.	" गुमानी मिश्र	काव्य कलानिधि (भाषा नैषध)
3.	" केशवदास	विज्ञानगीता (नाटक)
4.	" तानसेन	रागमाला
5.	" निवाज	भाषा शकुन्तला नाटक
6.	" रघुराज गुजराती	माधव विलास नाटक
7.	" हृदयराम	हनुमन्नाटक
8.	" रामसखे	नृत्य राघव मिलन
9.	" वृजनाथ	रागमाला

मननशील सभ्यगण, यहाँ लौं बहुत ही संक्षिप्त रीति से हिन्दी का जो परिचय दिया गया है, उससे भरोसा है कि आप लोग उसके यथार्थरूप का अनुमान अवश्य ही कर सकेंगे। साथ ही आपको दृढ़ निश्चय हो जायेगा कि हिन्दी भाषा का काव्य भण्डार विविध विषयक उत्तमोत्तम ग्रन्थों से ओतप्रोत भरा हुआ है। जिस समय हम लोगों के उद्योग से हिन्दी के इन काव्य ग्रन्थों द्वारा, प्राथमिक शिक्षा से लेकर विद्यालय और विश्वविद्यालय तक में काव्य विषयक शिक्षा दी जाने का सुप्रबन्ध हो जायगा, उस समय हमारा यह हिन्दी काव्यों का ग्रन्थ समूह जो उपकार कर सकेगा वह निःसन्देह कल्पनातीत है। अतः इस समय हम सब लोगों को एक प्राण और एक मन होकर ऐसा उपादेय उद्योग और यत्न करना चाहिए कि जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी भाषा में आदि से अन्त लौं शिक्षा देने का प्रबन्ध हमारी विद्यातत्त्वपारीण सरकार कर देवे।

सहृदय सभ्यगण, इस प्रसंग पर एक बात की ओर आप लोगों का चित्त विशेषतया आकृष्ट किये बिना आगे चलने को चित्त नहीं चलता। यह बात यह है कि अपनी जन्मभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में कविता रचना नितान्त कठिन कार्य है। इसे प्रायः सभी लोग मानते हैं। इसका कारण भाषाओं की कठिनता और दुर्बोधता ही कहा जा सकता है। सन्तोष का विषय है कि हमारी हिन्दी भाषा इस कठिनता और दुर्बोधता के जाल से अबाल्यात् मुक्त है। हिन्दी भाषा की सरलता और सुबोधता इतनी प्रबल और विख्यात है कि उस पर मुग्ध होकर तैलंग भाषा-भाषी रायचन्द्र नागर और मराठी भाषा-भाषी श्रीमन्त्रीवर फालकराव आनोबा आदि सज्जनों ने हिन्दी में विद्वज्जनों द्वारा माननीय काव्य ग्रन्थों की रचना की है। इन पर-भाषा-भाषी हिन्दू सज्जनों के वांगमय को देखने के पश्चात् हमारी दृष्टि जब उन अरबी, फारसी, और तुर्की भाषा-भाषी परधर्मावलम्बी उच्चाशय सज्जनों की ओर जाती है जिन्होंने हठधर्म का त्याग कर हिन्दी भाषा की प्रकृति सुलभ सरलता, मनोहरता और सुबोधिता पर मोहित होकर उसमें मनोहर काव्य रचना की है तब हम कृतज्ञागर्भित और आश्चर्यपूरित आनन्द में हो जाते हैं। हमारे इस आनन्द की मात्रा तब और भी बढ़ जाती है अब हम देखते हैं कि इन मुसलमान कवियों ने राजा के प्रभाव से दबकर वा धन प्राप्त करने के लोभ से हिन्दी में कविता नहीं की है क्योंकि इन मुसलमान हिन्दी के कवियों में से कई स्वयं अनन्त अधिकार और सम्पत्ति से सम्पन्न थे। अपने इस कथन को समर्थित करने के लिए हम आगे दस-पाँच मुसलमान हिन्दी के कवियों के शुभनाम और उनमें से दो एक सज्जनों की हिन्दी काव्यरचना के उदाहरण भी देते हैं।

हिन्दी के मुसलमान कवियों के नाम

1. श्रीमान सम्राट मुहम्मद जलालुद्दीन अकबरशाह बादशाह
2. श्रीयुत अहमद कवि
3. ” आजम कवि
4. ” आदिल कवि
5. ” आकूब खाँ
6. ” अनवर खाँ
7. ” अजीमन
8. ” कादर
9. ” जमाल कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. " मीरन
11. " महबूब
12. " मुहम्मद

इन सज्जनों में से बहुतेरों ने हिन्दी में पद्य ग्रन्थों की रचना की है, अनेक ने हिन्दी के कवियों का उचित आदर-सत्कार कर उनके ग्रन्थों का समर्पण स्वीकृत किया है। और कई लोगों ने स्फुट काव्य की रचना की है।

उक्त मुसलमान कवियों में से दो-एक की कविता के नीचे उदाहरण दिये जाते हैं—

सवै भूमि गोपाल की,
तामें अटक कहा
जाके मन में अटक है,
सोई अटक रहा॥
दीन जान सब दीन,
एक दुरायो दुसहदुख
सो अब हम कह दीन,
कुछ नहिं राख्यो बीरवर॥

(अकबरशाह)

देखत कै नीके परिनाम बहु आदर के,
देखत भलाई सदा जीव में जेर रहैं।
भेद भेद पूछैं मूछैं टेवत न आवै लाज,
पाप के समूह सिन्धु आँखिन अरे रहैं॥
कादर कहत जे तलासिबे को,
हाट बाट, हूमें खरे रहैं॥
निन्दा को जुनमे जिन्हें चुगली अधार,
पर कारज मिटाइवे के खोज ही परे रहैं॥

(कादर)

रहिमन ओछ प्रसंग से, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावत सम्पुटी, मार सहत घरियार॥

(रहीम)

मन के मनसूबा सबै, मनहीं माँहि बिलाहि।
ज्यों पानी के बुलबुला, उठि उठि बुझि बुझि जाहिं॥

(जमाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानै राग रागिनी कवित्त रख दोहा छन्द,
जप तप तेग त्याग एक सी ग्रतन का।
महबूब उरख न देखि कै मित्रन की,
विचित्र हरि भाँति में रिझैया नुकतन का।।
जासै जो कबूलै सो न भूलै भूलै माफ करे,
साफ दिल आकिल लिखैया हरफन का।।
नेकी से न न्यारा रहै बुद्धि से किनारा गहै,
ऐसा मिले प्यार तो गुजारा चले मन का।।

(महबूब)

काव्यकला विदग्ध सभ्यगण, इन थोड़े से पद्यों पर विचार करने से आपको तत्क्षण ज्ञात हो जायेगा कि ये धन विभवाधिकार-सम्पन्न मुसलमान कविगण निज जन्मभाषा अरबी, फारसी के चूड़ान्त पाण्डित्य के साथ-साथ हिन्दी भाषा पर भी असाधारण अधिकार रखते थे। बिना ऐसा अधिकार रखे कोई इतनी मनोहर एव ललित रचना विदेशी भाषा में नहीं कर सकता। साथ ही उक्त पद्यों से यह भी ज्ञात होता है कि उच्च शिक्षा प्राप्ति के कारण इन लोगों के हृदय धर्मांधता-दूषित नहीं थे। इनका वाग्विलास उच्च स्वर से साक्ष्य दे रहा है कि इन सज्जनों का दिल बहुत सरस एवं न्यायप्रिय था। सन्तोष का विषय है कि आज दिन भी श्रीयुत सैय्यद अमीर अली (मीर) और श्रीयुत छेदाशाह आदि जैसे अनेक मुसलमान कवि अपने पूर्वजों के पदाकों का अनुसरण करते हुए हिन्दी के हिन्दू कवियों के साथ हिन्दी भाषा की सेवा अब्याज रूप से कर रहे हैं।

विज्ञ एवं विवेकी सभ्यगण, यहाँ लौं हिन्दी कविता के विषय में जो कुछ निरूपण किया गया है उससे हिन्दी कविता के भण्डार में किस-किस विषय पर कैसे-कैसे उत्तमोत्तम ग्रन्थ विद्यमान हैं, इस बात का आप लोगों को थोड़ा-सा परिचय मिल ही गया होगा। अब आगे इस काव्य की भाषा प्रणाली और भाव प्रवणता के विषय में विचार किया जाता है।

सूरदास जी के पद, तुलसीदास की पद्य रचना, सेनापति, पद्माकर, ठाकुर, गिरिधर और घाघ आदि की कविता जिस भाषा में आज दिन पायी जाती है उसे आजकल के जो हिन्दी भाषा-भाषी लोग ब्रजभाषा की कविता कहकर हिन्दी की कविता स्वीकृत करने में संकोच करते हैं वे बड़ी भारी भूल करते हैं। क्योंकि जिस समय में उक्त कवियों तथा भक्तों ने अपने-अपने ग्रन्थ रचे थे उस समय उनकी गद्य और बोलचाल की भाषा उनकी पद्य की भाषा मान रहे हैं वह यथार्थ में सूर, तुलसी और घाघ की पद्य भाषा का रूपान्तर मात्र है।

पुरातत्ववेत्ता सज्जनों की जाँच पड़ताल ने जिस प्रकार संसार की अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीजों पर प्रकाश पहुँचाकर उनकी परिवर्तनशीलता पुष्ट प्रमाणों तथा सयुक्तिक तर्कों द्वारा सिद्ध की है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन भाषा-तत्व विशारदों ने भी ऋग्वेद की भाषा प्रणाली से लेकर वर्तमान हिन्दी की भाषा-शैली पर्य्यन्त की जाँच पड़ताल कर यह बात सुचारू रूपेण सिद्ध कर दी है कि कालगति के अनुसार समस्त देश की भाषाओं को, विकासतत्व के नैसर्गिक नियमानुसार उन्नति और अवन्नति भोगनी पड़ती है। इस प्रकृति सुलभ नियम का पालन करती हुई हमारी हिन्दी भाषा अनेकानेक शब्दों और प्रयोगों का त्याग एवं रूपान्तर, ग्रहण करती हुई और उसी प्रकार अन्यान्य भाषाओं से नूतन शब्द प्रयोगों का स्वीकार करती हुई वर्तमान मनोहर रूप को प्राप्त हुई है।

पुरातत्व खोज की प्रथानुसार भारतीय भाषाओं की जाँच पड़ताल विद्वद्वर ग्रियर्सन साहब ने अपने Linguistic Survey of India नामक ग्रन्थ में बहुत उत्तमता के साथ की है। मनुष्य गणना के प्रत्येक प्रान्तिक अधिकारी ने भी अपने प्रान्त की भाषाओं का ऐतिहासिक वर्णन किया है। इन सब भाषा विषयक वर्णनों का मनोविवेशपूर्वक पठन और मनन करने से तद्विषयक रहस्यों का ज्ञानवर्धक बोध हो सकता है। हिन्दी भाषा-भाषी आंग्ल-भाषा विशारद जन चाहें तो उक्त ग्रन्थों के अवलोकन द्वारा अपनी जन्मभाषा हिन्दी का ऐतिहासिक ज्ञान अत्यन्त सुलभ रीति से प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते हैं उनकी एतद्-विषयक जिज्ञासा-तृप्ति का मार्ग भी खुला हुआ है। इस मार्ग को खोलने और परिष्कृत करने का अभिनन्दनीय पुण्य हमारे स्वनाम धन्य, हिन्दी भाषा के पूर्ण प्रेमी और प्राकृतिक पक्षपाती श्रीमान पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी को प्राप्त हुआ है। आपने हिन्दी में 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' नामक एक बहुत ही छोटी किन्तु सार-बाहुल्यगर्भित पुस्तक लिखी है। उसके पठन से हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक महत्व का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जिन सज्जनों को इसके जानने की रुचि हो, वे द्विवेदी जी की उक्त पुस्तक से अपनी मनस्तुष्टि अत्यधिक परिश्रम और व्यय किये बिना ही कर सकते हैं। यह पुस्तक प्रयाग के इंडियन प्रेस से।) में मिल सकती है।

भाषाओं के इन निरन्तर होने वाले परिवर्तनों का जो ज्ञान एतद्विषयक पुस्तकों द्वारा प्राप्त होता है उसका समर्थन आज दिन इस विशाल देश भारत के उन लोगों की परिवर्तित भाषाओं से भी पूर्णतया हो सकता है जो अपनी जन्मभूमि को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में चिरकाल से जा बसे हैं। आजकल प्रवास करने में बहुत सुविधा हो जाने के कारण एक प्रांत के लोग दूसरे प्रान्त में प्राय: आया-जाया करते हैं ऐसे लोगों को यह बात ज्ञात हो चुकी होगी कि संयुक्त प्रान्त के जो लोग मध्यप्रदेश, बराड, बम्बई आदि में चिरकाल से जा बसे हैं, या उक्त प्रान्तों के जो लोग चिरकाल से संयुक्त प्रान्त और मध्यप्रदेश आदि में आ बसे है उनकी वर्तमान भाषाओं में आकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाताल कैसा महदंत्तर पड़ गया है। केवल भाषा ही में नहीं किन्तु उन लोगों की रहन-सहन, वेश-भूषा और रीति-रिवाज में भी अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। इन लोगों में से जिन लोगों के आवागमन का सम्बन्ध अभी तक अपनी जन्मभूमि के साथ बना हुआ है उन लोगों में एतद्विषयक भेदभाव की मात्रा उतनी चढ़ी बड़ी नहीं दीख पड़ती जितनी उन लोगों में पायी जाती है; जिन लोगों ने अपनी मातृभूमि का सम्पर्क सर्वतोभाव परित्यक्त कर दिया है। इस संयुक्त प्रान्त में कान्यकुब्ज ब्राह्मण प्रायः उसके प्रत्येक जिले में पाये जाते हैं। जिस कन्नौज के कारण इस ब्राह्मणवृंद का नाम कान्यकुब्ज ब्राह्मण पड़ा है, उस कन्नौज में बैसवाड़े, उत्तरवेद तथा संयुक्त प्रान्त के अन्याय जिलों में बसने वाले कान्यकेब्ज ब्राह्मणों की बोली में बहुधा भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार की भिन्नता पूने के उन दक्षिणात्यों की मातृभाषा में पाई जाती है जो अपनी जन्मभूमि को छोड़कर दीर्घ-काल से मध्यप्रदेश के सागर, जबलपुर, दमोह, नरसिंहपुर, वर्धा और भण्डारा आदि जिलों में आकर बस गये हैं। तात्पर्य देश कालानुमोदित परिवर्तन समूचे संसार की भाषाओं और बोलियों में जिस प्रकार 'नैरंतर्य्येण' होते चले आये हैं, उसी प्रकार भविष्यत में भी वे होते चले जाएँगे। ऐसी अवस्था में चन्दबरदाई, सूर तुलसी की रचना को हिन्दी की रचना न मानना अपना भाषातत्त्व विषयक अज्ञान प्रकट कर अपनी चीज का अपमान करने के सदृश्य है। इसके सिवा पद्य रचना करने के विषय में यह बात भी आप लोगों को ज्ञात है कि जिसको जिस शैली से कविता लिखने का अभ्यास पड़ जाता है उससे उसी शैली से कविता करते बनती है। राय देवी प्रसाद जी (पूर्णकवि) अपने काव्यजन्य भावों को प्राचीन भाषा शैली द्वारा कर सकते हैं। इसके विपरीत भाषा-शैली ग्रहण करने को ये सज्जन यदि बाध्य किये जाँय जो इनसे उतनी उत्तम रचना करते न बनेगी जितनी उत्तम ये अभी कर सकेंगे। इन सज्जनों से अपनी शैली का त्याग करने की प्रार्थना करने से लाभ कुछ भी नहीं होगा किन्तु हानि बड़ी भारी होगी अर्थात जो भाव ये अपनी स्वीकृत शैली में प्रगट कर देंगे उससे हिन्दी कविता का कोष विहीन रह जाएगा। अतः मेरी प्रार्थना है कि जो सज्जन प्राचीन भाषा प्रणाली में पद्य रचना करते हैं उनकी उस रचना की निन्दा या अवहेलना न की जाए। विकास तत्त्व की स्वाभाविक गति हिन्दी भाषा में खड़ी बोली की कविता के विस्तार को निसर्गतः बढ़ा देगी। जो लोग इस शैली को खड़ी-बोली की भाषा-शैली को रोकना चाहते हैं वे प्रकृति के विरुद्ध काम करने में कभी सिद्धार्थ नहीं हो सकेंगे।

सुख और सन्तोष का विषय है कि ऋग्वेद के रचनाकाल में जो भाषा देश में प्रचलित थी उसका जिस प्रकार संस्कार होते-होते पाणिनी के समय में उसे जो रूप और स्थिरता प्राप्त हुई, जिसके कारण वह सम्पूर्ण भारत में एक सी काम में लायी जाने लगी, ठीक उसी प्रकार अब थोड़े ही समय के अनन्तर हमारी वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी को भी वैसी ही स्थिरता प्राप्त हो जायेगी और वह समूचे भारत की एक मात्र राष्ट्रभाषा का आदरणीय पद प्राप्त करेगी।

यह तो सर्वतोभाव स्वीकृत सिद्धान्त है कि जिस समय जो ग्रन्थ लिखा जाता है, उसमें उस समय के लोगों की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं के साथ-साथ उसके प्रणेता की रुचि और उसके भावों की भी झलक रहा करती है। इस सिद्धांत को अपने समीप रखकर जब हम हिन्दी के उस सुवृहत् काव्य पर विचार करते हैं जिसका आरम्भ सम्वत् 770 से माना जाता है और जिसका आदि कवि काव्य-मंजरीमिलिन्द शिवसिंह सेंगर की सम्मति के अनुसार पृथ्वीराज रासो का स्वार्थता चन्दबरदाई माना जाता है। उसे हम चार भागों में विभक्त मानते हैं अर्थात् श्रृंगारिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, और नैतिक। अपने नित्यप्रति के काम से अवकाश पाने पर ग्रन्थावलोकन करने का जिन्हें व्यसन है वा सत्संग में बैठने की जिन्हें अनिवार्य रुचि है उन्हें इतिहास ने भली-भाँति समझा दिया है कि जिस समय किसी मनुष्य, कुटुम्ब, देश और राष्ट्र को खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि की समग्री यथेष्ट प्राप्त होकर उसके पास धन सम्पत्ति अधिक रहा करती है, उस समय उस मनुष्य, कुटुम्ब, देश और राष्ट्र की विषय-प्रवणता अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इस नियमानुसार जब हिन्दी भाषा-भाषी धनाढ्य लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी थी तब उनके आश्रय से हिन्दी भाषा में थोड़े से ऐतिहासिक और बहुत से श्रृंगार रस प्रधान ग्रन्थों की सृष्टि की गई। लक्ष्मी कृपापात्र जनों की शूरता और यशोगान श्रवण विषयक लालसा को पूर्ण करने के लिए ही कविजनों ने निम्नलिखित पद्यस्थ भाव प्रधान पद्य ग्रन्थों की रचना की है—

मण्डन मही के अरिखण्डे पृथिराजवीर,
तेरे डर बैरी-बधु डाँग डाँग डगे हैं।
देश-देश के नरेश जिमि सेवत सुरेश
काँपत फणेश सुनि बीर रस पगे हैं॥
तेरे श्रुति मण्डलनि कुण्डल विराजत हैं,
कहै कविचन्द यहि भाँति जब जगे हैं।
सिन्धु के वकील संग मेरु के वकील हिलै,
मानहु कहत कछु कान आनि लगे हैं॥ 1॥

इस प्रकार विषय-प्रवण लोगों की प्रसन्नता के लिए कवि लोगों ने अधोलिखित पद्यों में कैसे भाव पूरित काव्यों की रचना की है।

फूलन सों बालकी बनाथ गुही वेनीलाल
भाल दीन्हीं बेंदी मृग-मद की असित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्ग अङ्ग भूषण बनाये बृजभूषण जू
बीरी निज कर सों खवाई करि हित है
ह्वैकै रस बस जब देवी को महाउर को
सेनापति श्याम गह्यो चरण ललित है।
चूमि हाथ लाल के लगाय रही आँखिन सों
अहो प्राण प्यारे यह अति अनुचित है ॥ 1 ॥

जब उक्त जैसे काव्यों की अधिकता हो गई और उसके कारण धनाढ्य तथा धराढ्य लोग उपदेशपूर्ण तथा नैतिक काव्यों की उपेक्षा करने लगे तब विषयी तथा कुत्संगप्रिय लोगों को सचेत करने के लिए कविगण निम्नलिखित पद्य जैसे कोड़े लगाने में भी नहीं चूके।

जहाँ पूज्य का है तिरस्कार होता।
वहाँ बन्द कल्याण का मार्ग होता॥
जहाँ आत्म कर्त्तव्य पाला न जाता।
वहाँ क्या कभी सौख्य है पास आता॥
(मैथिलीशरण गुप्त)

तापन तपाऊ मत्तगज सों चपाउ,
मोंसो धरनिन पाउ पाव पाव को पकरिकै।
अहिंसो डसाक नर्कपुर में बसाउ,
लैके सुयश नसाउ दुख दीजै सुख हारि कै॥
कहत सुकवि मौन पौन सों उड़ाउवेगि,
आँखियो रंजाउ कान तातो रांग झरिकै।
माथहि छिलाऊ लाउ काल कूट तामें पुनि,
कूर सों मिलाउ ना गोविन्द देह धरिकै॥

विषय विलासासक्त जनों को कर्तव्य कर्म के पथ पर लाने के लिए सूर, तुलसी, सुन्दर, नानक आदि ने अपने समय में ऐसी भक्ति और सदुपदेश पूरित कविता बनाई कि जिसने हजारों और लाखों मनुष्यों को सचेत कर सुकर्म में लगा दिया। दो एक उदाहरण लीजिए।

बचन वेषते जो बनै, सो बिगरे परिणाम।
तुलसी मन ते जो बने, बनी बनाई राम॥ 1॥
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा विचारहि चारु मति, सुदिन कुदिन दिन दूक॥ 2॥
(तुलसीदास)

तैसे ही गज फटिक शिला सों दर्शनन्ति अनि करो।
मरकट मूँडि छोंड़ि नहीं दीन्हीं घर घर द्वार फिरो।
सूरदास नलनी के सुवना कहु कौने पकरो॥ (सूरदास)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्य महोदयगण, हिन्दी के सुविशाल काव्यकोष का हमें जो नितान्त परिमित ज्ञान है उसकी सहायता से हमने जो उसका समास परिचय दिया है उससे आप लोगों को हिन्दी के प्राचीन काव्य भण्डार की पूर्णता और महत्ता का दिग्दर्शन तो अवश्य ही हो गया होगा। साथ ही इस बात का परिचय मिल गया होगा कि हिन्दी भाषा के कोष में आज दिन भी वे अमूल्य उपदेश युक्तिपूर्वक रखे हुए हैं, जो हमें संसार समर में सर्वतोभाव विजयी करने के लिए पूर्ण रूप से समर्थ हैं, इस कल्प वृक्षोपम काव्यकोष के नीचे रहकर भी हम जो ज्ञान-दरिद्र बने हुए हैं सो यह हमारे ही अविवेक का तीता फल है। हमें चाहिए कि हम अपने इस हिन्दी के काव्य की यथाविधि शिक्षा देने का प्रबन्ध करें। इसकी सुशिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो जाने पर यह अपना फल हमें देने में अणुमात्र भी कृपणता नहीं करेगा। यहाँ लौं हिन्दी के प्राचीन एवं विद्यमान काव्य के विषय में चर्चा की गई। अब आगे इस बात का विचार किया जाता है कि इतः पर हिन्दी भाषा में कविता किस ढंग की की जाए।

हिन्दी भाषा में अब कविता किस ढंग की की जाय इस पर अपनी सम्मति प्रकट करने के पूर्व हम संसार तत्व पारदर्शी महात्मा तुलसीदास के इस—

देश काल करता करम, वचन विचार विहीन।
ते सुर तरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन।।

दोहे का पारायण एक बार और आपको सुनाना चाहते हैं। इस दोहे में जो शिक्षा महात्मा हमें दे गये हैं तदनुसार हम जब अपने को बनावेंगे तभी इस संसार में सुखी, पूज्य मानार्ह हो सकेंगे अन्यथा वैसे होने की इच्छा करना सर्वथा व्यर्थ एवं विफल है। वस्त्वर्थ के यथार्थ ज्ञाता बाबा तुलसीदासजी ने उक्त दोहे में जो बातें कही हैं उनका सरलार्थ यही बोध होता है कि इस विकासतत्व वशवर्ती संसार में रहकर जो मनुष्य, जो कुटुम्ब, जो जाति, जो देश, जो राष्ट्र वर्तमान समयानुकूल अपने को नहीं बनाते, किन्तु अपने प्राचीन रीति-रिवाज, रहन-सहन और विभव-विलास के कोरे गीत गाया करते हैं, वे इस संसार में विभव-शक्ति-सम्पन्न एवं मान सम्मानार्ह कभी नहीं हो सकते। इस नियम को प्रकृति देवी की अलंघ्य आज्ञा मानना चाहिए। संसार तत्व को करामलकवत् जानने वाले पूर्ण ज्ञानी महात्मा तुलसीदास ने उक्त पद में जो उपदेश दिया है उसका अत्यन्त भक्तिभाव-प्रमुख आदर करता हुआ मैं आज के आलोच्य विषय पर विनम्रभावपूर्वक अपनी यह सम्मति प्रकट करता हूँ कि इस समय राष्ट्रभाषा के आसन के समीप पहुँची हुई हमारी हिन्दी भाषा ने जो रूप धारण किया है उसी भाषा में प्रायः काव्य रचना की जानी चाहिए। कविता के भाव के विषय में मेरी यह प्रार्थना है कि, जिन विभव सम्पन्न देशों से इस समय हमारा सम्बन्ध हो गया है, उनके यहाँ के साहित्य में जो हितकारक उपदेश पाए जाते हैं उन्हें अपनी भाषा के काव्य में व्यक्त करने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग करना चाहिए। तात्पर्य हिन्दी भाषा की कविता का ढंग अब से ऐसा बनाना चाहिए कि जिसके पठन पाठन और अध्ययन-अध्यापन से प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी जन को नीच, स्वार्थन्धता और पुनीत कर्तव्य कर्म का पूरा-पूरा ज्ञान, काव्य जन्य अलौकिक आनन्द के ब्याज से हो जावे। इस समय भारत में विद्या की मात्रा जिस प्रकार बढ़ी हुई दीख पड़ती है, उसी प्रकार खेद का विषय है कि चरित्रबल और कर्तव्य कर्मपरायणता की मात्रा बलवती नहीं देखी जाती। हिन्दी में काव्य लिखने वालों की सेवा में हमारी यह सानुरोध प्रार्थना है कि अब वे लोग ऐसे प्रभावशाली काव्य रचैं कि जिनके पारायण से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रत्येक जन सुदृढ़ चरित्रवान् तथा स्वकर्तव्य कर्म दक्ष बन सके। सारांश, अब हिन्दी में ऐसी साधु एवं उपदेश-दात्री कविता रची जानी चाहिए जो हम हिन्दी भाषा-भाषी जनों को देशकाल कर्तमानानुकूल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में असामान्य विचक्षणता और दक्षता की शिक्षा देकर हमें सुचरित्र, सुखी, और सम्मानाई बनावे। क्योंकि जिस कविता से सद्बुद्धि प्राप्त होती है, पाखण्ड नष्टहोता है और विमल विवेक जागृत होता है वही यथार्थ कविता है। अतः अब हमें ऐसे ही ढंग की कविता करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मारवाड़ी', 11 मार्च 1914

होलिकोत्सव

आज फाल्गुण मास की पौर्णिमा को भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्त के, बड़े बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे ग्रामों तक में होली का तेवहार मनाया जाता है।

इस समय जिस ढंग से यह तेवहार भारत में मनाया जाता है, उस ढंग के साथ यद्यपि आधुनिक कृतविज्ञ लोगों की तादृश सहानुभूति नहीं हैं, तथापि तात्त्विक रीति से विचार करने पर यह बात लक्षित हो सकती है कि जिस अभिप्राय से होली के तेवहार को मनाया जाना प्रचलित किया गया है वह सहसा सारहीन सर्व निरर्थक नहीं है।

साथ ही यह बात भी ज्ञात हो सकती है कि वर्तमान प्रणाली में विद्वानों की उपेक्षा और उदासीनता के कारण, अश्लीलता की जो विस्तृत मात्रा बढ़ गई है वह सर्वतोभाव अवांछनीय है। हमारे इस विनम्र कथन की सत्यता हमारे विवेकी पाठकों को विचार करने से स्पष्टतया विदित हो सकेगी।

हमारे महाप्रभु अंग्रेजों की निसर्गजात वस्त्वर्थ पारदर्शन की उत्कट लोलुपता के प्रसाद से, हमें आज दिन संस्कृत के जो उत्तमोत्तम ग्रन्थ उपलब्ध और प्राप्त हो रहे हैं, उनका मनन पूर्वक पठन पाठन करने से यह बात तत्क्षण ही ज्ञात हो सकती है कि हमारे पूर्वगण किसी उत्सव के प्रचलित करने के तत्त्व और महत्त्व को हस्तामलकवत् जानते थे।

प्रत्येक उत्सव का आधार और अधिष्ठान उत्साह-बुद्धि है, क्योंकि जब तक मनुष्य में उत्साह रहता है तभी तक वह ऐहिक वा पारमार्थिक काम कर सकता है, उसके निरुत्साह होते ही वह किसी काम का नहीं रह जाता है। उत्साह की आवश्यकता और महत्ता संसार तत्व-पारदर्शी मुनिवर वाल्मीकि जी ने निम्नलिखित पद्यों में असाधारण निपुणता के साथ प्रदर्शित की है।

उत्साहो बलवानार्थ्य वास्त्युत्साहात्परंबलम्
सोत्साहस्याहि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥
उत्साहवन्तः पुरुषाः न्याय सीदन्ति कर्म्मसु।

उक्त पद्य और पद्य खण्ड का भावार्थ यह है कि मनुष्य में उत्साह से बढ़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यकारिणी अन्य शक्ति नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं रहता जिसे वह न कर सकता हो। इस उत्साह शक्ति के पण्डित हमारे पूर्वज-गण इस बात को जानते थे कि जैसे व्याख्याता अपनी प्रवचन पटुता की सहायता से उत्साह की मात्रा को अपने केवल समीपवर्ती-श्रोताओं के अन्तःकरणों में भर दे सकता है जैसे भाव प्रवण ग्रन्थकार, निज साद्धवी वचन व्यक्ति पूरित ग्रन्थ द्वारा, अपने समकालीन स्थानिक तथा स्थानान्तर निवासी पाठकों के हृदयों में उत्साह की मात्रा को भर दे सकता है ठीक उसी प्रकार उत्सव का मनाना भी अपने अभिप्रेतार्थ को उसमें भाग लेने वाले साक्षर और निरक्षर एवं समकालीन तथा उत्तरकालीन लोगों के चित्तों में उत्साह की मात्रा को भर देने के लिए पूर्णरूप से समर्थ और सहायक हो सकता है।

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर देश के अग्रणी एवं अग्रसर लोग किसी शिक्षा-पूर्ण घटना को उत्सव का अर्थात् तेवहार का रूप दिया करते हैं। उत्सव की सृष्टि करने में उनका यही अभिप्राय रहा करता है कि जिस घटना की भित्ति पर उत्सव विशेष की स्थापना की गई है उसके अभिप्रेतार्थ को उसके मनाने वाले प्रतिवर्ष जान लिया करें और उसकी ज्ञान प्राप्ति से उत्साह सम्पन्न होकर अपने जीवन में लाभ उठाया करें। कालातिपात के साथ वर्तमान विभव सम्पन्न लोगों की सुरुचि वा कुरुचि के अनुसार उत्सव मनाने की प्रथा में हेर-फेर हुआ करते हैं। इन नैसर्गिक नियमानुसार होलिकोत्सव मनाने की प्रथा में भी समय-समय के प्रभावशाली लोगों की कुरुचि के अनुसार अश्लीलता की मात्रा बढ़ गई। इस अश्लीलता के दोष को दूर कर होली के उत्तम शिक्षायक अभिप्राय को सर्वसाधारण पर प्रकाशित करना इस देश के हितचिंतक प्रत्येक सद्विदान का कार्य कर्म हैं।

इस कार्य कर्म की सुन्दरता को छापे की कला ने जितना ही सुकर कर दिया है, उससे कहीं बढ़के उसकी सुगमता को समाचार पत्रों की सृष्टि ने बढ़ा दिया है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे देश के नेता और नायक गण समाचार पत्रों द्वारा प्रत्येक उत्सव के आदि कारण और उससे मिलने वाली वास्तविक शिक्षा को महीने दो महीने के पूर्व ही सर्वसाधारण पर प्रकाशित कर देने की दया और कृपा किया करें उनका ऐसा करने से हमारे देश के उत्सवों पर जो अज्ञान स्वरूप मैल जम गया है, सो दूर हो जायेगा। साथ ही लोगों को उसके बस्तवर्थ का ज्ञान हो जाने से वे उससे यथार्थ लाभ उठा सकेंगे।

भारतवर्ष के उत्सवों के पुरातत्ववेत्ता सद्विद्वान जब तक इस दिशा में अपनी प्रभावोत्पादक लेखनी को संचालित नहीं करते हैं, तब तक आशा और भरोसा है कि एतद्विषयक विचार परम्परा सज्जनों के समीप सहसा उपहासास्पद तथा उपेक्षणीय नहीं होगी, क्योंकि सज्जन जनों का यह प्रकृति सुलभ स्वभाव हुआ करता है कि वे 'बालादपि शुभाषितग्राह्यम' इस सिद्धान्तानुसार अल्पज्ञ की उक्ति में भी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार वस्तु को ग्रहण कर लिया करते हैं।

होलिकोत्सव को प्रचलित करने के विषय में जितनी कथाएँ हमने सुनी और पढ़ी हैं उन पर चित्त को शान्त और स्थिर कर विचार करने पर हमारी यह भावना अधिकतर दृढ़ होती है कि यह उत्सव सत्य परायण ईश्वर भक्त, बालक प्रह्लाद की सत्यपरायणता और उनके स्वार्थ लोलुप पिता और उनकी सहायक स्वार्थान्ध बहन होलिका के दुष्ट कर्मों का स्मारक और परिचारक बनाने के लिए चलाया गया है। पुराण ग्रन्थ के पाठकों को यह बात भली-भाँति विदित है कि विपुल ऐश्वर्य सम्पन्न, अभक्ष्य भक्षक, सुरापी, विजय, प्रवण, हिरण्यकशिपु अपने बालक पुत्र सत्यपरायण ईश्वर भीरु प्रह्लाद को अपने मार्ग का अनुगामी बनाना चाहता था। पर जब उसने देखा कि उसके खोटे कर्मों की वासना का अंकुर सत्यारूढ़ बालक प्रह्लाद के हृदय में नहीं जम सकता तब उसने उसको मार डालने का निश्चय और तदनुसार उपाय भी किए।

पर उसके वे समस्त उपाय अनीतिजन्य तथा असत्यमूलक होने के कारण व्यर्थ एवं विफल होते चले गए और सत्योपासक भगवत् भक्त बालक प्रह्लाद के एक रोमकूप तक भी उसके अत्याचार की आँच नहीं पहुँच सकी। अन्त में हिरण्यकशिपु की बहिन ने चाहा कि वह अपने भाई के असत् हेतु को पूर्ण करने की सहायता देकर उसकी अधिक कृपा सम्पादन करे। कहते हैं कि होलिका ने सत्य की भक्ति दिखला कर किसी महात्मा से यह वर प्राप्त किया था कि अग्नि में प्रवेश करने से अग्नि उसे चन्दन पंकवत् शीतल जान पड़ेगी। इसी वर प्रसाद के भरोसे उसने अपने पाप-कर्मा एवं क्रूर भाई से कहा कि मैं तेरे इस बालक पुत्र को लेकर अग्नि में प्रवेश करती हूँ। वहाँ यह बालक भस्मसात् हो जाएगा और मैं वर प्रसाद की सहायता से सर्वथा बच जाऊँगी। नीच स्वार्थ अंधभक्त हिरण्यकशिपु ने अपनी ठकुर सोहाती करने वाली बहिन होलिका का यह असत् एवं निंद्य प्रस्ताव मान लिया। इसका परिणाम वही हुआ जो ऐसे असन्मूलक कर्म का तब होता था और अब भी होता है।

तात्पर्य जिस नीच स्वार्थवश होलिका सत्यपरायण ईश्वर भक्त के अन्नमय कोष को (शरीर को) उसकी अवधिपूर्ण होने के पूर्व ही अपने वर प्रसाद के भरोसे नष्ट करना चाहती थी सो तो हुआ नहीं, किन्तु उसका यह कर्म पाप मूलक होने के कारण उसी का घातक हो गया अर्थात् अग्नि में प्रवेश करते ही वह भस्मावशेष हो गई और सत्य की महिमा को दृढ़ करने के लिए बालक प्रह्लाद उस अग्नि से सुरक्षित निकल आया। इस घटना का तत्व और महत्व समझाने के अभिप्राय से ही तत्कालीन विद्वजनों ने होलिकोत्सव मनाना प्रचलित किया था। इस उत्सव द्वारा इसके मनाने वालों को यह बात साल भर में एक बार याद हो जाया करे कि कोई कैसा ही विभव सम्पन्न एवं शक्तिशाली भले ही हो पर ज्यों वह अपने विभव से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमूढ़ होकर पापाचरण करने लगता है त्योंही तत्क्षण, वा थोड़े ही काल के अनंतर वह नष्ट हो जाता है और जब उसकी नीचता उसके वरदाता देवताओं को विदित हो जाती है तब वे उसकी रक्षा के सहायक न होकर उसे दण्ड देने वाले के सहायक होते हैं।

होलिका को अग्नि के ताप से रक्षा पाने का वर देने वाले देवता ने जब देखा कि वह अपने वर प्रसाद से सत्यपरायण भगवद्भक्त प्रह्लाद के प्राणों की ग्राहक बन रही है, तभी उसने अपना वरदहस्त उसके माथे से हटा लेकर उसके क्रूर कर्मरत शरीर को उसके प्रारब्ध कर्म के फल के अधीन कर दिया। होलिका दाह करके प्रत्येक मनुष्य को निम्नस्थ पद्यगर्भित उपदेशामृत का पान करना चाहिए।

नचिरं पाप कर्म्माणः क्रूरा लोक जुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठांति शीर्ण मूला इवद्रुमाः॥

इस पद्य का भावार्थ यह है कि ऐश्वर्यमान होकर जो निंदित क्रूर एवं पाप कर्मों को करता है वह छिन्न मूलवृक्ष के सदृश्य बहुत दिन लों नहीं ठहर सकता अर्थात् बहुत शीघ्र ही उसका अधःपात हो जाता है, जैसे कि होलिका का हो गया। होलिका का शरीर स्त्री जाति का होने के कारण उसके पाप-कर्मों पर घृणा प्रदर्शित करने के लिए, सम्भव है, तत्कालीन लोगों ने, उसके लिए इस अवसर पर कुछ अप-शब्दों का उच्चारण करने की प्रथा प्रचलित की है।

पर आजकल इस प्रथा ने अपना वास्तविक प्रदेश छोड़कर लोगों की अज्ञता और कुरुचि की प्रबलता के कारण अपना विचार क्षेत्र इतना अधिक बढ़ा लिया है कि लोग सभ्यता के आचरण को भूलकर इस अवसर पर भले घर की बहू-बेटियों तक को अपशब्द कहने में ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं। अश्लीलता के इस अतिरेक को अब रोक कर उठा देना चाहिए और हमको एक उत्तम शिक्षा देने के अभिप्राय से जिस घटना को वार्षिक उत्सव के ब्याज से हम तक पहुंचाने का जिस संसार तत्वपारीण हमारे पूर्वजों ने उद्योग किया है, उसके यथार्थ अभिप्राय को समझ तदनुसार अनुष्ठान कर अपने इष्ट मित्रों के साथ इस उत्सव को शिक्षा पूर्ण संगीत तथा सुगन्धपूरित रंग-गुलाल आदि के साथ मनाकर अपना कल्याण कर लेना चाहिए और उनको मनस्तुष्टि प्रदान करनी चाहिए।

जिन सज्जनों तक यह विचार पहुँचे और उनमें इन विचारों को कार्यरूप में लाने की क्षमता और सामर्थ्य हो तो उनसे हमारी साग्रह किन्तु विनम्र प्रार्थना है कि वे सज्जन होली के मनाने में अश्लील गाली तथा धूल-माटी और दूषित कीच आदि के प्रयोग को बन्द कर उनके स्थान में शिक्षादायक गीत गावें और सुगंधपूरित रंग-गुलाल के प्रयोग से अपने इष्ट मित्रों को प्रसन्न कर आप प्रसन्न होवें और पाप कर्म से डरकर सत्य मार्ग के पथिक बनने का सबको उत्साह प्रदान करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'व्यंकटेश्वर समाचार', 16 मई 1919

हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय

हिन्दी के साहित्य-संसार में इस समय उसके विभक्ति प्रत्ययों के विषय में दो पक्ष पाये जाते हैं। एक पक्ष के लोग विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृति से मिलाकर लिखा करते हैं और दूसरे पक्ष के लोग उन्हें अलग-अलग लिखा करते हैं। संतोष का विषय है कि ज्यों-ज्यों अनुभव की मात्रा बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दूसरे पक्ष के लोग अपना हठ छोड़कर पहले पक्ष में जाकर मिलते जाते हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है कि एक-दूसरे पक्ष वाले सज्जन हमसे कहते थे कि अनुमान दस वर्ष में दूसरे पक्ष वाले पहले पक्ष वालों में जाकर लीन हो जाएँगें। हमारे पूछने पर आपने कहा कि दूसरे पक्ष वालों का हठ केवल आबाल्यात् पायी हुई शिक्षा पर स्थित है किन्तु पहले पक्ष वालों का मत शास्त्र तथा युक्तिसंगत है। निःसन्देह हिन्दी के लिए वह दिन धन्य होगा जिस दिन दूसरे पक्ष वालों की समझ उक्त सज्जन की सी हो जाएगी।

उक्त सज्जन से हमने कहा कि जब हम अपने पाँच वर्ष के भतीजे को पढ़ाते हैं तब वह प्रायः विभक्ति प्रत्ययों को अगले शब्दों से मिलाकर पढ़ता है। यथा— "आमका पेड़ फलोंसे लदा है" इस वाक्य को वह "आम का पेड़ फलों से लदा है" इस प्रकार पढ़ता है। हम जब उसे कहते हैं कि इस वाक्य को "आमका पेड़ फलोंसे लदा है" इस प्रकार पढ़ो तो कहता है आमका का और आमके सदृश उनके पास क्यों नहीं लिखा गया।

दूसरे पक्ष के सज्जन कहा करते हैं, कि विभक्ति प्रत्ययों को अलग-अलग लिखने से पढ़ने में सुगमता हुआ करती है। पर हम देखते है कि सुगमता के स्थान में उक्त प्रकार से दुर्बोधता उपस्थित होती है।

आशा है कि दूसरे पक्ष के सज्जन जन हमारे उक्त निवेदन पर विचार करने की कृपा करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हितकारिणी', भाग 10, सख्या 1, अप्रैल, 1920

हिन्दी और उसके विभक्ति-प्रत्यय

हिन्दी के वयोवृद्ध पाठकों को कदाचित् स्मरण बना होगा कि उक्त विषय को लेकर हिन्दी के हित-चिन्तकों में कई बार वादानुवाद हो चुका है। जब-जब इस विषय का वाद हुआ है, तब तब कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही हुआ है। उसी थोड़े से लाभ के भरोसे आज हम इस विषय की पुनः चर्चा छेड़ते हैं। आशा है कि हिन्दी के हितैषी-जन अपनी वर्त्तमान परिपक्व बुद्धि की सहायता से, इस विषय पर एक बार पुनः विचार करके, इस विषय को सदा के लिए निश्चित कर लेंगे क्योंकि अब इसका अनिश्चित रहना समूचे भारत की राष्ट्रभाषा के लिये लाँछन समझा ज़ायगा और उसके विरोधियों को बाधा देने के लिए अवसर देने वाला होगा। हिन्दी के इस लाँछन और बाधक दोष को सदा के लिये अर्द्धचन्द्र दे देना हिन्दी के सभी हित-चिन्तकों का एकमात्र पुनीत कर्त्तव्य कर्म है।

हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में इस समय दो प्रकार की लेखन परिपाटियाँ प्रचलित हैं। एक के पक्षपाती प्रकृति से विभक्ति-प्रत्ययों को मिलाकर लिखा करते हैं और दूसरी के पक्षपाती उन्हें अलग-अलग। इस दूसरी प्रणाली के पक्षपातियों में कई सज्जन ऐसे हैं जो प्रकृति और उसके विभक्ति-प्रत्यय के बीच में, स्थान छोड़ना बस नहीं समझते, अतः उनके बीच में एक 'कामा' (अल्पविराम) लगा दिया करते हैं।

साहित्य-मर्मज्ञों को यह बात भलि-भाँति विदित है कि भारत की संस्कृत, मराठी, गुजराती आदि उन्नत भाषाओं के विद्वान अपने देश की युक्ति-युक्ति प्रथा का अनुकरण करते हुए, विभक्ति-प्रत्ययों को प्रकृति से मिलाकर ही लिखा करते हैं, ऐसी अवस्था में यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि हिन्दी के विद्वान हिन्दी की निकटवर्त्तिनी बहिनों की प्रथा को छोड़ विदेशी भाषा की प्रथा अनुकरण क्यों करने लगे हैं। इसका उत्तर यही हैं कि जिस समय विदेशी लोग यहाँ आये उस समय हिन्दी का साहित्य प्रायः पद्य में लिखा जाता था। पद्य का लिखना वा समझना विदेशियों के लिए कितना कठिन हो सकता है, सो सभी भुक्त-भोगी जानते हैं। उक्त अवस्था को देख विदेशी लोगों ने हिन्दी के गद्य को सहायता देना आरम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। उस समय के पंडितों की तथा अपने धन की सहायता से उन लोगों ने हिन्दी के कोष, व्याकरण और गद्य-ग्रन्थ इस ढंग से तैयार किये और करवाये कि जो उन्हें तथा उनके देश-भाइयों को हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक हो सकें। विदेशी होने के कारण 'बाटिका के फूल', 'पलास से छोटा', 'सुरमे में कालापन होता है', इत्यादि वाक्यों में प्रकृति तथा उसके विभक्ति-प्रत्ययों का जानना उन्हें कठिन पड़ता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उन लोगों ने यह उपाय निकाल लिया कि प्रकृति से प्रत्यय अलग लिखे जाया करें। बस, फिर क्या था, उन्हें कोई रोकने वाला तो था ही नहीं, जैसा उन्हें सुविधाजनक बोध हुआ वैसा ही वे करने लगे। उन्हें सोचना चाहिये था कि अंग्रेजी में जिस प्रकार 'go es', 'do es', 'hard er', 'thick est' आदि लिखना निरर्थक तथा हानिप्रद है, ठीक उसी प्रकार हिन्दी में प्रकृति से प्रत्ययों का अलग लिखना अनुचित तथा निरर्थक है। पर 'स्वार्थोहि बलवत्तर' इस अर्थवती कहावत का अनुसरण करते हुए उन लोगों ने इस विषय की ओर दृष्टिपात तक करना उचित नहीं समझा। उनकी चलाई हुई उक्त प्रथा का प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि उसका प्रवेश यहाँ की पाठ्य-पुस्तकों में हो गया। बचपन से उसी प्रकार लिखते-पढ़ते रहने से इस देश के लोगों को उसी प्रकार लिखने-पढ़ने की ऐसी कुछ बान पड़ गई कि उससे वे अपना पीछा छुड़ाने के लिये अपने को असमर्थ समझने लगे। इतना ही नहीं, कई लोग यहाँ तक बढ़ गये कि अपनी बान को स्थिर रखने के लिये अपनी-अपनी प्रबल बुद्धि के अनुसार उस प्रथा का समर्थन करने के लिये युक्तियाँ ढूँढ़-ढूँढ़ कर अपने पक्ष का समर्थन करने लगे। कोई कहने लगे कि हिन्दी संस्कृत भाषा की दासी नहीं कि वह सब बातों में उसी का अनुकरण करे, उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये यह परम आवश्यक है कि उसके हितचिन्तक उसमें प्रकृति से प्रत्ययों को अलग लिखने की प्रथा प्रचलित रखें। कोई कहने लगें 'ने, 'से,' 'को,' 'की, 'का,' आदि विभक्ति प्रत्यय नहीं हैं, वे तो अव्यय हैं, इत्यादि इत्यादि। स्वर्गवासी साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्तव्यास जैसे संस्कृत के धुरन्धर पण्डित और हिन्दी पक्षपाती तथा उनके समकक्ष अन्य सज्जनजन यदि प्रकृति से प्रत्यय को अलग लिखने की भाषा का समर्थन हठपूर्वक न करते तो, उनके अनुयायी बाबू रामकृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिक प्रसाद आदि उसका अनुकरण कभी न करते और यह अनिष्ट प्रथा कभी की बन्द हो गई होती। तब नहीं तो अब हिन्दी के अभिमानी लोगों को इस अस्वाभाविक प्रथा को वन्द करने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे हिन्दी को निम्नलिखित हानियाँ पहुँच रही हैं—

(1) उसके साहित्य में निरर्थक शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। साहित्य में प्रयुक्त किया हुआ शब्द जब तक अपनी विभक्ति के साथ मिलता नहीं है, जब तक वह लेखक के अभिप्राय को प्रकट नहीं कर सकता। जैसे अंग्रेजों का 'lo es'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से loes का अर्थ नहीं दे सकता, ठीक वैसे ही, 'रामने रावणको मारा' इस वाक्य का राम 'ने' से और रावण 'को' से मिले बिना लेखक का अभिप्रेतार्थ प्रकट नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में उनको मिलाकर लिखना कहाँ तक युक्ति-संगत है इसका विचार, बाल्यावस्था से पड़ी हुई टेंव के वश में न होकर प्रत्येक हिन्दी के अभिमानी और विवेकी जन को करना चाहिये।

(2) प्रकृति से अलग छापे हुए प्रत्ययों को पढ़ने में छोटे-छोटे बालक बहुत भ्रान्त हो जाया करते हैं। यथा 'सन्तरे के पेड़ से पके-पके फल नीचे गिर रहे हैं' वाक्य को वे प्रायः इस प्रकार पढ़ते हैं: 'सन्तरे केपेड़ सेपके-पके फल नीचे गिरते हैं।' समझाने पर वे कहते हैं कि जो अक्षर जिस शब्द का अंग है उसके साथ मिला कर क्यों नहीं छापा गया। विज्ञ पाठक, विचार कर देखिये कि हमारे बालकों का उक्त कथन कहाँ तक युक्ति-संगत तथा भारत की मराठी आदि भाषाओं की प्रकृति के अनुकूल है।

(3) प्रकृति से प्रत्यय मिलाकर छापने वालों को बहुत सुविधा होती है, उन्हें बार-बार 'स्पेस' नहीं देनी पड़ती।

(4) विभक्ति-प्रत्ययों को प्रकृति से अलग रखने की प्रथा के कारण कभी-कभी लेखकों को निम्नलिखित जैसे अस्वाभाविक वाक्य लिखने पड़ते हैं। 'श्रीराम, जिनके बाणके सामर्थ्यको मारीच विश्वामित्रके यज्ञके समयही जानचुका था, ने, उसी कपट-कुरंग रूपी मारीच को एकही बाणसे मार डाला'। पाठक, देखिये उक्त वाक्य हिन्दी के स्वाभाविक गुणको कि वह जैसी बोली जाती है, ठीक उसी प्रकार लिखी जाती है, किस प्रकार नष्ट कर रहा है। कोई वक्ता 'राम' का उच्चारण करने के पश्चात् उक्त प्रकार से 'ने' का उच्चारण नहीं करता।

हमारे उक्त निवेदन पर ध्यान देकर हम आशा करते हैं कि हिन्दी के अभिमानी विद्वज्जन, अपने देश की सयुक्तिक तथा सार्थवती प्रथा का आदर कर हिन्दी के साहित्य में प्रकृति और प्रत्यय का ऐक्य कर उससे अपने साहित्य की मान-मर्यादा बढ़ा उसके गौरव की रक्षा करने का यत्न करेंगे। ऐसा करने से जो साहित्य आज तक छप चुका है उसको हानि नहीं पहुँचेगी। उसके द्वितीय संस्करण में वह ठीक कर लिया जायगा।

हिन्दी के साहित्य-सम्मेलन को हमारी उक्त प्रार्थना पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके साथ-साथ अखरौटी (हिज्जे)-विषयक विवाद को भी निश्चित कर लेना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 13 अक्टूबर, 1922

श्री तुलसीकृत रामायण और उसके क्षेपक

गत एक सितम्बर के श्री वेंकटेश्वर समाचार पत्र में हमने श्री तुलसी जयन्ती नामक एक टिप्पणी छपवाई थी। उसके द्वारा हमने भारत के बड़े-बड़े छापाखाने के मालिकों से यह प्रार्थना की थी कि वे लोग तुलसीकृत रामायण के एक क्षेपक विहीन संस्करण को प्रस्तुत करने का उद्योग करें। अभी तक हमें यह नहीं ज्ञात हुआ कि हमारी वह प्रार्थना अरण्यरोदन की सीमा में ही पड़ी है वा उसे पार कर चुकी है। उनसे हम पुनरपि प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी साहित्य के सौभाग्य को बढ़ाने के लिए वे लोग रामायण के एक क्षेपक विहीन संस्करण तैयार करने का उद्योग अवश्य करें।

अनुमान से जाना जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में हिन्दी का जो काव्य उपस्थित था उसमें तत्कालीन व तत्काल पूर्ववर्ती लोग क्षेपक मिला दिया करते थे। उनके रामचरितमानस में कोई वैसे क्षेपक न मिलाने पावे, इस अभिप्राय से उन्होंने अपने चतुर पाठकों से निम्नलिखित प्रार्थना कर रखी है।

जे गावहिं यह चरित संवारे ते यहि ताल चतुर रखवारे।

इन पंक्तियों द्वारा गोसाईं जी का यही आशय ध्वनित होता है कि इनकी यह प्रबल इच्छा थी कि उन्होंने अपने रामचरितमानस में जो पंक्ति जैसी लिखी थी, उसकी उसी प्रकार रक्षा की जाय। खेद का विषय है कि मूल ग्रन्थ के यथा तथ्य रूप के महत्व को न जानने वाले, पद्य रचयिताओं ने, गोसाईं जी की उक्त प्रार्थना पर ध्यान देने की तनिक भी कृपा नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि गोसाईं जी की रामायण में क्षेपकों की प्रचुरता यहाँ तक बढ़ गई कि उसमें लवकुश काण्ड जोड़ दिया गया।

क्षेपकों की भरमार देख उनकी ओर लाला शुकदेव प्रसाद जी का ध्यान आकृष्ट हुआ। अतः उनने सं० 1925 में रामचरित मानस का एक क्षेपक विहीन संस्करण प्रस्तुत करके छपवाया। इस संस्करण के तैयार करने में लालाजी ने रामायण के नीचे लिखे हुए सज्जनों के संस्करणों से सहायता ली थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1) बाबा रामचरण दासजी
(2) श्रीयुत सन्तसिंह जी लाहौर निवासी
(3) महाराज गोपालसिंह देव बक्सर के राजा

इनके सिवाय आपने नीचे लिखी हुई काशी की पुस्तकों से भी परामर्श लिया था।

(1) राम लीला।
(2) सचित्र तिलक।
(3) राम परिचर्य्या।
(4) मानस दीपिका।

लालाजी के संस्करण को देखने से विश्वास होता है कि उनने अपने संस्करण को क्षेपकविहीन बनाने में भागीरथ प्रयत्न किया है। उनके चित्त के सज्जनों को उस समय जितनी साहित्यिक सहायता मिल सकती थी, उतनी के भरोसे अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य की सहायता से उनने अपने संस्करण को प्रस्तुत किया है। खेद का विषय है हिन्दी के संसार में साहित्य के सच्चे परीक्षकों की संख्या अधिक न होने के कारण लालाजी के उक्त संस्करण का प्रचार अधिकता के साथ नहीं हो सका।

लालाजी के पश्चात क्षेपकों का बाहुल्य काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के विद्वान सभ्यों को खटका। अतः उन लोगों ने सम्वत् 1960 में रामचरित मानस का एक संस्करण प्रस्तुत करके छपवाया। इस संस्करण के कृतविद्य संपादकों ने, इसे केवल तुलसी मुख विनिस्तृ पद्य पीयूष और अखरौटी से ही विभूषित करने का श्लाघ्य उद्योग किया है। जिन संस्करणों की सहायता से यह संस्करण प्रस्तुत किया गया है उनमें एक सं० 1704 का भी है। यह संस्करण गोस्वामी जी की मृत्यु के 24 वर्ष पश्चात् का है। सम्भव है इसमें क्षेपक बहुत कम हों। रही अखरौटी की बात सो वह उतनी विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। क्योंकि हमारे यहाँ के पुरानी प्रणाली के संस्कृत के धुरन्धर लेखक अभी हिन्दी लेखों के लिखने में अखरौटी विषयक उपेक्षा किया करते हैं।

अत्यन्त खेद और आश्चर्य का विषय है कि काशी की नागरी प्रचारिणी वाले संस्कृत के विद्वान सम्पादकों ने जिन प्राचीन संस्करणों से सहायता ली थी उनके समूह में लालाजी कृत क्षेपक विहीन संस्करण स्थान नहीं पा सका। तब वह वहाँ स्थान पर जाता तो उसकी यथार्थ परीक्षा हो जाती। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कर्णधार बाबू श्यामसुन्दर दास जी से यह ज्ञात हुआ कि उनकी सभा अपने उक्त संस्करण का संशोधन कर रही है। अतः हम उनसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि इस बार के संशोधन में लाला जी के संस्करण को भी आपने विचार क्षेत्र में स्थान देने की कृपा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी प्रचारिणी वाले संस्करण की लाला जी के संस्करण से जिस प्रकार तुलना करना चाहिए उनका कुछ उदाहरण हम अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार नीचे देते हैं। आशा है कि रामायण के विवेकी प्राणी उस पर विचार करने की दया करेंगे। नागरी प्रचारिणी के सदस्यों को वह रुचिकर बोध हो तो वे तदनुसार अपने संस्करण का संशोधन करें।

आरण्य काण्ड में शूर्पणखा रावण के समीप उपस्थित करा कर गोसाईं जी उससे कहवाते हैं।

राजनीति बिन धन बिन धर्मा (1)
हरिहिं समर्पे बिन सतकर्मा (2)
विद्या बिन विवेक उपजाये (3)
श्रमफल पढ़े किये अरु पाये (4)
संग ले चली कुमन्त्र ले राजा (5)
मान से ज्ञान पान ते लाजा (6)
प्रीति प्रणय बिन मदते गुनी (7)
नासहिं वेगि नीति अस सुनी (8)

आज पर्यन्त रामायण के सटीक वा केवल मूल संस्करण जिनको लोगों ने छपवाये हैं, उनमें से निम्नलिखित सज्जनों ने अपने संस्करणों में उक्त प्रसंग की उक्त पंक्तियाँ रखी हैं।

(1) बाबा रामचरण दास जी।
(2) बाबू बैजनाथ जी।
(3) पण्डित रामेश्वर जी भट्ट।
(4) पं० विनायक रावे जी (कवि नायक)।
(5) पं० ज्वाला प्रसाद जी मिश्र।
(6) श्रीयुत सखाराम मिश्र सेठजी (बम्बई)।
(7) मुन्शी रोशनलाल जी।
(8) श्रीधर जी।

पं० रामेश्वर भट्ट जी ने प्रत्येक पंक्ति का अर्थ अलग-अलग लिखा है यथा—

विद्या बिन विवेक उपजाये।
श्रमफल पढ़े किये अरु पाये।

इन पंक्तियों का अर्थ आपने इस प्रकार लिखा है—

"बिना ज्ञान उत्पन्न किये पढ़ने का क्या फल ? अर्थात् ज्ञान हो जाय तो विद्या का फल हुआ और नहीं तो पाठ करने और गाने से तो कोरा श्रम ही है। ध्यान रहे कि भट्टजी ने अपने इस टीका में किये 'अरु पाये' का अर्थ छोड़ दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशी रोशनलालजी ने पहली, दूसरी, तीसरी, और चौथी पंक्तियों का अर्थ एक साथ लिखा है और वह इस प्रकार है—

"बिना नीति राज्य का, बिना धर्म के धन का और बिना हरि के अपर्ण किये सत् कर्मा का और बिना विवेक किये विद्या का फल केवल श्रम है। अर्थात् विद्या पढ़ने में जो दुःख हुआ सोई फल है। और सत्कर्मा करने में जो दुःख हुआ सोई उसका फल है और जो राज्य धन के पाने में दुःख हुआ सोई फल है।

जबलपुर के नामी और बहुश्रुत टीकाकार श्रीयुत पण्डित विनायक रावजी ने भी अपनी विनायकी टीका में उक्त चार पंक्तियों का अर्थ एक ही साथ लिखा है। आपने पहले उक्त चारों पंक्तियों का अन्वय दे दिया है पश्चात् उनका अर्थ लिखा है। आपका अन्वय और अर्थ नीचे दिया जाता है।

अन्वय नीति बिन राज्य किये (श्रमफल है) बिना धर्म धन पाये (श्रमफल) हरिहिं समर्पे बिन सत् कर्मा 'किये' (श्रमफल है) 'विवेक उपजाये विद्या पढ़े' (श्रमफल है)

अर्थ बिना न्याय के राज्य चलाना व्यर्थ (अर्थात् पाने और चलाने में जो परिश्रम पड़ता है सोई फल हाथ लगता है दूसरा और कोई फल नहीं मिलता। इसी प्रकार बिना धर्म किये हुए धन के उपार्जन करने का श्रम ही तो पड़ता है, लाभ कुछ भी नहीं, परमेश्वर को अर्पण किये बिना सत्कर्म और बिना यथार्थ ज्ञान के विद्या भी निष्फल है।

सारांश राज्यनीति सहित धन धर्म संयुक्त, उत्तम कर्मकृष्ण हेतु और विद्या सद् असद् विवेक सहित ही उत्तम गिनी जाती है अन्यथा नहीं। यह विनायकी टीका क्या है। एक प्रस्फुटार्थ बाहुल्य प्रपूरित आकार ही है।

बाबा रामचरणदासजी ने प्रत्येक पंक्ति का अर्थ अलग लिखा है। वे 'यथासंख्य' अलंकार के चक्कर में नहीं पड़े। जो लोग उसके चक्कर में पड़े हैं कहना नहीं होगा वे उसका निर्वाह नहीं कर सके हैं अर्थात् 'पढ़े लिखे अरु पाये' क्रियाओं का यथाक्रम अर्थ कर नहीं सके हैं।

लाला शुकदेव प्रसादजी ने उक्त पंक्तियों में से तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी कारक से सम्बन्ध रखती है उस कारकवाली पंक्ति को सम्भवतः वे दीपक अलंकार के उदाहरण में न देते, अर्थात् 'विद्याविन विवेक उपजाये' इस पंक्ति को अपने दीपक के उदाहरण में वे कदापि न देते। क्योंकि उस पंक्ति के उदाहरण में देने से उनकी दीपक की व्याख्या चरितार्थ नहीं हो सकती। सुकुलजी से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे हमारे इस निवेदन पर पुनः विचार करने की कृपा करें। विचारान्त में हमारा निवेदन उन्हें यदि उचित जान पड़े तो अपने मानस के दर्पण के द्वितीय सस्करण में दीपक के उदाहरण को ठीक कर देवें।

गोसाईंजी के कथनानुसार जो सज्जन रामचरितमानस चार रक्षक हैं उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र सेवा में हमारी यह विनीत प्रार्थना है कि ये लोग प्रथम पंक्ति के 'राजनीति बिन', पाँचवीं पंक्ति के 'कुमंत्रते राजा' छठी पंक्ति के 'मानते ज्ञान' और सातवीं पंक्ति के 'मदते गुनी' पदों पर यदि विचार करेंगे तो उन्हें तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि प्रथम और सातवीं पंक्ति में जो भाव उक्त पदों द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं वे ही भाव उक्त पदों द्वारा प्रदर्शित किये गये है वे ही भाव उक्त पदों द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं वे ही भाव शब्दान्तर द्वारा पाँचवीं और छठी पंक्ति में प्रकट किये गये हैं। गोसाईंजी की भाव प्रबलता तथा अलंकारपटुता पर विचार करनेवालों को यह बात, इस विवरण से ज्ञात हो सकेगी। उक्त पंक्तियों में से तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी गोसाईंजी कृत नहीं है। अतः लाला शुकदेव प्रसादजी ने बहुत ही उचित किया है कि उन्हें अपने संस्करण से बहिष्कृत कर दिया है।

काशी नागरी प्रचारिणी वाले संस्करण से उसके कुलविद्य सम्पादकों ने बहुत कुछ क्षेपकों को बहिष्कृत कर दिया है तो भी लालाजी के संस्करण से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अब भी उसमें क्षेपक बाकी हैं। उक्त अवतरण की तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी पंक्तियों के सिवा उस अंश में उक्त संस्करण में निम्नलिखित पंक्तियाँ पाई जाती हैं—

"पंचवटी बसि श्रीरघुनायक।
करत चरित सुरमुनि सुखदायक।"

ये पंक्तियाँ भी क्षेपक जान पड़ती हैं। क्योंकि इनके पूर्व गोसाईंजी जब नीचे लिखी हुई पंक्तियाँ लिख आये हैं तब उक्त प्रसंग पर उन पंक्तियों को पुनः क्यों लिखते—

हे प्रभु परम मनोहर ठाऊँ।
पावन पंचवटी तेहि नाऊँ।

को क्षेपक मानकर इन्हें अपने संस्करण से बहिष्कृत कर दिया है। शेष पहली, दूसरी, सातवीं और आठवीं को तुलसीदासजी कृत मानकर अपने संस्करण में रखा है। यथा—

राज्य प्रीतिबिन धन बिनु धर्मा।
हरहिं समर्पे बिन सत कर्मा।
प्रीति प्रणय बिन महते गुणी।
नाशहिं बेगि नीति अस सुनी।

उक्त पंक्तियों का अर्थ लालाजी ने इस प्रकार लिखा है—

"बुधजनों ने सत्य कहा है कि नीति बिना तो राज्य और धर्म बिना धन तैसे ही हरि भगवान के समर्पण बिना किये समस्त सत्कर्म नाशवान ही होते हैं। श्रीमद्भगवते तपस्विनी दान परा यशस्विनों मनस्विनो दान विदः सुमंगलः। क्षेमं न विदंति बिना यदर्पण तस्मै सुखश्रवसे नमोनमः।। ऐसे ही नम्रता बिना प्रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अभिमान से गुणों का नाश हो जाता है नीति शास्त्र में ऐसा सुना है।"

जब उपमेय और उपमान वस्तुओं की क्रिया एक ही बार आती है और सब पर समान रूप से प्रकाश पहुँचाती है, तब दीपक अलंकार होता है। लालाजी कृत संस्करण के पद्यों में 'नाशहिं' क्रिया एक बार ही आयी है और वह उक्त चारों पंक्तियों के कारकों पर समान रूप से प्रकाश पहुँचाती है। अतः उक्त पंक्तियों में दीपक अलंकार उत्तमयता वर्णित किया गया है।

सरस्वतीकण्ठाभरण में महाराजा भोज ने दीपक अलंकार का वर्णण इस प्रकार किया है—

'जाति क्रिया गुण द्रव्य वाचिनैकत्रवर्तिना।
सर्व वाक्योपकारंचे दीपकं तन्निगधते।'

भावार्थ जहाँ जाति, क्रिया और गुणवाचक शब्द एक ही स्थान पर रहकर पूरे वाक्य का उपकार करता है वहाँ दीपक अलंकार होता है।

'मानस-दर्पण के' विद्वान रचयिता पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम. ए. एल. टी. ने अपने उक्त ग्रन्थ में दीपक अलंकार को उदाहृत किया है। सुकुलजी ने अपने मानस-दर्पण में दीपक अलंकार की जो व्यवस्था लिखी है उसके अनुसार आप यदि उदाहरण की पंक्तियों में से 'श्रमफल पढ़े किये अरु पाये' पर विचार करते तो यह पंक्ति जिस—

गोदावरी नदी तँह बाहही।
चारिहुँ युग प्रसिद्ध सो अहही।
× × ×
चले राम मुनि आयुस पाई
तुरतहिं पंचवटी नियराई।
× × ×
वृद्ध राज सन भेंट भई बहुविधि प्रीति दृढ़ाय।
गोदावरी निकट प्रभु रहे पणी गृह छाय॥

आज पर्यन्त धन कमाने के अभिप्राय से रामायण के जितने संस्करण प्रस्तुत कर छापे गये हैं उनके लेखकों का ध्यान प्रायः अर्थ की विचित्रता और पाठान्तरों की विपुलता की ओर ही रहा है। यही कारण है कि आज दिन क्षेपकों से ओत-प्रोत भरे हुए रामायण के संस्करण मिलते हैं। केवल तुलसी मुख विनिसृत पदावली पूर्ण रामायण का मिलना कठिन हो गया है। इन क्षेपकों में कोई-कोई निसन्देह अच्छे बन गये हैं। उनका त्यागना काव्य-प्रेमियों को अखरता है।

काशी की नागरी प्रचारिणी वाली प्रति के अयोध्या काण्ड में उसके विद्वान सम्पादकों ने न जाने क्यों जान बूझकर 109 दोहे के पश्चात् के अंश में तापस की कथा वाले अप्रसांगिक क्षेपक को स्थान देकर, उस काण्ड के पद्यों की संख्या को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ा दिया है।

विनायकी टीका के सुयोग्य लेखक ने अपने संस्करण में तापस की कथावाले अप्रासांगिक क्षेपक को अयोध्या काण्ड में स्थान न देकर, इस काण्ड के चौपाई, दोहे, सोरठे और छन्दों के सुन्दर क्रम की रक्षा की है। आपने अपने संस्करण की भूमिका में उक्त संस्करण के सम्पादकों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया है।

तुलसी-जयन्ती के सूत्रधार और नागरी प्रचारिणी सभा के कर्णधार बाबू श्यामसुन्दर दासजी जयन्ती के समय रामायण के जिस संस्करण को प्रकाशित करने वाले हैं, उसमें वे केवल तुलसीकृत पद्य पीयूष को ही स्थान देवें तो बहुत अच्छा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वेंकटेश्वर समाचार, 9 जून, 1922

हिन्दी विभक्ति-प्रत्यय

परम सन्तोष का विषय है कि अब धीरे-धीरे हिन्दी भाषा के लेखकों की संख्या बढ़ रही है जो हिन्दी में विभक्ति और प्रत्यय को प्रकृति के साथ मिलाकर लिखने के पक्षपाती हैं। मोह, ममता अथवा दुराग्रह, स्वार्थ और निजी विचारों के कारण जिन अनुचित सिद्धान्तों का समर्थन किया जाता है, वह समय पाकर, क्षय अवश्य ही हो जाता है। यह बात निर्विवाद है कि हिन्दी में गद्य लेख लिखने की प्रथा का अधिकतर प्रचार विदेशियों द्वारा किया गया है। राधिका, पताका, आदि शब्द पद हैं (विभक्ति सहित शब्द पद कहा जाता है) वा केवल शब्द हैं, आदि बातों का निश्चय विदेशी लोग सहसा नहीं कर सकते थे। अतः उन्हें विवश हो हिन्दी के विभक्ति-प्रत्ययों को प्रकृति से अलग लिखने की प्रथा प्रचलित करनी पड़ी। उस प्रथा के अनुसार जिन भारतीय बालकों को आबाल्यात शिक्षा दी गयी है, वे आगे चलकर जब नामी विद्वान हुए तब उन्हें यही सूझी कि लोग अपनी आदत को बनाये रखने का यत्न करें। उस यत्न की सफलता के लिये उन लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार युक्तियाँ लगाकर विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृति से अलग लिखने की प्रथा का समर्थन किया। किसी-किसी ने लिखा कि हिन्दी की स्वतन्त्रता स्थापित करने के लिये अवश्य है कि उसमें विभक्ति प्रत्ययों का प्रकृति से अलग लिखे जाने में उचित है। किसी ने लिखा है कि प्रत्यय, प्रत्यय पूरी तरह स्वतन्त्र शब्द हैं इसलिए परिणाम यह हुआ कि लेखक दो दलों में विभक्त हो गए। एक दल प्रत्ययों को मिलाकर लिखने लगा और दूसरा दल पृथक् कर लिखने लगा। जिस समय इस भाँति का विभक्ति प्रत्यय के प्रश्न पर वादानुवाद चल रहा था उस समय विभक्ति प्रत्यय के साथ अलग कर लिखने की पद्धति अधिक थी। परन्तु त्यों-त्यों विभक्ति प्रत्ययों को प्रकृति के साथ मिलाकर लिखनेवालों की संख्या बढ़ती ही गई और नित बढ़ती ही जाती है। अनुभवी विद्वानों ने बहुत उचित कहा है। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' अर्थात् सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं।

आजकल एक तीसरा दल और उत्पन्न हो गया है। यह दल उदासीन कहा जा सकता है, क्योंकि इस दल के लोग प्रायः कहा करते हैं कि विभक्ति-प्रत्ययों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग लिखने से न वैसा कुछ लाभ ही है। अपनी प्रिय भाषा को सर्वांगपुष्ट तथा सुन्दर बनाने में जो लोग उक्त प्रकार से उदासीनता और उपेक्षा प्रदर्शित किया करते हैं, उनकी भाषा अन्य उन्नत भाषाओं की समकक्षिणी होने में यदि पिछड़ी रहे तो आश्चर्य ही क्या है? यह सौभाग्य अकेली हिन्दी भाषा को ही प्राप्त है कि वह जैसी बोली जाती है वैसी लिखी भी जाती है और यथावत वैसी ही सुविधा-जनक रूप से प्रयुक्त भी की जाती है। विभक्ति को प्रकृति से अलग लिखकर उसकी यह उत्तमता सुरक्षित है। "राम ने रावण को मारा" इस वाक्य में जिस प्रकार अकेला 'रा' 'व' 'म' वा 'ने' सार्थक नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार 'राम' तथा 'ने' भी सार्थक नहीं हो सकते। उक्त अक्षरों का समूह तभी सार्थक होगा जब वह 'रामने' लिखा जायगा। जब वाक्य में सार्थक पद के बोले जाने की ही आवश्यकता है तब उसके उसी प्रकार लिखे जाने की आवश्यकता क्यों नहीं है? हम समझते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक हठहीन विवेकी पुरुष यही देगा कि जो सार्थक पद जैसा बोला जाता है वह वैसा ही लिखा भी जाना चाहिए।

जो लोग भाषा की उत्तमता पर ध्यान दिये बिना असावधानी से बातचीत किया करते हैं, वे लोग प्रायः घरमें ही के स्थान पर 'घरही में' अथवा मुझसे, तकसे, के स्थान में, 'मुझ' से 'तक' से कहा करते हैं। इन पदों के साथ कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् जो अर्थ घरमें ही पद का है वही घरही में पद का भी है। ऐसी रचना में व्याकरण के अनुसार जो पद उचित माना जाता है वही क्यों न लिखा जाय। व्याकरण के अनुसार 'घर में' ही पद शुद्ध है अतः वही लिखा जाना चाहिए। बहुत से सज्जन कहा करते हैं कि वैयाकरण लोग प्रयोग के अनुसार नियम बनाया करते हैं। जब 'घर ही में' और 'मुझ तकसे' बोलने की प्रथा प्रचलित है तब वे उसी प्रकार क्यों नहीं लिखे जाना चाहिए? उनके उसी प्रकार लिखे जाने से उनकी व्याख्या करने में सुविधा होती है। जो सज्जन इस युक्ति के सहारे विभक्ति प्रत्ययों को अलग लिखने का समर्थन करते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार 'अलगको' 'अगल' मतलबको' 'मतबल' और 'रामलालजी' को 'रामजीलाल' कहने वालों का अनुकरण कर उनकी बोलचाल को प्रयोग मानकर कोई लेखक अपने लेख में 'अगल' 'मतबल' और गोविन्दजीलाल, शब्द का प्रयोग नहीं करता, उसी प्रकार 'घर ही में' आदि शब्दों का प्रयोग बल पर प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। व्याकरण के नियम के अनुसार 'घर में ही' शुद्ध आता है, अतः वह वैसा ही लिखा जाना चाहिए।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के आदेश से पण्डित कामताप्रसाद जी गुरू ने अनुमान पन्द्रह वर्ष परिश्रम करके भाषा के वर्तमान स्वरूप का अध्ययन और विचार करके 'हिन्दी व्याकरण' नामका एक ग्रन्थ लिखा है उसे नागरी प्रचारिणी सभा के अग्रसर विद्वानों ने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया है। इस विद्वज्जन समादृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण ग्रन्थ के प्रणेता इस विषय में लिखते हैं—"मेरी समझ में विभक्तियों को मिलाकर लिखना ही उपयुक्त जान पड़ता है।" आशा है कि काशी की नागरी प्रचारिणी सभा गुरुजी की उक्त सम्मति का आदर कर अपने सदस्यों को गुरुजी की सम्मति का अनुकरण करने का परामर्श देगी। मध्यप्रदेश के कई नामी लेखक विभक्ति प्रत्ययों को केवल इसीलिये अलग लिखा करते हैं कि वे उसके शिष्य होने के सम्मानभोगी हैं।

हिन्दी के ग्रन्थकारों के चिरपरिचित और उनके सम्मानभाजक राय साहिब श्री रघुवर प्रसाद जी द्विवेदी बी० ए० लिखते हैं कि "मैं इन दोनों को मिलाकर लिखना ही अच्छा समझता हूं। सर्वनामों के रूपों के साथ ये (विभक्तियाँ) मिला दी जाती हैं तो संज्ञा शब्दों के साथ क्यों न मिलाई जाएंगी? प्रश्न है केवल अभ्यास का, सो दूषित अभ्यस्तः प्रणाली को त्यागना कोई कठिन बात नहीं है।

पाठकगण, यहाँ तक ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे आपको विद्वजन समादृत श्री पण्डित कामता प्रसाद जी गुरु वैयाकरण केसरी तथा श्री राय साहिब पण्डित रघुवर प्रसाद जी द्विवेदी बी० ए० हैडमास्टर की सम्मति विदित हो चुकी होगी। उक्त सज्जनों की स्पष्ट सम्मति यही है कि हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय प्रकृति से मिलाकर ही लिखे जायं। पण्डित कामता प्रसाद जी गुरु ने अपने विभक्ति संयोग नामक लेख में लिखा है कि हिन्दी में जब तक विभक्ति-प्रत्यय प्रकृति से मिलाकर नहीं लिखे जाएंगे, तब तक हिन्दी भाषा की कारक प्रणाली दूषित बनी रहेगी। अब यह बात हिन्दी के हित-चिन्तक विद्वानो के अधीन है कि जिस भाषा को वे समूचे भारत की राष्ट्र भाषा का पद दे रहे हैं उसकी प्रणाली को चाहें तो वे निर्दोष बनावें वा सदोष रहने दें। आशा है कि कम से कम मध्य प्रदेश के सामयिक पत्रों के सम्पादकगण तथा लेखकगण हमारे इस लेख पर विचार कर अपने-अपने पत्रों तथा लेखों में विभक्त प्रत्ययों को प्रकृति से मिलाकर लिखने की प्रथा को प्रचलित कर देगे। विभक्ति प्रत्ययों को मिलाकर लिखने की प्रथा प्रचलित हो जाने के पश्चात् अखरौटी विषयक प्रश्न पर विचार किया जाएगा। जो सज्जन भाषा के सुधार को सब सुधारों का मूल कारण मानते हैं वे लोग हमारी इस प्रार्थना को असमयोचित कहकर टाल देने की उपेक्षा नहीं करेंगे, किन्तु इस ओर पूरा-पूरा ध्यान देकर भारत की राष्ट्रभाषा को दोषमुक्त करने के पुण्य भाजन बनने के यश को अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक भृगु फाल्गुन, चैत्र और वैसाख, संवत 1979-80

सनातन धर्म

सनातन धर्म का अर्थ है सदा का धर्म अर्थात् प्राचीन काल से चला आता हुआ धर्म। ज्यों ज्यों मनुष्य की बुद्धि परिपक्व होती जाती है और ज्यों-ज्यों उसके अनुभव की मात्रा बढ़ती जाती है त्यों-त्यों वह ऐहिक सुख की सामग्री को बढ़ाता जाता है। साथ ही परलोक की शान्ति प्राप्त करने का यत्न भी वह करता रहता है। भारतवर्ष इस धरातल पर सबसे प्राचीन देश है, सर्वप्रथम यहाँ का भूभाग मनुष्यों के रहने योग्य हुआ था। यही कारण है कि यहाँ का साहित्य सबसे प्राचीन है और उसमें मनुष्य का हित करने वाली जो बातें लिखी हैं वे भी बहुत अनुभव लेकर लिखी गई हैं।

जो समाज अपने सामाजिक कार्यों को किसी विश्वस्त नियमों द्वारा किया करता है वह शिष्ट एवं सभ्य समाज कहलाता है। हमारे प्राचीन आर्य ऋषि महर्षियों ने समय समय पर समाज की भलाई के लिए जो नियम बनाये हैं उनका संग्रह धर्म-शास्त्र नामक साहित्य मंजुषा में रखा हुआ है। जिसका मननपूर्वक पाठ करने से हमारे पूर्वजों की संसार पारीणता का खासा पता लग सकता है। खेद की बात है कि आज दिन हम लोग उन ग्रन्थों को पढ़ते पढ़ाते नहीं हैं। केवल उनके नाम की दोहाई देकर अपने को सनातन धर्मावलम्बी कहते कहाते हैं। यही कारण है कि हम इस समय जिस किसी काम को हाथ में लेते हैं, उसमें कृतकार्य नहीं होते। इस न्यूनता को दूर करने के लिए हमें अपने समाज का वर्तमान समयानुकूल नियन्त्रण करने के लिए नियम बना लेना चाहिए, जैसे कि हमारे पूर्वज समय समय पर करते आये हैं। आजकल हम सनातन धर्मावलम्बियों की दशा त्रिशंकु कैसी है। न तो हम मनु, पाराशर, वशिष्ठ, गौतम और अत्रि आदि के कहे हुए नियमों का इस समय पालन कर सकते हैं और न स्वयं वर्तमान समयानुकूल सामाजिक नियम बनाते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि नियन्त्रण बिना हमारा समाज अस्त-व्यस्त हो रहा है। सनातन धर्म सभाओं के कर्त्ता-धर्त्ता लोगों को इस ओर ध्यान देकर सनातन धर्म की तथा उसके उपासकों की रक्षा का उपाय शीघ्र करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान मनु आदि के नियमों का इस समय पालन हम नहीं कर सकते हैं। इसके दो चार उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं। श्राद्ध के विषयों में मनु जी ने लिखा है—

पितृणां मासिकं श्राद्ध मन्वाहार्यं बिदुर्बुधाः ।।
तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ।। —मनु० 3-123

भावार्थ—पितरों के मासिक श्राद्ध को बुधजन अन्वाहार्य कहते हैं। उसका सम्पादन उत्तम मांस द्वारा करना चाहिए।

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसे नाति मानवः ।।
सप्रत्य पशुतां याति संभवानेक विशातिम् ।। —मनु० 5-35

भावार्थ—जो मनुष्य नियमानुसार श्राद्ध में निमन्त्रित किया जाता है वह यदि श्राद्ध के माँस का भोजन न करे तो मरने के पश्चात् उसे इक्कईस बार पशु योनि में जन्म लेना पड़ेगा। विज्ञ पाठक, कहिये आज दिन ब्राह्मण लोग जब माँस का नाम सुनते वमन करने लगते हैं तब उनसे मनु भगवान के इन नियमों का पालन कैसे हो सकेगा। मनु के समय में जैसी परिस्थिति थी वैसे नियम उनने बनाये। हमारे समय में जैसी परिस्थिति है वैसे नियम हमें बनाना चाहिए।

श्राद्ध का निमन्त्रण जिन्हें नहीं देना चाहिए उनमें निम्नलिखित लोगों को भी मनु जी ने सम्मिलित किया है।

भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापिस्ततथा ।।
शूद्र शिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुंड गोलकौ ।।

भावार्थ—जो लोग धन देकर पढ़ाते हैं, जो शूद्र के शिष्य और गुरु होते हैं, सधवा और विधवा के जारजात पुत्र होते हैं, उन्हें श्राद्ध का निमन्त्रण नहीं देना चाहिए। कहिए आजकल जो ब्राह्मण बड़े बड़े प्रोफेसरों के पद पर नियुक्त हैं जो शूद्रों द्वारा शिक्षा पाकर बड़े बड़े पदों पर विराजमान हैं उन्हें कौन दृव्य-कव्य में बर्ज्य कर सकता है? तात्पर्य---आजकल हम भगवान मनु के इस नियम का पालन नहीं कर सकते। अतः हमें उसमें वर्तमान समयानुकूल परिवर्तन कर लेना चाहिए।

ब्याज के विषय में मनु भगवान ने अपने समय के लोगों के लिए निम्नलिखित नियम बनाया था।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत ।।
पूयं चिकित्सक स्थान्नं पुश्चला स्त्वत्रमिन्द्रियम् ।। —मनु० 10-117
विष्ठा वार्धुषिक स्थान्नं शस्त्र विक्रयिणों मलम् ।। —मनु०-4-220

अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियों को ब्याज लेने का व्यवसाय नहीं करना चाहिए। जो लोग वैधों का अन्न खाते हैं वे अन्न नहीं खाते किन्तु पीप खाते हैं, जो लोग व्याभिचारिणी स्त्री का अन्न खाते हैं वे लोग अन्न नहीं खाते किन्तु उसके व्याभि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारजति वीर्य को खाते हैं। जो लोग शस्त्र बेचने वालों का अन्न खाते हैं वे लोग अन्न नहीं किन्तु मल खाते हैं।

पाठक, विचार का स्थल है। क्या आज दिन हम लोग मनु जी की इस आज्ञा का पालन कर सकते हैं? नहीं कर सकते तो उसकी दोहाई हमें क्यों देनी चाहिए ?

सवारी के विषय में मनु जी ने लिखा है—

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः ॥

स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणयामेन शुद्ध्यति ॥ —मनु० 11-202

अर्थात् ब्राह्मण को ऊँट और गधे की गाड़ी पर नहीं बैठना चाहिए। यदि बैठे तो नग्न होकर स्नान कर प्राणायाम करना चाहिए। क्या आज दिन हम लोग इस नियम का पालन कर सकते हैं ?

विवाह के विषय की चर्चा करते हुए वर कन्या की आयु के विषय में मनु भगवान ने तब लिखा था—

त्रिंशत् वर्षो वहेत कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम ॥

अर्थात्—तीस वर्ष का वर बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। आज दिन हम पाँच वर्ष की कन्याओं का विवाह करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे यहाँ बाल विधवाओं की संख्या बढ़ गई है। ये बाल विधवाएँ तीनों कुलों को कलंकित करती हैं। इस दशा को देख अंग्रेजी लिखे-पढ़े और उनकी देखा-देखी यहाँ के कई लोग कहने लगे हैं कि जब तक विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं किया जायगा तब तक भारत की उन्नति नहीं होगी। ध्यान रहे विधवा विवाह से स्त्रियों का पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाता है और पतिव्रत धर्म के नष्ट हो जाने पर गृह-शान्ति नहीं रह सकती। गृह शान्ति बिना मनुष्य जीवन बोझ हो जाता है। इन बातों का अनुभव करके ही हमारे प्राचीन आर्यों ने नियम किया था कि वर की आयु कम से कम 30 वर्ष की और कन्या की 12 वर्ष की रहनी चाहिए। अब हमें बाल-विधवाओं की संख्या घटाने के लिए इनके विवाह काल की अवधि बढ़ा देनी चाहिए। ऐसा करने से बाल विधवाओं की संख्या घट जायेगी।

दान के विषय में पाराशर मुनि ने लिखा है—

यद्यत्र दुर्लभं द्रव्यं यस्मिन कालेच वापुनः ॥

दानार्हौ कालौ तौस्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा ॥

अर्थात्—जिस स्थान में और जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस स्थान में उस समय उस वस्तु को पहुँचाना ही श्रेष्ठ दान है। पाठक, देखिए यह कैसा विचारपूर्ण नियम है। पर आज दिन इसकी अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। जो पण्डे और धर्मगुरु रण्डियों को खिलाने तथा मद्यपान करने में सब रुपया खर्च करते हैं उन्हें ही हम लाखों की भेंट चढ़ाते हैं। क्या यही हमारे सनातन धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुओं की आज्ञा है। नहीं, उनकी आज्ञा तो स्पष्ट यही है—

संचयं कुरुते यश्च प्रतिग्रह्य समंतत: ।।
धर्मार्थं नो प्रयुक्त च नतं तस्करमर्चयेत् ।।

अर्थात्—जो लोगों से दान लेकर उस धन को धमार्थ काम में नहीं लाता किन्तु उसका अपने निजी काम के लिये संचय करता है, वह चोर है, उसे एक कौड़ी भी नहीं देनी चाहिए। पाठक, देखें, हम सनातन धर्मी लोग आजकल दान धर्म किस प्रकार आँख मूँद कर करते हैं। आज दिन भारत के कोने-कोने में कृषि की दशा दीन हीन हो रही है। अन्न वस्त्र देने वाली एक मात्र कृषि है। उसकी उन्नति के लिये दान देने का यह समय है, पर उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। क्या सनातन धर्म सभाओं को इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिए ? हम आशा करते हैं कि हमारे वर्तमान सनातन धर्म सभाओं के सूत्रधार हमारे उक्त निवेदन पर विचार करने की कृपा करेंगे।

हमारे निवेदन का निष्कर्ष यही है कि जिस प्रकार हमारे ऋषि महर्षि समय समय पर समाज रक्षा के लिए अनुभव पूर्ण नियम बनाकर तथा उनके अनुसार समाज को चलाकर उसकी रक्षा करते आये हैं, उसी प्रकार हमारी वर्तमान सनातन धर्म सभाओं को वर्तमान सनातन धर्मावलम्बी लोगों की रक्षा के लिए वर्तमान समयानुकूल नियम बनाकर उसकी रक्षा का उद्योग करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हितकारिणी' भाग-1, संख्या-5, फरवरी, 1926

श्रीतुलसीकृत रामायण

[1]

जो परलोक यहाँ सुख चहहू।
सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू॥ —तुलसीदास

ईश्वर की कृपा से अब वह दिन बहुत निकट आ रहा है जब कि संसार भर के पुरातत्ववेत्ता तथा भूगर्भवेतृगण एक स्वर से इस बात को स्वीकृत कर लेंगे कि वर्तमान संसार में सर्वप्रथम जीवनक्षम भारत का ही भूभाग हुआ था। यहीं सर्व प्रथम वनस्पति जीव-जन्तु तथा मनुष्य की सृष्टि हुई थी। विकास तत्त्व की प्रगति के अनुसार सर्वप्रथम मानवी उन्नति का ॐ नमः सिद्धम् भारत में ही हुआ था। सब प्रकार की उन्नतियों की सुगमता के साथ प्रचार और विस्तार करनेवाली लिपि का जन्म भी सर्वप्रथम इसी प्राचीनतम देव निर्मित भारत देश में ही हुआ था।

जब से अक्षर लिपि का संसार में जन्म और प्रचार हुआ है तब से आज पर्यन्त ऐसा कोई ग्रन्थ किसी भाषा में नहीं लिखा गया है जिसका तुलसीकृत रामायण के समान आदर और प्रचार हुआ हो। अकेले भारतवर्ष में ही रामायण को आदर की दृष्टि से देखनेवाले जनसमूह की संख्या नव करोड़ है। सात समुद्र और तेरह नदियों के पारस्थ लन्दन नगरी में जब विद्वद्रत्न ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदासजी कृत 'ठुमुक चलत रामचन्द्र बाजत पैंजनिया' पद कह सुनाया था तब उस दिन की सभा में जो पुत्रवती स्त्रियाँ उपस्थित थीं, उनने तुलसीदास के उक्त पदस्थ वात्सल्य भाव को समझ, एक स्वर से सभा भवन को 'धन्य तुलसी की' ध्वनि से प्रफूरित कर दिया था! तुलसीदासजी, निःसन्देह तुम्हारा जन्म तुम्हारी साहित्य सेवा, तुम्हारी देश-सेवा, तुम्हारी परोपकारिता आदि सभी धन्य तथा अनुकरणीय हैं।

आजकल किसी ग्रन्थ पर जो लेख लिखता है उसे उसके लेखक की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली प्रधान-प्रधान बातों का भी उल्लेख करना पड़ता है। यथा ग्रन्थकार के जन्म का साल सम्वत्, जन्म स्थान, माता-पिता का नाम, जाति, बाल चरित्र, विद्याध्ययन, साहित्य परिशीलन, रुचि, स्वभाव, धार्मिक विचार, देश दशा ग्रन्थनिर्माण कारण, ग्रन्थों की संख्या और उनकी समालोचना इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हम जिस ग्रन्थ पर लिख रहे हैं उसके रचयिता के जन्म स्थान, माता-पिता के नाम, बाललीला विद्याध्ययन आदि के विषय में यद्यपि अनेक लेखकों ने अपनी-अपनी खोज और समझ के अनुसार बहुत कुछ लिखा है तथापि वह सब अभी तक सन्देह सम्पुटित ही है। क्योंकि वह सब उनके अनुमान की नींव पर ही स्थित किया गया है। जिन सज्जनों को गोस्वामी तुलसीदासजी के विषय में जन्म स्थान, माता-पिता, बाललीला आदि के विषय में विशेष रूप में जानने की इच्छा हो वे लोग, वेणीमाधवदासजी, शिवसिंहजी सेंगर, नाभादासजी, प्रियादासजी, डा० ग्रियर्सन, रामगुलामजी द्विवेदी आदि लिखित उनके जीवनचरित्र को पढ़ अपनी मनस्तुष्टि कर सकते हैं। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस की भूमिका, मिश्रबन्धु विनोद तथा, तत्कृत नवरत्न, महादेव-प्रसादजी त्रिपाठीकृत भक्ति-विलास आदि ग्रन्थों से भी उनके विषय में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें जानी जा सकती हैं। उक्त ग्रन्थों के देखने से हमें जो कुछ विदित हुआ है उसका सारांश यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने बाँदा जिले के राजापुर नामक स्थान में ई० सं० 1532 में जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता का नाम आत्माराम, माता का नाम हुलसी, स्त्री का नाम रत्नावली और पुत्र का नाम तारक था। उनकी धर्मपत्नी रत्नावली के पिता का नाम दीनबन्धु पाठक था। कई लेखकों ने उन्हें सरयूपारीण और कई ने कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है। रामायण में दायज तथा कन्या के ससुराल की वस्तुओं के न ग्रहण करने के विषय में गोसाईं-जी ने जो भाव व्यक्त किये हैं उनसे यही अनुमान होता है कि वे कान्यकुब्ज-कुल-सम्भूत ही होंगे। यथा "सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन देन निछावर लागे।। कहि अनीति तिनमूँदे काना। धर्म विचारि सबन सुख माना। दायज दीन्हन जाय बखाना।। ऋषि रुख लखि कह तिरहुत राजू। यहाँ उचित नहिं अशन अनाजू।।" तुलसीदासजी का बाल्यावस्था का नाम रामबोला था। कहा जाता है कि उनका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था, अतः उनके पिता ने उनके जन्मते ही उनका परि-त्याग कर दिया था। उनके गुरु नरहरिदासजी ने उन्हें परित्यक्त दशा में पाकर उनका लालन-पालन कर उन्हें विद्या पढ़ाई थी। हमारे देश में इधर कुछ शताब्दियों से यह भावना प्रबल हो गई है कि जो-जो बड़े महात्मा होते हैं वे बिना लिखे-पढ़े ही अपने इष्टदेव के प्रसाद से प्रकाण्ड विद्वान हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के विषय में भी लोगों ने ऐसी बातें लिखी हैं। पर गोस्वामीजी की समस्त रचनाओं को मननपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि उनने चिरकाल तक बड़े परिश्रम के साथ विद्याध्ययन किया और उस समय जो संस्कृत तथा भाषा का साहित्य प्राप्य था उसका यथेष्ठ अध्ययन किया था। बिना अध्ययन किये केवल आशीर्वाद से कोई विद्वान नहीं हो सकता, इस बात को स्वयं गोस्वामीजी भी मानते थे। ऐसा मानते थे तभी उनने रामचन्द्रजी तथा उनके भाइयों के विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है "गुरु गृह पढ़न गये रघुराई। अल्पकाल सब विद्या पाई।" यह बात अलग है कि जो विशेष मेधावी होते हैं वे थोड़े ही परिश्रम से विद्वान हो जाते हैं और जो मन्दबुद्धि होते हैं उन्हें अधिक काल तक अधिक परिश्रम करना पड़ता है। तात्पर्य गोसाईंजी ने अध्ययन द्वारा विद्या पाई थी न कि केवल गुरुप्रसाद द्वारा।

गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म विक्रमीय सं० 1589 अर्थात् ई० सं० 1532 में हुआ था। गोसाईंजी ने रामचरितमानस का लिखना वि० सं०, 1631 ई० सं० 1574 में प्रारम्भ किया था। उस समय आपकी अवस्था 42 वर्ष की थी। इस अवस्था को पहुँचने तक आपने संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के सब प्रकार के उपलब्ध साहित्य का भलीभाँति अवलोकन कर लिया था। साथ ही संसार के सुख-दुःख और भलाई-बुराई आदि का भी बहुत कुछ अनुभवजनित ज्ञान प्राप्त कर लिया था। संस्कृत के दर्शन, नीति, पुराण, सदाचार आदि विषय के ग्रन्थों में हमारे पूर्वज जो उत्तमोत्तम उपदेश देनेवाली, तथा तदनुसार वर्त्ताव करने से कल्याण करनेवाली बातें लिख गये हैं, उनका यथातथ्य बोध न होने के कारण अपने-अपने समकालीन राजा-प्रजा की दुरवस्था देख गोस्वामीजी जैसे परोपकारी सज्जन के चित्त में स्वदेश तथा स्वजनों की भलाई करने की बात उत्पन्न होना नितान्त नैसर्गिक है।

इसी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर गोस्वामीजी ने रामायण के ओंट कैसे अपने देश भाइयों को ऐहिक और पारलौकिक सुख-शान्ति देनेवाले सारगर्भित उपदेश देने का यत्न किया है। यवन और अंगरेजों के भारतवर्ष में आने के पूर्व इस देश में प्राय: यही प्रथा थी कि लोकोपकारक ग्रन्थ अवतारी पुरुषों के चरित्र के ब्याज से लिखे जाते थे। वही भावना गोस्वामीजी के चित्त पर अंकित हो गयी थी, अत: तदनुसार आपने मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के अनुकरणीय चरित्र का आश्रय ले, देशकाल वर्तमान की आवश्यकतानुसार उसमें हेर-फेर कर रामायण की रचना की है। हमारे देश के कई पण्डितों की सम्मति है कि गोस्वामीजी ने बाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया है, कई की सम्मति है कि अध्यात्म रामायण का अनुवाद किया है। हमारी सम्मति है कि गोस्वामीजी ने किसी रामायण का अनुवाद नहीं किया है। उनकी कृति स्वतन्त्र रचना है।

गोस्वामीजी ने जिस समय अपनी रामायण की रचना का आरम्भ किया था, उस समय भारत में अकबर बादशाह का राज्य था। उस समय अकबर की अवस्था 32 साल की थी। अकबर हिन्दू और मुसलमानों में स्नेह भाव स्थापित करने का बहुत कुछ प्रयत्न करता था, पर अपने सहधर्मी लोगों की उद्दण्डता के कारण उसका यत्न सकलांश में सफल नहीं होता था। परिणाम में प्रजा को पराजित लोगों के कष्ट उठाने पड़ते थे। इन सब बातों को गोस्वामीजी भलीभाँति जानते थे। उनकी दोहावली और कवित्त रामायण के निम्नलिखित पद्यों से उनकी उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना स्पष्ट रूप से प्रकट होती है—

"गोंड़ गँवार नृपाल महि। यवन महा महिपाल ॥
साम न दान न भेद कलि। केवल दण्ड कराल ॥"

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिजन चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग, विद्यमान सोचवश,
कहैं एक एकनिसों कहाँ जाय का करी।
वेंदहु पुरान कही लोकहु विलोकयतु, साँकरे सबको राम वावरे कृपा करी।
दारिद दशानन दुहाई दुनी दीनबन्धु, दुखि दहत देखि तुलसी हहाकरी ॥

भारत के आदिम निवासी आर्य लोगों की बुद्धि और समझ विकास-तत्त्व की मात्रा के अनुसार उनकी उन्नत अवस्था में जिस प्रकार प्रगल्भता और परिपूर्णता को पहुँची थी, उनके अनुसार उन लोगों ने राजनीति, प्रजा पालन, लौकिक तथा पारलौकिक सुख-शान्ति, व प्राप्ति आदि के जो-जो नियम और साधन बनाये और बताये हैं, उन्हें संस्कृत के ग्रन्थों में पढ़ उनके विपरीत वस्तु स्थिति को देख तुलसीदासजी जैसे संसार तत्त्व पारीण पुरुष के चित्त में उक्त पद्धान्तर्गत जैसे भावों का प्रादुर्भव होना स्वाभाविक ही है। प्राचीन आर्यों की वर्तमान भारतीय हिन्दू सन्तान को अपने कर्त्तव्य कर्म-धर्म का यथेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत कैसी जटिल एवं दुर्बोध भाषा के अध्ययन करने का कष्ट न उठाना पड़े, किन्तु उन्हें अपने पूर्वजों की ज्ञान सम्पत्ति का ज्ञान उनकी प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा में ही प्राप्त हो जाय, इसी अभिप्राय से प्रेरित होकर आपने अपने बहुमूल्य ग्रन्थ रामायण की रचना की है। सन्तोष का विषय है कि उनकी रामायण का यथेष्ठ प्रचार और आदर-सत्कार हुआ है। तुलसीदासजी की रामायण का प्रचार और आदर जितना हुआ, उतना उसमें लिखे हुए उपदेशों का प्रचार भी उसी मात्रा में हो जाता तो उनकी स्वर्गस्थ आत्मा को अभिप्रेतार्थ प्राप्ति का सुख बहुलांश में मिलता। खेद का विषय है कि उनके परवर्ती पण्डितों ने अपने-अपने पाण्डित्य को प्रकट करने की अनिवार्य लालसा से अभिभूत होकर, उनकी रामायण की एक-से-एक विशद टीकाएँ लिखीं और उसके मूल पाठ में मनमाने पाठान्तर कर उसमें क्षेपक भर दिये पर किसी ने उनके रामायण प्रणयन के प्रधान अभिप्राय के प्रचारार्थ तादृश यत्न नहीं किया! उसके इसी प्रधान अभिप्राय की ओर वर्तमान पाठकों के चित्त को आकृष्ट करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

तुलसीदासजी की रामायण पर मनोनिवेशपूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि उनने अपनी रामायण केवल परलोक प्राप्ति के निमित्त ही नहीं लिखी है। उनने अपने इस ग्रन्थ के नायक श्रीरामचन्द्रजी के मुख से उत्तर काण्ड में जो वचन कहलाये हैं उनसे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि वे चाहते थे कि भारतवासीजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण के पाठ से अपने कर्त्तव्य कर्मों का ज्ञान प्राप्त करें और उसके द्वारा ऐहिक तथा पारलौकिक सुख-सन्तोष को प्राप्त कर अपने जन्म को सफल करें यथा—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहँहु न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जो तुमहिं सुहाई॥

जो परलोक यहाँ सुख चहहू।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू॥

अन्त की दो पंक्तियों में ग्रन्थकार ने अपने अभिप्रेतार्थ को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है। साथ ही यह भी लिख दिया है कि हम अपना पाण्डित्य वा अधिकार प्रदर्शित करने के अभिप्राय से इस ग्रन्थ में कोई बात नहीं लिखते हैं। उसे केवल पाठकों की भलाई के अभिप्राय से ही लिखते हैं। उन्हें उचित है कि वे लोग हमारे निवेदन को पढ़ें व सुनें पश्चात् उन्हें जो बात हितकर तथा रुचिकर जान पड़े उसे करें। इसके सिवा और भी लिखा है—

"विमल कथा कर कीन्ह अरम्भा।
सुनत नसात काम मद दम्भा॥"

उक्त पंक्तियों का यही अभिप्राय है कि इस विमल कथा को जो जन आदर पूर्वक सुनेंगे तथा उसमें कहे हुए उपदेशों के अनुसार बर्ताव करेंगे वे काम, मद और अहंकार के अतिरेक से छूटकर अपने देश-कोष भली-भाँति रक्षा कर अपने मानव जन्म के पुनीत कर्त्तव्य कर्म को पूरा कर सकेंगे। व्यासजी ने बहुत स्पष्ट, सरल एवं सुबोध शब्दों में समझा दिया है "व्यास न कथनी काम की करनी है इक सार" कि केवल कहने-सुनने से कोई लाभ नहीं होता किन्तु सदुपदेश के अनुसार काम करने से लाभ होता है। इसी बात को एक अन्य कवि ने भी कहा है। यथा—

राम झरोखे बैठकर सबको मुजरा लेत।
जाकी जैसी चाकरी ताको तैसी देत॥

घोर सन्ताप का विषय है कि इन उपदेशों का यथार्थ रूप से समझने में लोगों ने बड़ी अवहेलना की है। लोगों ने यही समझ रखा है कि रामायण का घड़ी-आध-घड़ी पाठ कर लेने से वा उसका पाठ सुन लेने मात्र से ही उनके पाप नष्ट हो जायेंगे और उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति हो जायगी यथार्थ बात ऐसी नहीं है। पुराणों और धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने-सुनने पर आग्रह इसीलिए किया गया है कि बार-बार उनके पढ़ने-सुनने से उनमें लिखे हुए चरित्रों तथा उपदेशों का स्मरण सदा बनारहेगा और तदनुसार बर्ताव करने के लिए निरन्तर यत्न होता रहेगा। रामायण में लिखी हुई राम की पितृ-भक्ति, भरत का भ्रातृ-स्नेह, कौशल्या के स्नुषा-स्नेह आदि के अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार हम लोग अपने चरित्र को संगठित करने का यत्न करें तो निःसन्देह हमारे घरों में विरोध-कलह, मनोमालिन्य और अशान्ति के स्थान में, स्नेह-प्रेम सहानुभूति और सुख-शान्ति का साम्राज्य विद्यमान रहता। इसी साम्राज्य को घर-घर में फैला देने के उदारभाव से गोस्वामीजी ने अपनी रामायण लिखी है। रामायण को पढ़कर सुनानेवाले पण्डित लोग एक चौपाई वा दोहे के अनेक अर्थ बनाकर सुनाने की ओर जितना ध्यान देते हैं, उतना वे यदि तुलसीदास के प्रधान अभिप्राय को समझाने की ओर देते तो उससे श्रोताओं की भलाई होती, तुलसीदासजी की मनस्तुष्टि होती और कथा सुनानेवाले 'बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं' के पाप से बच जाते। रामायण पढ़ने तथा सुनानेवालों से इस जन की यह विनम्र प्रार्थना है कि वे लोग रामायण के प्रधान अभिप्राय की ओर अधिक ध्यान देने की कृपा करें। तुलसीदासजी ने श्लिष्ट पद्यों को छोड़कर एक से अधिक अर्थ को व्यक्त करने के अभिप्राय से अपनी रामायण नहीं लिखी है। वे लिखते हैं 'सरल कवित कीरत विमल सोई आदरहिं सुजान।'

[2]

अप्राप्य

[3]

तुलसीदासजी ने संस्कृत साहित्य के परिशीलन तथा निज के अनुभव से जिन-जिन हितकर बातों का ज्ञान प्राप्त किया था, उन्हें उनने अपनी रामायण में स्थान-स्थान पर बड़ी चतुराई के साथ लिख दिया है। उनमें से थोड़ी-सी उक्तियों का हम नीचे उल्लेख करते हैं। आशा है कि हमारे विवेकी पाठकगण उन पर विचार करने की कृपा करेंगे।

बन्दों प्रथम महीसुर चरना।
मोहजनित संशय सब हरना॥

रामायण का मंगलाचरण करने के पश्चात् सर्व्वप्रथम गोसांईजी ब्राह्मणों की वंदना इस अभिप्राय से करते हैं कि उनकी रामायण के पाठकों के चित्तों में यदि अज्ञानवश किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो आय तो वे लोग उसे हरण करने की कृपा करें। गोसांईजी को दृढ़ विश्वास था कि ब्राह्मण लोग अज्ञानजन्य संशय को नष्ट करने का सामर्थ्य रखते हैं। इसी विश्वास वश उनने उनकी प्रार्थना की थी। जो ब्राह्मण उनकी रामायण के पद्यों के एक से अधिक अर्थ कर पाठकों को मोहजाल में फँसाते हैं वे विचार करके देखें कि वे लोग तुलसीदासजी की प्रार्थना को सफल करते हैं वा उसे विफल कर उनकी आत्मा को दुखी करते हैं। विवेकी ब्राह्मणगण तो यही कहेंगे कि जो लोग तुलसीदासजी के अभिप्रेतार्थ के विरुद्ध उनकी रचना के एक से अधिक अर्थ कहते हैं वे निःसंदेह उनकी उक्त प्रार्थना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवहेलना करते हैं। जिन ब्राह्मणों पर उनने इतना विश्वास रखा था उन्हें उचित है कि वे लोग उनके विश्वास को इस प्रकार कलंकित न करें।

विनु सतसंग विवेक न होई।
रामकृपा विन सुलभ न सोई॥
बड़े भाग्य पाइये सत्संगा।
बिनहि प्रयास होय भव भंगा॥
पुण्य पुंज बिन मिलहिं न संता।
सत्संगति संसृतिकर अंता॥
तबहिं होंय सब संशय भंगा।
जब बहु काल करहि सतसगा॥

गोसाईंजी ने अपने पाठकों को स्थान-स्थान पर साग्रह उपदेश दिया है कि वे लोग इस संसार तथा इसके पश्चात् परलोक में यदि सुख-शान्ति चाहते हैं तो उन्हें उचित है कि वे लोग सत्संगति का सेवन करें। क्योंकि सज्जनों का समागम किये बिना मनुष्य में विवेक उत्पन्न होकर जाग्रत नहीं हो पाता। विवेक उस शक्ति का नाम है जिसके द्वारा मनुष्य औचित्य और अनौचित्य को समझकर दृढ़ता के साथ तदनुसार बर्त्ताव कर सकता है। परीक्षार्थी विद्यार्थियों के चित्तों पर परीक्षा विषयक ज्ञान अंकित करा देने की ओर जितना ध्यान दिया जाता है उतना नहीं उससे कहीं अधिक उनमें विवेक को जागृत करने की ओर दिया जाना चाहिये। संसार को अब भली-भाँति विदित हो चुका है कि विवेक विहीन विद्वान् बड़ा भयंकर होता है। विद्वान् होने के कारण लोगों को बड़े पद मिल जाते हैं पर उनमें विवेक की मात्रा तादृश जागृत न होने के कारण वे उत्कोच के लिये लालायित रहा करते हैं उसके मिल जाने पर अपनी विद्वत्ता तथा कर्त्तव्य-कर्म का गला घोंटकर वे अनुचित कर्म कर डाला करते हैं। विवेक से परिचित न होने के कारण उन्हें इस बात का तक ही बोध नहीं होने पाता कि जिनके दिये हुए धन से हम अपना वेतन पाते हैं, उन्हीं का कुछ काम आ पड़ने पर पुनः हम उनसे उत्कोच लेने की इच्छा क्यों करें? यह दुष्परिणाम विवेकहीन शिक्षा का है! आत्म हितैषी जनता को उचित है कि वह अपने बालकों को विवेक से ओत-प्रोत भरी हुई शिक्षा देने का प्रबन्ध करें, जैसाकि गोसाईंजी ने अपने पाठकों को उसका महत्व और उसकी आवश्यकता समझाने का यत्न किया है। हमें इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है, कि संसार में यदि विवेक प्रपूरित ज्ञान-विज्ञान का प्रचार अधिक मात्रा में किया जाय तो आज दिन धरती धन और दारा आदि के कारण जो कलहाग्नि उत्पन्न होकर जन-धन को भस्मसात् कर देती है, वह वैसा कभी न करने पावे। जिस सत्संग से मनुष्य का सच्चा हितैषी विवेक उत्पन्न होता है, उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित दोहे का अक्षर-अक्षर सत्य है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
मिलैंन ताही सकल मिलि, जो छिन लों सत्संग ।।

रामायण में स्थान-स्थान पर सत्संग और तज्जन्य विवेक की प्रशंसा पढ़ने के कारण उसके जिन पाठकों के चित्तों में वह उत्पन्न होकर कार्य काल में उनका सहायक होता है, वे निःसन्देह धन्य हैं। गोसाईंजी लिखते हैं, कि जब सत्संग चिरकाल लों किया जाता है, तभी उससे यथेष्ट लाभ होता है।

नाम निरूपण नाम यतनते।
सोउ प्रकटत जिमि मोल रतनते ।।

जिस समय तुलसीदासजी ने अपनी यह रामायण लिखी थी उस समय सर्व-साधारण को नित उठकी बोलचाल की भाषा में उपयोगी शिक्षा देने का कोई उपयुक्त ग्रन्थ नहीं था। साथ ही हिन्दू भावों के विपरीत आचरणों की भरमार चारों ओर दीख पड़ती थी। न पुत्र-पिता को मानता था, न पिता-पुत्र के लिखे की रक्षा पर ध्यान देता था, न भाइयों में भायप था, न लोगों में प्रेम का प्रचार था। ऐसी दुरवस्था को देख गोसाईंजी ने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के अनुकरणीय चरित्र द्वारा अपने पाठकों को हितकर शिक्षा देने का यत्न किया था। उक्त पंक्तियों द्वारा आप अपने पाठकों को सूचित करते हैं कि जो लोग इस रामायण में वर्णित रामचन्द्रजी के चरित्र का निरूपण करेंगे अर्थात् उन्हें कहें सुनेगे और साथ ही यत्नपूर्वक तदनुसार अपने चरित्र को संगठित करेंगे उन्हें जीवन का आनन्द निःसन्देह प्राप्त होगा। यह आनन्द उनके सुसंगठित चरित्र से ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होगा जैसे योग्य परीक्षक के मिलने पर रत्न का उचित मूल्य उसी रत्न से उत्पन्न होता है। बहुमूल्य रत्न का मूल्य रहता उसी में है, पर जब तक वह योग्य परीक्षक के हाथ नहीं पड़ता तब तक उसका उचित मूल्य प्रकट नहीं होता। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के चरित जब कार्य रूप में लाये जायेंगे तभी उनके पाठक और श्रोताओं को आनन्द मिलेगा। रामायण को पढ़ धन धरा के लालच से कोई पिता-भ्राता आदि को कष्ट न देवे वा उनके लोभ से कोई अपनी पुत्री विधर्मियों को ब्याह न देवे ऐसे अनर्थों से हिन्दुओं की रक्षा हो—इस अभिप्राय से गोसाईंजी ने उक्त रामायण लिखी थी। जो लोग रामायण का नित्य पाठ कर, गोसाईंजी की शिक्षा के विपरीत आचरण करते हैं वे स्वयं विचार करें देखें कि हम गोसाईंजी के महदुपकार का कहां तक आदर सत्कार करते हैं—

सन्त शम्भु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ अस मर्यादा ।।
काटै जीह जु तासु बसाई। श्रवण मूंदि न तु चलै पराई ।।

आजकल मुद्रण-कला की सुगमता तथा अधिकता के कारण देश-देशान्तरों के लोगों के धार्मिक विचार इच्छा होने पर, पाठकों को ज्ञात हो सकते हैं। विदेशी लोगों के धार्मिक साहित्य का परिशीलन करने से जाना जा सकता है कि उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर विषयक प्राचीन कल्पनायें तथा कथायें भारत के प्राचीन लोगों की कल्पनाओं और कथाओं से श्रेष्ठ नहीं हैं। यह बात केवल विद्वानों को ही ज्ञात हो सकती है, सर्वसाधारण को उसका तादृश ज्ञान नहीं हो सकता। इस बात को गोसाईंजी भली-भांति जानते थे। जब उनने मुसलमानों द्वारा मूर्ति-पूजा की विपरीत चर्चा सुनी तब उससे अपने सर्वसाधारण पाठकों की रक्षा करने के अभिप्राय से आपने यह सूचना दी है कि जब तुम लोग देखो कि तुम्हारे मुँह पर अविश्वासी लोग अज्ञानवश तुम्हारे पूज्य आचार्यों तथा देवों की निन्दा करते हैं तब तुम्हारा वश चले तो उनकी जीभ को काट लो, वश न चले तो वहाँ से अपने कान मूंदकर अलग हो जाओ। रामायण के बड़े भक्त कहाने वाले लोग अपने बच्चों को ईसाइयों की पाठशालाओं में यदि न भेजते तो आज दिन अज्ञानवश जो भारतीयजन ईसाई हो गये हैं वे ईसाई कभी न होते। हिन्दुओं को गुसाईंजी की इस सूचना की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

गोस्वामीजी के समय विवाहित स्त्री को 'तलाक द्वारा' पृथक करने की प्रथा उत्पन्न होकर बढ़ती जाती थी। यह रोग हिन्दुओं को भी ग्रसित न करने पावे इस अभिप्राय से आपने अपने पाठकों के हितार्थ रामायण में कई प्रसंगों पर इसकी चर्चा की है। दो-तीन प्रसंगों के अवतरण नीचे दिये जाते हैं। सबसे प्रथम पार्वतीजी को उनकी माता द्वारा, तदुपरान्त जानकीजी को उनकी माता तथा जेठी बड़ी सखियों द्वारा और तीसरी बार पुनः सीताजी को ऋषिपत्नी अनुसूया द्वारा स्त्री धर्म की उत्तम शिक्षा दिलाई है। यथा :

जननी उमा बोलि तब लीन्हीं।
लै उच्छंग सुन्दर सिख दीन्हीं॥
करेहु सदा शंकर पद पूजा।
नारि धर्म पति देव न दूजा॥

पुनि पुनि सियहिं गोद भर लेहीं।
देइ अशीश सिखावन देहीं॥
होइहु संतत पतिहिं पियारी।
चिर अहिवात अशीश हमारी॥
सासु श्वसुर गुरु सेवा करेहु।
पति रुख सखि आयसु अनुसरेहू॥
कह ऋषि बधू सरल मृदु बानी।
नारि धर्म कछु व्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी।
मित सुख प्रद सुनु राजकुमारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमित दान भर्ता बैदेही।
अधम नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद् काल परखिये चारी ॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥
सहज अपावन नारि । पति सेवत शुभ गति लहहिं ॥
यश गावहिं श्रुति चारि । अजहु तुलसिका हरिहिं प्रिय ॥

संस्कृत साहित्य के प्रेमियों को यह बात विदित ही है कि स्त्री पुरुष के वैवाहिक सम्बन्ध की पवित्रता की ओर सर्वप्रथम उद्दालक मुनि का ध्यान आकृष्ट हुआ था। ज्यों ही उनका ध्यान उस ओर गया, त्यों ही उनने उक्त दिशा में यत्न आरम्भ कर दिया। कहना नहीं होगा कि उद्दालक मुनि का ध्यान जब उक्त विषय की ओर गया तब स्त्री पुरुष का सम्बन्ध वर्त्तमान पाशव सम्बन्ध का समकक्ष ही था। उस दशा में उसके सुधार का ॐ नमः सिद्धम् उद्दालक मुनि द्वारा किया गया था। उनसे जितना बना उतना उनने उसका सुधार किया। उनके पश्चात् उनके उत्तरवर्ती मुनिगण उसका सुधार करते रहे। एतद्विषयक सुधार की मात्रा ने स्त्रियों में पति विषयक भक्ति को यहाँ तक पहुँचा दिया, कि पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति को निम्न-लिखित पद्यों के अनुसार मानने लगी थीं—

जहँ लग नाथ नेह अरु नाते।
प्रिय विनु तियहिं तरणिते ताते ॥
तन धन धाम धरणि पुनि राजू।
पति विहीन सब नरक-समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारु।
यम यातना सरिस संसारु ॥
जिय विन देह नदी विनु वारी।
तैसे ही नाथ पुरुष विनु नारी ॥
प्राण नाथ तुम विनु जग माहीं।
मोकहं सुखद कतहुँ कोऊ नाहीं ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
शरद-विमल-विधु-वदन निहारे ॥

और अन्त में उनके मरने पर अपने मृत पति के साथ प्रेम-वश जीते जी जल जाने लगीं। स्त्रियों की इस पातिवृत्य वृत्ति की यथार्थ में रक्षा की जाती तो आज दिन भारत वर्त्तमान गिरी हुई दशा में न रहता। खेद का विषय है कि स्त्रियों की उक्त पवित्र सेवा से स्वार्थी लोग अनुचित लाभ उठाने लगे, इसका परिणाम यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि यहाँ के विदेशी शासकों ने कानून बनाकर उस प्रथा को निंदित कर दिया। और विदेशियों की देखा-देखी समाज में विधवा विवाह को प्रचलित करने का यत्न करने लगे।

पुरातत्ववेत्ता तथा भूगर्भ शास्त्रज्ञों की सम्मति है कि संसार में भारत सबसे प्राचीन देश है। मानव समाज की भलाई के उपायों को खोज और उनका प्रचार सर्वप्रथम भारत में ही हुआ है। जब अनुभव से भारत के विद्वानों को यह मालूम हुआ कि जब तक स्त्री शुद्धांतःकरण से पति की अनुगामिनी नहीं होगी, तब तक गृह सुख सम्पन्न नहीं हो सकेगा, तब उन लोगों ने इस दिशा में उद्योग करना आरम्भ किया और अपने उद्योग को सकलांश में परिपूर्ण कर छोड़ा अर्थात् स्त्री जनों के चित्तों पर पति-भक्ति को पूर्ण रूप से अंकित कर दिया। इस विषय पर जो तत्वजिज्ञासुजन विचार करेंगे वे निःसन्देह इसी परिणाम पर पहुँचेंगे, कि विधवा विवाह की प्रथा गृहशान्ति की समर्थक कभी नहीं हो सकती, अतः वह हेय है। गोसाईं तुलसीदासजी अपने समय में भारतीय स्त्रियों के उच्चतम गुण पतिव्रत धर्म की अवहेलना देख रहे थे। यही कारण है कि उनने यथा स्थान उस गुण की आवश्यकता का अपने ग्रन्थ में उल्लेख कर दिया है। उनके इस समयोपयोगी उल्लेख ने सर्वसाधारण का महदुपकार किया है। इस समाचार को पढ़कर हमारे पाठक प्रसन्न होंगे कि जब तक एक मिशनरी संघ की अविवाहित युवा स्त्री ने अपने गुरु पण्डित से गोस्वामीजी कृत उक्त वर्णन को पढ़ा और उसके तत्व को समझा तब उसने मुक्त कंठ से यह बातें कहीं कि यदि मैं भारत में न आती तो मुझे यह ही नहीं मालूम हो पाता कि संसार में स्त्रियाँ इस प्रकार पतिव्रता हो सकती हैं। खेद का विषय है, कि जिस पतिव्रत धर्म को गढ़कर बनाने में भारत के पूर्ववर्त्ती आचार्यों ने सहस्रों नहीं लाखों वर्ष व्यय किये थे, उसे आजकल के भारतीय विद्वान् विधवा विवाह की प्रथा द्वारा नष्ट करने में ही भारत का कल्याण मानने लगे हैं। बाल-विधवाओं की संख्या तथा उनके दुःखों को घटाने के लिये उनका पुनः विवाह करने की प्रथा प्रचलित करने की अपेक्षा उनके बाल-विवाह की प्रथा को बन्द कर देना कहीं श्रेयस्कर होगा।

आदि अन्त कोऊ जो सुन पावा।
मति अनुमान निगम अस गावा।।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहै घ्राण बिनु वास अशेखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाय नहिं बरनी॥
जिहि इमि गावहिं वेद बुध।
जाहि धरहिं मुनि ध्यान॥
सोई दशरथ सुत भक्ति हित।
कोशल पति भगवान॥

रामायण का लिखना आरम्भ करते तक गोसाईंजी को मूर्ति पूजा के विरुद्ध यवनों की युक्तियाँ भली-भाँति विदित हो चुकी होंगी। उस समय ईसाइयों की प्रबलता नहीं थी। तथापि सम्भव है, उन्हें उनकी युक्तियाँ भी श्रवण गत हुई होंगी।

अपने अपने उक्त प्रकार के आचार्यों की महिमा का गान करने वाले मूर्ति-पूजा विरोधियों को उत्तर देते हुए गोसाईंजी ने उक्त पद्यों में लिखा है, कि हिन्दू लोग, जैसाकि विरोधी समझते हैं, पत्थर और मिट्टी की पूजा नहीं करते, किन्तु वे लोग निष्कलंक एवं उदार चरित पुरुषों द्वारा सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वव्यापी ईश्वर की पूजा करते हैं। (अपूर्ण)*

---

* इस लेख माला की क्रम संख्या 2 तथा 4 के पश्चात् के अंश अब तक अप्राप्त होने से इसके साथ सम्मिलित नहीं किए जा सके।

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हितकारिणी', भाग-12, संख्या-8 मई 1926 ई०

मृत राष्ट्र की गोरक्षा

इस संसार में चिंवटी एक तुच्छातितुच्छ जन्तु है। उसका घर देखा जाए तो देखने वाले को उसके खाने-पीने की चीजों का इतना विपुल संग्रह मिलेगा कि जिसे देख समझदार जन को आश्चर्य-चकित होकर अपनी ताद्विषटाक उपेक्षा पर लज्जित होना पड़ेगा। वर्त्तमान भारतवासियों में अभी एक नहीं अनेक ऐसे सज्जन विद्यमान हैं, जिसने एक रुपये के मन भर गेहूँ और चावल खरीदे हैं। उन लोगों के देखते-देखते ही एक रुपये के छः सात सेर गेहूँ और तीन-चार सेर चावल बिकने लगे, पर उन्हें उसकी बिन्दु मात्र भी चिन्ता नहीं है। उनके विषय में यदि यह कहा जाए कि वे इस विषय में चिंवटी से भी गये-बीते हैं, तो अत्युक्ति नहीं होगी। जो राष्ट्र अपने खाने-पीने की आवश्यक चीजों को अपनी माँग के अनुसार पैदा करने की चिन्ता नहीं करता उसे जीवित राष्ट्र कौन कहेगा। वह जीते जी ही मृत के समान है।

जिस पाश्चात्य जगत को अभी कल यह बात मालूम हुई है कि मनुष्यों को जिन भोज्यान्नों और वस्त्रों की अनिवार्य आवश्यकता रहा करती है, उनका विपुल मात्रा में उत्पन्न करना गोवंश की रक्षा और वृद्धि पर ही अवलम्बित है; अतः वे गवामिष्य भोजी होने पर भी उसकी धनपण से रक्षा और वृद्धि कर रहे हैं, उसके सहस्रों नहीं लाखों वर्षों के पूर्व भारत के अनुभवी आर्य्यों को गो-वंश की उपयोगिता पर मुग्ध होकर उन लोगों ने गोकुल की प्राण पण से रक्षा और वृद्धि की, हम वर्त्तमान भारतवासी गोरक्षा से उदासीन होकर अपने हाथों आत्मघात न करने लगें इस अभिप्राय से उन लोगों ने वेदों से लेकर काव्यों तक में गोकुल की महिमा और उसकी रक्षा का विधान लिख रखा है। हम वर्त्तमान भारतवासी अपने को इतने प्रकाण्ड पण्डित समझते हैं कि हमारी यह धारणा हो गई है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में रखा ही क्या है। इस अनिष्ट भावनावश हम न तो उसे देखने और न वर्त्तमान पाश्चात्य जगत के ही गो-पालन शास्त्र को ही देखते हैं। इस प्रकार हमने अपने को 'दोनों दीन से गये पाण्डे' बना रखा है, अपनी इस विपरीत समझ का फल भी हम भोग रहे हैं अर्थात् हम भारतवासियों का एक बड़ा भारी समूह अन्न वस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिन्ता से सदा पीडित रहा करता है—मृत राष्ट्र की यह दशा होनी ही चाहिये।

अब नीचे जीवित राष्ट्र की दो एक बातें लिखी जाती हैं, प्रार्थना है कि हितकारिणी के सचेत और समझदार पाठक उन्हें ध्यान देकर पढ़ें।

अभी थोड़े वर्षों की बात है कि अमेरिका में एक साल वर्षा कम हुई। उसके कारण गेहूँ की उपज भी कम हुई। कम उपज के कारण लोगों को गेहूँ अभीष्ट मात्रा में सुगमता के साथ नहीं मिल सके, महँगे भाव से गेहूँ बेचकर अधिक धन कमाने वाले वहाँ के किसानों और गल्ले के व्यापारियों को इस बात पर हर्ष नहीं हुआ कि थोड़ा माल बेचकर हमने अधिक धन जैसा कि वर्तमान भारतवासी किसानों और उनसे अधिक गल्ले के व्यापारियों को हुआ करता है। वरन् उन्हें देश के लोगों के अन्न-कष्ट को देख दुःख हुआ। दुःख देख वे चुप नहीं बैठे रहे। उनने यह प्रश्न उपस्थित किया कि क्या संसार में कहीं उस जाति का भी गेहूँ है जो थोड़ी वर्षा के साल में भी पूरी-पूरी उपज देता है। बस, इस प्रश्न के उपस्थित होते ही आवश्यक धन एकत्र किया गया। वह धन एक गवेषणा-समिति के अधीन किया गया। उस समिति ने उस धन से अपने आश्रित जनों के भरण-पोषण का प्रबन्ध किया और आप उक्त प्रकार के गेहूँ की खोज में लग गई। सच्चा प्रयत्न बहुधा सिद्ध ही होता है। उस समिति ने रूस के एक स्थान में एक ऐसी जाति को खोज निकाला जिसकी न्यून वर्षा के साल में भी खासी उपज होती है। आज दिन सुनते हैं, उस गेहूँ की खेती अमेरिका में लाखों एकड़ में की जाती है। क्या हितकारिणी के विज्ञ पाठक इसे जीवित राष्ट्र की कृति मानने में कुछ संकोच करेंगे? मैं समझता हूँ कि वे उसे निःसंकोच होकर जीवित राष्ट्र-कृति मानेंगे और उससे कुछ शिक्षा भी ग्रहण करेंगे।

यूरोप का गत महासागर आरम्भ होने के दो एक वर्षों के पूर्व सर कुक ने आत्मानुभव से जानकर यह बात समाचार पत्रों में प्रकाशित की धरती के गर्भ में भोज्यान्नों के पौधों के जो निसर्ग जात भोजन रहा करते हैं, उनमें नाइट्रोजन नाम का पदार्थ भीषण रूप से घट रहा है। उसकी पूर्ति का कोई उपाय यदि शीघ्र ही नहीं ढूँढ़ निकाला जाएगा तो यूरोप के देशों में भोज्यान्नों की उपज बहुत घट जाएगी और उससे लोगों को बहुत कष्ट होगा। सर कुक की उक्त बात के पत्रों में छपते ही सधन और समझदार देश हितैषी उस पर गम्भीर भावपूर्वक विचार करने लगे। वे लोग विचार करके ही चुप नहीं हो रहे। उन लोगों ने आवश्यक धन एकत्र किया। उस धन से उस विषय के पण्डितों को भरण पोषण की चिन्ता से मुक्त किया। वे लोग धरती के गर्भस्थ नाइट्रोजन की पूर्ति के उपाय में लग गये। खोज एक ऐसी चीज है, कि उसके सामने प्रकृति अपने गूढ़ातिगूढ़ रहस्य को भी छिपा नहीं सकती। उस विद्वत्समाज के एक गवेषणा पटु ने यह बात खोज निकाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि नभोमण्डल में नाइट्रोजन का अक्षय भण्डार भरा हुआ है। वहाँ से प्राप्त कर वह धरती के गर्भ में पहुँचाया जा सकता है। बस इस खोज के लगते ही देश के धनी लोगों ने धन लगाकर कम्पनियाँ खड़ी कीं। ये कम्पनियाँ नभोमण्डल से नाइट्रोजन प्राप्त कर किसानों को देने का व्यवसाय करने लगीं। आज दिन नभोमण्डल का नाइट्रोजन पाश्चात्य जगत की धरती की उत्पादक शक्ति का बहुत कुछ संवर्द्धन और रक्षण कर रहा है। इस वृत्तांत को पढ़ हितकारिणी के सधन पाठक यही कहेंगे कि पाश्चात्य जगत के लोगों के पास बहुत धन है वे उसे मनमाने ढंग से खर्च कर सकते हैं। भारत के धनवानों के पास इतना धन कहाँ है? ऐसे सज्जनों के उक्त आक्षेप के उत्तर में मेरा यही नम्र निवेदन है, कि भारत में आज दिन भी ऐसे सधन राजा महाराजा हैं जो विलायत यात्रा में लाखों रुपया खर्च करते हैं, पर अपनी प्रजा की भलाई के काम में रुपया खर्च करते उनकी छाती फटती है। भारत में आज दिन भी ऐसे सेठ साहूकारों की कमी नहीं है जो सरकार को इनकम टैक्स के रूप में प्रतिवर्ष लाखों रुपया दिया करते हैं। अपने लड़के बच्चों के विवाहों में लाखों रुपया खर्च कर उनके भरण पोषण के साधनों को ऋण-ग्रस्त कर देते हैं। पर जब उनके समीप देश ही की उक्त बात कही जाती है, तब धन की कमी का रोना रोकर उसे उड़ा देते हैं। तात्पर्य्य भारतवासियों के पास अपने अन्न वस्त्र की विपुलता प्राप्त करने के साधन पर्याप्त हैं। उनके पास किसी चीज की घटी है तो वह समझ की ही घटी है। यह घटी निःसन्देह बहुत हानिकारक और लज्जास्पद है।

जबलपुर में अमेरिका के मिशनरी लोगों की एक संस्था है। उसमें श्री लीविंगउड नाम के एक सज्जन हैं। आपने अपनी एक साल की वार्षिक रिपोर्ट में यह लिख दिया कि जबलपुर के इतने अनाथ प्लेग पीडितों को दवा देकर मैंने उनकी प्राण रक्षा की। रोगियों के पास शीघ्र पहुँचने की कोई सवारी मेरे पास होती तो मैं और भी अधिक रोगियों की सेवा कर सकता। उक्त मिशनरी की उक्त रिपोर्ट में उक्त बात को पढ़ते ही अमेरिका के एक सात्विक दान मर्मज्ञ धनवान का अन्तः-करण द्रवित हो उठा। उसने तुरन्त ही एक चेक मि० लीविंगउड के नाम भेजकर उन्हें लिख दिया कि वे उसके सात्विक दान की रकम से एक मोटर गाड़ी खरीद लेवें और अनाथों की पर्याप्त सेवा किया करें।

भारत के प्राचीन धनवान सात्विक दान की महिमा को भली-भाँति जानते थे। वे उसे यहाँ तक याद रखते थे कि कुरुक्षेत्र के घोर संग्राम के मैदान में भी उसकी चर्चा भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से की थी। भगवद्गीता के निम्नलिखित मन्त्रों को देखिये।

दासव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशेकाले च पात्रे चतद्दानं सात्विकं स्मृतम् ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबलपुर देश में उस समय अनाथ, प्लेग पीडितों की प्राण रक्षा के लिए एक मोटर की अत्यन्त आवश्यकता थी। उस आवश्यकता को समझकर ग्यारह हजार मील की दूरी पर बैठे हुए एक धनवान को सात्विक दान की बात सूझी और उसने उसे देकर श्रीकृष्ण परमात्मा के उपदेश को चरितार्थ कर पुण्य प्राप्त किया। इस घटना के साथ हितकारिणी के विज्ञ पाठक एक भारतीय धनवान की दानशीलता के समाचार भी पढ़ लेवें। समाचार-पत्रों में मैंने पढ़ा कि एक भारतीय धनवान अपनी पौत्री के शुभ-विवाह में लाखों रुपया खर्च कर रहे हैं। उस समय मैंने उन्हें सुझाया कि आप अपने जिन किसानों से प्रति वर्ष लाखों रुपया कमाया करते हैं उनमें उचित गोपालन की चर्चा फैलाने के अभिप्राय से उस विषय की थोड़ी सी सौ पचास रुपये की पुस्तकें बाँट दीजिये। क्योंकि किसानों को उचित गोपालन के ज्ञान की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। मुझे यह लिखते अत्यन्त खेद होता है कि गोपाल श्रीकृष्ण के भक्त उक्त करोड़पति ने कई बार याद दिलाने पर भी मेरे पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। उनके यहाँ भगवद्गीता का पाठ प्रतिदिन होता रहता है। हितकारिणी के विज्ञ पाठक स्वयं इस बात का निर्णय कर लेवें कि श्रीकृष्ण परमात्मा के उक्त उपदेश का आदर सात समुद्र और तेरह नदियों के पार बैठे हुए उस अमेरिकन धनवान ने किया या भारत के उक्त करोड़पति ने जिनके यहाँ प्रतिदिन गीता का पाठ किराये पर कराया जाता है और जो संभवतः श्रीकृष्ण के नाम का जप किए बिना पानी तक नहीं पीते होंगे। कहना नहीं होगा कि उक्त परिस्थिति में श्रीकृष्ण अपनी आज्ञा का पालन करने पर ही प्रसन्न होंगे। यों ही झूठ-झूठ उनका नाम रटने वाले पर वे कभी प्रसन्न नहीं होंगे। महाभारत के नारायणी धर्म्म में भगवान ने इस बात को बहुत स्पष्ट कर दिया है। वह इस प्रकार है—

अपहाय निज कर्म्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
हरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

अर्थात् जो लोग मेरे बताये हुए कर्म्म का आचरण नहीं करते हैं किन्तु केवल मेरे नाम का कोरा जप किया करते हैं वे घोर पापी मेरे कृपा पात्र भक्त नहीं हैं किन्तु दण्डनीय शत्रु हैं। जब धर्म्म की स्थापना के लिए मुझे स्वयं देह धारण रूप कर्म्म करना पड़ता है तब उन्हें केवल नाम रटने से क्रिया का फल कैसे मिलेगा। इस बात पर समझदार को ध्यान देते रहना चाहिए। सारांश सात्विक दान का फल सात्विक दान करने से ही मिलेगा, मन्त्र के पाठ से उसका फल नहीं मिलेगा। पाठ से इतना ही पुण्य मिलता है कि उसका स्मरण बना रह सकता है।

हितकारिणी के मननशील पाठक बतावें कि अमेरिका का वह सात्विक दानी जीवित राष्ट्र कासज्जन है वा भारत का उक्त करोड़पति ? मैं तो पहिले उस सज्जन को ही जीवित राष्ट्र का अंग मानता हूँ। दूसरे महाशय मृत राष्ट्र के अंग ही हैं। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कृति से न निज की ही भलाई कर सकते हैं और न वर्तमान तथा भावी बाल-बच्चों की ही। ऐसी परिस्थिति में उनसे राष्ट्र की भलाई की आशा करना मृगतृष्णा ही है। देश-हित के लिए वे खासे अजागल स्तन ही हैं।

यूरोप अमेरिका और जापान के लोगों को जब से यह बात मालूम हुई है कि उनके देश के लोगों के लिए पर्याप्त* अन्न वस्त्र पैदा करने में गोवंश बड़ा उपयोगी है तब से वहाँ के साक्षर और सधन लोग उचित पालन द्वारा अपने गोवंश रक्षा और वृद्धि करने में सदा तत्पर रहा करते हैं। इस विषय के गवेषणा-साहित्य और उसके प्रचारार्थ वे बहुत धन खर्च करते रहते हैं। उनके देश की 'किसानी की कांग्रेस', 'कौटी कौनसिलें' और म्युनिसिपालिटीयां नामक संस्थाएँ गोरक्षा और कृषि की उन्नति में लगी रहा करती हैं। हमारे, महाप्रभु अंग्रेजों ने भी भारत की कृषि और गोकुल की रक्षा के लिए कृषि-विभाग, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपालिटी नामक संस्थाएं खोल रखी हैं। प्रथम संस्था के पदाधिकारी वेतनभोगी होते हैं और दूसरी और तीसरी के अवैतनिक। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपालटी के मेंबर और पदाधिकारी अवैतनिक ही होते हैं। अतः उन संस्थाओं में वे ही सधन लोग जाया करते हैं जो केवल नाम के भूखे रहा करते हैं। उक्त संस्थाओं में जाने वाले भारतीय साक्षर और सधन लोगों को उक्त संस्थाओं के पदों के दायित्व का भी ज्ञान होता तो बहुत अच्छा होता। अत्यन्त खेद, संताप और लज्जा की बात है कि भारत की उक्त संस्थाओं में जाने के लिए जो लोग लालायित रहा करते हैं और वहाँ पहुँचने के लिए उचित-अनुचित मार्गों का अवलम्बन कर पानी के समान धन भी खर्च करते हैं। वे वहाँ जाकर निश्चेष्ट और अकर्मण्य हो जाते हैं। लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा से उक्त संस्थाओं में प्रायः वे ही धनवान पहुँचा करते हैं जिन्हें अपने घर की व्यवस्था की चिन्ता और ज्ञान अणुमात्र भी नहीं होता। अतः उनकी निजी जायदादें तीन-तेरह होती रहती हैं। विद्वानों का भी यही हाल है। उक्त संस्थाओं के कामों को वे विगार तुच्छ काम की नाईं करते रहते हैं। बहुतेरे इस मेम्बरी को कौन्सिल-प्रवेश और मिनिस्टिरी पाने का साधन मात्र समझते हैं। वहाँ के कागजों को लेकर जब चपरासी आता है तब उनके पास कोई बैठा हुआ होता है तो उसे यह भाव दिखाते हुए चपरासी को बड़ी ऐंठ के साथ कहते हैं कि इस मुफतिया काम के लिए अभी हमें फुरसत नहीं है अभी कागज ले जाव और बाबू से कह देना कि वह इन कागजों को लेकर छुट्टी के दिन हमारे पास आवे इत्यादि इत्यादि। कहना नहीं होगा कि ऐसे कर्त्तव्य-विमुख अवैतनिक कार्य-कर्त्ता भारत जैसे मृत राष्ट्र में ही हो सकते हैं।

---

* यह बात सत्य है कि इंग्लैण्डादि देशों में गोपालन उत्तम रीति से किया जाता है, पर केवल दूध और मांस के लिए। वहां बैलों से खेती नहीं होती।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितकारिणी के विज्ञ पाठक यह अवश्य ही जानते होंगे कि भारत के धर्म भीरु लोगों ने कहीं-कहीं पींजरापोल सोसायिटी और गोरक्षिणी सभाएँ नाम की संस्थाएं खोल रखी हैं। उनकी संख्या लगभग पन्द्रह सौ के हैं। उनके पीछे धर्माभिरुचि विख्यात गोभक्त लोग प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च करते रहते हैं। क्या वे संस्थाएं भी मृतप्राय ही हैं? वे तो भारत के गोधन की खासी रक्षा और वृद्धि करती होंगी। विज्ञ पाठकों की अभिज्ञता के लिए यहाँ पर मैं यह सत्य-सत्य लिखता हूँ कि उक्त संस्थाओं में जो बड़ी-बड़ी संस्थाएँ हैं, उनके वार्षिक विवरण यही घोषणा कर रहे हैं कि उन संस्थाओं द्वारा गोरक्षा के नाम पर जो लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है वह अक्षर-अक्षर सत्य है। पर उस खर्च से गोवंश का जो यथार्थ उपकार होना चाहिए वह नाम मात्र को भी नहीं हो रहा है। बम्बई के प्रसिद्ध गोभक्त श्री चौंडू महाराज ने भी अपनी संस्था के सं० 1981 के वार्षिक विवरण में यही बात लिखी है।

उक्त संस्थाओं के विवरणों से यह जाना जाता है कि उनकी कार्य-कारिणी समितियों के सभ्य और पदाधिकारी* कभी अधिवेशनों में नहीं जाते। अतः आवश्यक कार्य के लिए बुलायी हुई सभा सदा स्थगित करनी पड़ती है। सभा का चपरासी जब उन्हें बैठक के समय की याद दिलाने जाता है तब तो कोई लोग अपनी स्पष्टवादिता अपने पास बैठे हुए लोगों को सुनाने के लिए यहाँ तक कह डालते हैं, कि हम अपने हजारों के मुनाफे के काम को सँभालें या इस मुफतिया काम में जाकर अपना समय नष्ट करें! बलिहारी है, ऐसे गोभक्तों की। ऐसे अधम गोभक्त भारत कैसे मृतराष्ट्र में ही पाये जाते हैं। जीवित राष्ट्रों में उनके समान अकर्मण्य लोगों का नाम तक नहीं सुना जाता।

ऊपर जो कुछ संक्षेप में लिखा गया है उसे ध्यान लगाकर पढ़नेवाले विज्ञ पाठकों को यह भली-भाँति ज्ञात हो जायेगा कि भारत मृत राष्ट्र है और उसके गोरक्षक गोरक्षा के नाम पर जो कुछ करते हैं वह सब मृत राष्ट्र की गोरक्षा ही है। यह बात अक्षर-अक्षर सत्य है।

भारत में सच्ची गोरक्षा का श्रीगणेश तभी होगा जब यहाँ के साक्षर लोग उचित गोपालन विधि का आविष्कार करेंगे और सधन लोग उसके प्रचारार्थ मुक्त हस्त होकर सात्विक दान करेंगे। पाश्चात्य जगत के सधन और साक्षर लोगों ने ऐसा ही किया है। गोरक्षा की सफलता का यही राज-मार्ग है। गौ के दूध और मक्खन में मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को जिस प्रकार हृष्ट-पुष्ट, नीरोग और

---

* हमारे यहाँ की सार्वजनिक समिति के सभ्यों तथा कार्य-कर्त्ताओं तक का यही हाल है। अत्यावश्यक कार्य होने पर भी मेम्बरादि नहीं आते जिससे कोरम तक न होने से बैठक नहीं होने पाती।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेधावी बनाने की पूर्ण शक्ति है, ठीक उसी प्रकार उसके गोमय और मूत्र में इतना नाइट्रोजन है कि वह भारत की भूमि को कामधेनु बनाये रखने के लिए बस है। गोवंश के इन्हीं अलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर भारत के आर्यों ने उसकी रक्षा और वृद्धि का आग्रह किया है। गोरक्षा कर भारत को पुनः जीवित राष्ट्र बनाना चाहिए। भारतवासी अपने समझ के घाटे को घटाकर अपनी निज की और अपनी सन्तति की भलाई की दृष्टि से गोरक्षा करना चाहें तो बिना कानून की सहायता और विरोधियों के रहते हुए भी वे उसे कर सकते हैं।

भारत के जो धनवान लोग आज दिन अपने विभव विस्तार को देख-देख फूले अंग नहीं समाते हैं, वे समय रहते उचित गो पालन की शिक्षा का प्रचार नहीं करेंगे और स्वयं उस शिक्षा के अनुसार गोरक्षा नहीं करेंगे, तो उनकी सन्तान को अन्न वस्त्र का दुख अवश्यम्भावी है। उस दुख से अपनी तथा अपने बालबच्चों की रक्षा करना प्रत्येक समझदार धनवान का कर्त्तव्य कर्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गोधन', 1926

मध्यप्रदेश में गोरक्षकों का घाटा

मध्यप्रदेश के जिलों में किसानों की जमीनों की लगानों के तथा मालगुजारों के गाँवों की जमा को प्रति बीस वर्षों में जो बन्दोबस्त किये जाते हैं उनकी रिपोर्टें तार स्वर से घोषणा कर रही हैं कि मध्यप्रदेश के किसानों तथा मालगुजारों की आर्थिक दशा दिनों दिन खराब होती जाती है। प्रत्येक बन्दोबस्त की रिपोर्ट से यही ज्ञात होता है कि ऋण के बोझ के मारे जिले के एक चौथाई से अधिक गाँव पुराने मालगुजार के हाथों से निकल नये मालगुजारों के हाथों में चले जाते हैं। इतना होने पर भी बन्दोबस्त के समय के मालगुजारों पर लाखों रुपयों का ऋण बना हुआ पाया जाता है। किसानों की आर्थिक दशा मालगुजारों से कहीं अधिक बुरी पाई जाती है। इन बुराइयों के प्रधान कारणों को मध्यप्रदेश की सरकार भली-भाँति जानती है। उन कारणों में गोपालन और कृषि विषयक लोगों का अज्ञान ही सर्व-प्रधान है। इस ऊनता को दूर करने के अभिप्राय से मध्यप्रदेश की सरकार ने प्रान्तभर के जिलों में मुख्य-मुख्य स्थानों में गोपालन और कृषि की शिक्षा का प्रचार करने के लिए आदर्श गोशालाएँ और कृषिक्षेत्र खोल रखे हैं। सरकार उनके पीछे प्रति वर्ष लाखों रुपया खर्च करती रहती है। पर प्रदेश के लो सरकार की इस उदार कृपा से लाभ नहीं उठाते। यह बात निःसंदेह अत्यन्त लज्जास्पद तथा हानिकारक है। लाभ उठाना तो एक ओर रहा, कई अदूरदर्शी सरस्वती और लक्ष्मी के कृपा भाजनजन सरकार की उक्त कृपाओं का उपहास किया करते हैं।

"किमाश्चरर्यमतः परम्"।

मध्यप्रदेश की सरकार ने अपने स्वदेश में जिन उपायों द्वारा, गोकुल और कृषि की आशातीत उन्नति की है, उनका पाठ मध्यप्रदेश के किसानों और मालगुजारों को पढ़ाने के लिए उसने लगभग उन्हीं उपायों का आश्रय यहाँ भी लिया है। अर्थात् यहाँ भी उसने कृषि विभाग खोल रखा है। यह विभाग गोवंश और कृषि की उन्नति के उपायों को ढूंढ़ता रहता है। साल भर में उसे जो उपाय ज्ञात होते हैं, उन्हें मालगुजारों और किसानों पर प्रकट करने के लिए वह कृषि गोप्रदशर्नी किया करता है। उसे देखने तथा उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिए वह जिले वा विभाग भर के नामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालगुजारों और किसानों को आमन्त्रित करता है। लोगों को आमन्त्रित करता है। लोगों को उत्साहित करने के लिए वह पुरस्कार और उपाधियाँ भी देता दिलाता है। मुझे यहाँ यह लिखते अत्यन्त लज्जा और खेद होता है कि सरकार की उक्त कृतियों से मध्यप्रदेश का कृषक समाज बहुत कम लाभ उठाता है। कृषि गोप्रदर्शिनियों को देखकर वह प्रायः यही कहता हुआ लौटता है कि इतना रुपया किसके पास है जो इतने बड़े-बड़े बैल, और कलें खरीद सके, इतना उत्तम बीज तैयार कर सके, नौकरों को इतनी अधिक तनखाहें दे सके, इत्यादि-इत्यादि।

मध्यप्रदेश की सरकार किसानों से जो लगान वसूल करती है, उसका आधा आप लेती है और आधा मालगुजारों को देती है। सरकार आधी रकम में बड़े-बड़े काम करती है। वह मालगुजारों की रक्षा के लिए, फौज, पोलिस और अदालतें रखती है। मालगुजार लोग जो आधी रकम पाते हैं उसे वे सबकी सब 'केशवाय' करजाने पर भी ऋण-ग्रस्त होते जाते हैं और किसानों तथा गोपालन की घोर उपेक्षा कर धरती को ऊसर और गोधन को निरुपयोगी बनाते जाते हैं। इस दुखस्था की ओर उसका बिन्दुमात्र भी ध्यान नहीं जाता। यह परिस्थिति प्रदेश के लिए जितनी लज्जाप्रद है उससे कहीं अधिक हानिकारक है।

सरकार की उदार कृपा से जो लोग लाभ नहीं उठाते उनका ध्यान गोवंश की उपयोगिता की ओर आकृष्ट करने के लिए मध्यप्रदेश के थोड़े से दूरदर्शी लोगों ने स्थान-स्थान पर गोरक्षिणी संस्थाएँ खोल रखी हैं। इन संस्थाओं के संचालन का उद्देश्य आपाततः यद्यपि धार्मिक दीख पड़ता है तथापि उसका प्रधान अभिप्राय प्रदेश की आर्थिक दशा से ही गहरा संबंध रखता है, खेद का विषय है कि शिखा सूत्रधारी लोग अपने को गोभक्त कहते हैं और गौ को गोमाता कहते हैं वे ही उचित गोपालन की ओर बिन्दुमात्र भी ध्यान नहीं देते। न जाने क्यों उन्हें यह बात नहीं सूझती कि जिन गौओं की बकासुर, अघासुर और कालिया नाग से रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण को अपने प्राणों पर खेलना पड़ा था, जिस एक गौ की रक्षा के लिए चक्रवर्ती राजा दिलीप को अपने प्राण देने के लिए प्रस्तुत होना पड़ा था, उन्हीं गौओं की वंशधर लाखों गौओं की रक्षा वे कोरी बातें बनाकर करना चाहते हैं तो वह कैसे सम्भव हो सकती है।

मध्यप्रदेश में गोपाल श्रीकृष्ण के ऐसे अनेक धनवानभक्त हैं जो श्रीमदभागवत वा श्रीमद्भवद्गीता का पाठ किये वा सुने बिना जल तक नहीं पीते। उन्हीं लोगों से श्रीकृष्ण की प्यारी गौओं की प्राणरक्षा के लिए जब श्रीकृष्ण के बताये हुए सात्विक दान की प्रार्थना की जाती है तब या तो बगले झांकने लगते हैं या वाणिज्य व्यवसाय के घाटे का रोना रोने लगते हैं। यह रोना रोते समय वे अपने आमोद-प्रमोद की चीजों के खरीदने में वा लड़के बच्चों के विवाहों में हजारों और लाखों रुपया खर्च किया करते है उनकी बातें बिलकुल भूल जाते हैं। आजकल के धनवान गो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तों समान गोपाल श्रीकृष्ण और चक्रवर्ती राजा दिलीप बातों से ही गोरक्षा करना चाहते तो अधासुर, बकासुर और सिंह से उनकी गौओं की रक्षा क्यों कर हो पाती ? इन बातों को वर्तमान गोभक्तगण भागवत में सदा सुनते रहते हैं तो भी उनसे गोरक्षा के नाम पर सात्विक दान नहीं किया जाता। वे यही समझे बैठे हैं कि उनके घर दो रुपया माह पर जो ब्राह्मण गोपाल सहस्र नाम का पाठ कर जाया करता है उसके पुण्य से गोरक्षा भी हो जायगी और उन्हें गोलोक का प्रवेश पत्र भी मिल जायगा। केवल मंत्र के पाठ से ही गोरक्षा हो सकती होती तो भगवान श्रीकृष्ण को अघासुर आदि से संग्राम नहीं करना पड़ता। इस बात पर गोपाल श्रीकृष्ण के भक्त तिलमात्र भी विचार नहीं करते।

गीता में गोपाल श्रीकृष्ण प्रभु भक्त अर्जुन से कहते हैं—

अपिचदासि पापभ्यः सर्व्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्व्वज्ञानल्पवेनैव वृजिन सन्तरिष्यसि ॥ 4-36 ॥

इस मंत्र का अर्थ यह है कि हे अर्जुन यदि तू घोर पापी बनकर पापार्णव में डूब रहा है तो उससे पार पाने के लिए तुझे ज्ञान नौका पर सवार होना चाहिए।

मध्यप्रदेश में इस समय प्रतिवर्ष गोवंश के लाखों प्राणियों का जो वध किया जाता है वही शिखा सूत्रधारी गोभक्तों के लिए घोर पापों का समुद्र है। उसमें शिक्षा सूत्रधारी मात्र डूब रहे। उससे पार पाने का उपाय भगवान ने बता रखा है। उसका पाठ गोभक्त लोग रोज करते है। पर उस उपाय को काम में नहीं लाते। उन्हें याद रखना चाहिए कि गीता का पाठ उन्हें भगवान के उपदेश का स्मरण भर दिखाता रहता है। उससे उन्हें लाभ और पुण्य तभी मिलेगा जब वे भगवान के उपदेश को कार्य का रूप देंगे।

उक्त मंत्र के पहले उसी अध्याय के तैंतीसवें मंत्र में भगवान कहते हैं—

श्रीमान् द्रव्यमयाद्यज्ञात ज्ञानमज्ञः परन्तप।
सर्व्वं कर्मा खिल पार्थ, ज्ञाने पति समाप्यते।

अर्थात् हे परन्तप पार्थ, चावल घी और शर्करादि द्रव्यों से जो यज्ञ किया जाता है, उससे ज्ञानयज्ञ बहुत श्रेष्ठ हितकर होता है क्योंकि जिस यज्ञ के करने में जितना ही ज्ञान अधिक होता है उसमें उतनी ही अधिक सफलता होती है।

तात्पर्य्य इस समय मध्यप्रदेश मे गोवध रूप जो घोर पाप और अत्याचार किया जा रहा है वह ज्ञाननौका पर बैठकर ज्ञानयज्ञ करने से ही दूर होगा। ज्ञान-नौका और ज्ञानयज्ञ का मतलब य । है कि मध्य प्रान्त के नगर-नगर और गाँव-गाँव में बसने वाले शिक्षा-सूत्रधारी मात्र में गवायुर्वेद की शिक्षा साहित्य और उपदेशकों द्वारा फैलाई जाय। स्थान-स्थान पर आदर्श गोशालाएँ खोलकर वहाँ उचित रूप से गोपालन कर लोगों को प्रत्यक्ष शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय। यही ज्ञानयज्ञ है। इसीसे मध्यप्रदेश में गोकुल की रक्षा और वृद्धि होगी। इसीसे मध्यप्रदेश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसान और मालगुजार तथा अन्य जनता सुखी होगी।

मध्यप्रदेश के साक्षर और सधन गोभक्त न तो सरकार की कृति पर ध्यान देते हैं और न अपने इष्ट देव गोपाल श्रीकृष्ण के उपदेशों पर ध्यान देते हैं। इसीलिए कहना पड़ता है कि मध्यप्रदेश में गोभक्तों का घाटा है।

मध्यप्रदेश में ऐसे कई धनवान हैं जो सरकार को प्रतिवर्ष अकेले हजारों और लाखों रुपया मालगुजारी जमा और इनकमटैक्स के रूप में दिया करते हैं। उनमें ऐसे भी अनेक हैं जो भगवान श्रीकृष्ण के राजभोज में प्रतिवर्ष हजारों रुपया खर्च किया करते हैं। ऐसे लोगों को गोपाल श्रीकृष्ण के नीचे लिखे हुए मंत्रों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

नच तस्मान मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥ 18-69 ॥
भविता नच में तस्मा दन्यः प्रियतरो भुचि ॥
अध्येष्यते च य इन्द्र धर्म्यं संवाद भावयोः
ज्ञानयज्ञेन तेनाहं मिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ 70 ॥

उक्त मंत्रों में गोपाल श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि इस समय और भविष्य में मेरा सबसे प्यारा वही है और होगा जो हमारे इस संवाद को पढ़कर ज्ञानयज्ञ करेगा।

खेद का विषय है कि आजकल लोगों ने गीता के पाठ को कर लेना भर ही ज्ञानयज्ञ मान लिया है। यदि ऐसा ही होता तो अर्जुन भी उसे सुनकर ज्ञानयज्ञ के फल के अधिकारी हो जाते। पर उनने वैसा नहीं किया। उनने भगवान के उपदेशों को सुनकर कहा कि भगवान मैं आपके उपदेशों को कार्य का रूप देता हूँ। (करिष्ये वचनं तव) गोपाल श्रीकृष्ण के प्रेमी पाठकों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे लोग गोपाल श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर गोवधरूपी पाप को बन्द करने के लिए ज्ञान-यज्ञ करके गोपाल श्रीकृष्ण के प्यारे बनें। उनकी प्यारी और हम पर अनंत उकारने वाली विश्वमावा गौओं के कुल के वर्तमान घोर आपत्ति से रक्षा करने के लिए सात्विकदान द्वारा किया हुआ ज्ञानयज्ञ ही समर्थ है। वही उपाय सर्व-प्रधान है। अन्य सब उपाय गौण हैं। आशा है कि मध्यप्रदेश के गोपाल श्रीकृष्ण के धनवान भक्त अर्जुन के नाईं 'करिष्ये वचनं तव' कहकर धनपण से गोरक्षा के लिए ज्ञानयज्ञ करने में मनसा वाचा कर्मणा लग जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण', अंक संख्या 4, भाग 2, 1927

वैश्यों का सनातनधर्म्म

वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमोदमः ।

—महाभारत

भारत की प्राचीन वर्णव्यवस्था का यथातथ्य रहस्य न जानने वाले उसकी उपेक्षा और निन्दा भले ही किया करें, पर है वह तत्वपूर्ण और विज्ञान-गर्भित। वह वैसी न होती तो आधुनिक पाश्चात्य जगत् के विज्ञान-युग में उसका आदर कभी नहीं होता। भारत के प्राचीन आर्यों की वर्ण व्यवस्था उनकी वर्तमान हिन्दू सन्तान के उपेक्षाजन्य अज्ञान के कारण, इस समय भारत में भले ही डांवाडोल और अनादृत की जा रही हो, पर वर्तमान पाश्चात्य जगत् में उसका यथेष्ट आदर सत्कार हो रहा है। वहाँ का एक जनसमूह जनता को वर्तमान समयानुकूल शिक्षा देने में लगा हुआ है, दूसरा देश की रक्षा में संलग्न है, तीसरा देश को पशु परिपालन और कृषि द्वारा धनधान्य सम्पन्न कर रहा है और चौथा उक्त तीनों की आज्ञानुसार उनकी सेवा में लगा हुआ है। इस प्रकार चार भागों में विभक्त हुई पाश्चात्य देशों की जनता, अपने-अपने विहित कर्म्मों को सानन्द कर अपने आपको तथा अपने देशों को समृद्धिशाली बनाने में निरन्तर संलग्न रहा करती है। यही तो प्राचीन आर्यों की वर्णव्यवस्था है। अत्यन्त खेद का विषय है कि हम वर्तमान भारतवासी अपने पूर्वजों की वर्णव्यवस्था का अनादर कर, वर्तमान विपन्नावस्था को प्राप्त हो गये हैं, तो भी हम लोग अपने दूरदर्शी संसारतत्वपारीण आर्य पूर्वजों के पीयूष पूर्ण उपदेशों का आदर कर अपना हित साधन करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। भारत के जिन वर्तमान शिक्षाधारी लोगों को, अपने हित से अणुमात्र भी परिचय हो, उन्हें उचित है कि वे अपने पूर्वज आर्यों की वर्णव्यवस्था का आदर करना आरम्भ कर दें। क्योंकि उसी से वे सुखी और समादृत हो सकेंगे।

ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए आर्यों ने जो श्रमविभाग नियत किया था, उसका वर्णन किसी और लेख में किया जायगा। आज इस लेख में वैश्यों के सनातनधर्म का उल्लेख कर उनसे प्रार्थना की जाती है कि अपने विज्ञान-मूलक धर्म का पुनरुद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भारत स्वरूप जीर्ण-शीर्ण नौका को बचा लीजिए, उसे भंवर में और अधिक समय तक पड़ी मत रहने दीजिए।

भारत के प्राचीन आर्य ऋषि महर्षियों ने वैश्यों के लिए जो कर्तव्य धर्म बताये थे उनका सार और निचोड़ नीचे के वाक्यों में पाया जाता है—

वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा।
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः।
अग्निहोत्रं परिस्यंदो दानाध्ययनमेव च।
विप्राणां स्वागतं त्यागों वैश्यधर्म्मः सनातनः॥

अर्थात् वैश्यों का यह सनातन धर्म है कि वे उन विज्ञानमूलक शास्त्रों का सदा अध्ययन करते रहा करें जिनसे उन्हें अपने गोधन की रक्षा और वृद्धि का ज्ञान प्राप्त होता रहे, जिनसे कृषि द्वारा भोज्यान्नों तथा वस्त्र तन्तुओं की, वर्तमान माँग के अनुसार उपज पैदा करने का ज्ञान प्राप्त होता रहे, जिनसे वर्तमान समयानुसार वाणिज्य सामग्री कला द्वारा बनायी जा सके। उक्त ज्ञान की प्राप्ति जिन ब्राह्मणों द्वारा हो सकती है उनका वे सदा आतिथ्य द्वारा आदर और दान द्वारा भरणपोषण करते हुए सन्मार्ग पर चला करें। साथ ही ईश्वराराधन में रत रह कर शम, दम सम्पन्न करें। बस, यही वैश्यों का सनातन धर्म है।

क्या कोई भी बुद्धिमान मनुष्य वैश्यों के उक्त सनातन धर्म में आपत्ति कर सकता है ? वे देश काल के बन्धन से मुक्त होने के कारण आज भी प्रशंसनीय और आदरणीय हैं।

भारत के वर्तमान वैश्य समाज ने जब से अपने उक्त सनातन धर्म का अनादर कर, दलाली को ही अपना पूज्य धर्म माना है तभी से भारत में गोवध की मात्रा बढ़ने लगी है, तभी से भारत की धरती की उर्वरा शक्ति क्षीण होने लगी है, तभी से भारत में शुद्ध और पवित्रगव्य पदार्थों के लाले पड़ने लगे हैं, तभी से भारत की शिक्षाधारी साधारण जनता भूख की यंत्रणावश, शिखा का त्यागकर विधर्मियों की संख्या बढ़ने लगी है। तात्पर्य वैश्यों के सनातनधर्म विमुख होने से उक्त सब आपत्तियों ने एक साथ भारत पर धावा कर दिया है। उस धावे से भारत की रक्षा करना अब भी वैश्यों के हाथों में है। वे अपने सच्चे धर्म को पहचानकर उसका आदर करना आरम्भ कर दें तो वे भारत का बहुत कुछ उद्धार कर सकते हैं।

कहना नहीं होगा कि इस समय भारत के अस्तित्व के मूल पर वैश्यों की जो भूल कुठाराघात कर रही है वह गोहत्या है। उसे रोकने का सबसे बढ़िया उपाय सही है कि भारत के सधन वैश्य लिमिट के तारों की आराधना से थोड़ा-सा समय बचाकर गवायुर्वेद का अध्ययन किया करें, गोपरिपालन पर प्रवचन सुना करें, अपने घर के मांगलिक उत्सवों पर गोसाहित्य का श्रेष्ठ और सात्विक दान किया करें, सुयोग्य और विद्वान ब्राह्मणों को यथेष्ठ आर्थिक सहायता देकर उनके द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के किसानों तथा ग्वालों में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किया करें। उनके ऐसा प्रबन्ध करने से उन्हें अपने धर्म सम्पादन का अक्षयपुण्य मिलेगा; उस पुण्य के प्रभाव से अवश्य ही गोलोक अधिकारी बनकर परमपद का सुख भोगेंगे। पर यह सब होगा तभी जब वे लिमिट के तार की माया से अपना पीछा छुड़ाकर विज्ञान-वेत्ता सज्जनों का स्वागत कर, उनसे गोपरिपालन की शिक्षा ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ करेंगे। उन्हें इस बात को ध्रुवसत्य मान लेना चाहिए कि इस समय वे जिस दलाली नामक व्यवसाय को कर सधन बने हैं वह व्यवसाय उनकी धनाढ्यता की दीर्घकाल तक रक्षा नहीं कर सकेगा। अत: उन्हें उचित है कि जब तक उन पर लक्ष्मी की कृपा बनी है, तब तक वे अपने सनातन धर्म का पुनरुद्धार कर अपनी नींव को सुदृढ़ कर लें और अपनी वर्तमान तथा भावी संतति के सुख सम्पादन के साधनों की नींव को सुदृढ़ कर देवें।

बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और दिल्ली आदि नगरों में वैश्यों ने पिंजरापोल खोल रखी हैं वे उनसे संतुष्ट होकर अपने सनातन धम्म विहित गोपरिपालन, कृषि तथा वाणिज्य की उपेक्षा नहीं करें। मेरे इस निवेदन का यह अभिप्राय नहीं है कि जो धनवान वैश्य इस समय खस की टट्टियों की आड़ में बैठे-बैठे टेलीफोन द्वारा लिमिट के तार की पूजा कर लाखों रुपया कमाया करते हैं वे स्वयं हल लेकर खेत जोतने को जाएँ। नहीं, मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि वे अपने धन की सहायता से वर्तमान किसानों, ग्वालों और वणिकों में विज्ञान-मूलक किसानी, गोपरिपालन तथा वाणिज्य की शिक्षा फैलाने का प्रबन्ध कर दें। उनके सम्प्रति इतना करने से उनके सनातन धर्म की रक्षा का श्रीगणेश हो जाएगा और उससे वे कल्याण के अधिकारी बन सकेंगे।*

---

* यद्यपि इस लेख की सभी बातों से हम सहमत नहीं हैं तथापि पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इसके गोसाहित्य सम्बन्धी विचारों पर ध्यान दें।

— **सम्पादक** (कल्याण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गोधन', अंक 4, वर्ष 3, 1927

मध्यप्रदेश नेतागण और गोपरिपालन

भारत का मध्यप्रदेश, भारत के अन्य प्रान्तों से पिछड़ा हुआ और गोंडवाना भले ही कहा जाता हो पर उसमें न तो कला कोविदों (बी० ए०) और कलाधिपतियों (एम० ए०) आदि की ही कमी है और न कीर्तिवुभुक्षित नेताओं की ही। नेतृत्व प्राप्त करने में जो लोग अपने बड़े बूढ़ों की गाढ़ी कमाई के धन को पानी की नाईं बहाते हैं उनकी भी कमी नहीं है। साथ ही उनकी भी कमी नहीं है जो कृपणता के कारण धन को अपना सर्वस्व माना करते हैं पर नेतृत्व खरीदने के समय धन का मोह छोड़कर उनकी आवश्यकता से अधिक मूल्य भी दे देते हैं। साधारण समय में नेताओं की संख्या का पता लगाना कुछ कठिन रहता है। पर म्युनिसीपालिटी, डिस्ट्रिक्टवार्ड, लोकलवार्ड, प्रान्तीय तथा दिल्ली की दोनों कौनसिलों के चुनाव के समय नेता पराभिलाषियों की संख्या बहुत सुगमता से जानी जा सकती है। चुनाव में जो धन-धर्म दोनों को खोकर पराजित हो जाते हैं उनका नाम दूसरे चुनाव तक बहुत कम सुना जाता है। ऐसे लोग इसी बात के परिचायक हैं कि वे केवल ख्यातप्राप्ति के लिए नेतृत्व प्राप्त करना चाहते हैं। जनता के सुख-दुख से उनके नेतृत्व का बहुत कम सम्बन्ध रहा करता है।

भारत में महात्मा गाँधी आदि नेताओं ने जब से स्वराज्य का आंदोलन आरम्भ किया है। तब से उस दल के अनुयायी और नेता बनने की उत्कट इच्छा उन लोगों में भी बहुत प्रबल हो गयी है जो राजनीति के क्षेत्र में अभी अजात व्यजन ही हैं। ऐसे नेता देश का और उसकी जनता का कितना हित कर सकते हैं, इसका अनुमान अनुभवी लोग बहुत सहज में ही कर सकते हैं।

अन्य प्रान्तों की नाईं मध्यप्रदेश के नेतागण भी प्रधान रूप से तीन भागों में विभक्त हैं। यथा (1) राजनीतिक नेता, (2) सामाजिक नेता और (3) आर्थिक नेता। आज इस लेख में मैं अन्तिम आर्थिक नेताओं के विषय में ही अपने विज्ञ पाठकों की सेवा में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। मेरा अनुमान है कि विवेकी पाठकगण मेरे विचारों पर मनोनिवेशपूर्वक मनन कर आवश्यकतानुसार नेताओं की सहायता और सेवा करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों तो देश की भलाई के लिए उक्त तीनों नेताओं की अत्यन्त आवश्यकता है। पर उन तीनों नेताओं की आवश्यकता सर्वप्रथम है। किसी देश का उत्थान और पतन बहुलांश में उसकी आर्थिक दशा पर ही अवलम्बित रहा करता है। भारत के सब श्रेणी के नेता संभवतः इस बात में सहमत हैं कि भारत की आर्थिक दशा दिनों दिन दीन हीन होती जाती है। भारत में भुखमरों की संख्या वर्षा काल के कीट पतंगों की सदृश बढ़ती जाती है। इस दुरवस्था का एकमात्र नहीं तो प्रधान कारण यही है कि भारतीय नेताओं में उनकी संख्या बहुत थोड़ी है जो भारतीय जनता के अर्थ स्रोत को भली-भाँति अधीतकर उसके उत्कर्ष के उपायों को ढूँढ़ निकालने का कार्य साधक यत्न करते हों।

संसार में जब से सभ्यता का जन्म हुआ है और उसकी रक्षा के लिए इतिहास की योजना की गई है तब से यह बात निरंतर प्रतिपादित होती जा रही है कि देश के उत्थान में उसकी कृषि और कला सदाशीर्ष स्थानीय रहा करती है। अर्थात् जो देश वर्तमान समय की माँग के अनुसार अपनी कृषि तथा कलाजन्य उपज कर उन्नति करता जाता है वही संसार में अपनी सभ्यता तथा उत्कर्ष की रक्षा कर सकता है। अपनी कृषि और कला की उपेक्षा करने वाले देश का अधतःपात अवश्यम्भावी हो जाता है। इस समय जो लोग नेता पद का उपभोग कर रहे हैं वे उन्नत देशों की कृषि तथा कला के इतिहास को पढ़ने का कष्ट उठावें तो उन्हें मेरा निवेदन बहुत सुगमता के साथ प्रत्यक्ष हो जाएगा।

यूरोप, अमेरिका, रसिया और जापानादि उन्नत देशों का वर्तमान इतिहास तार स्वर में इस बात की घोषणा कर रहा है कि उन देशों ने अपने देशों की कृषि तथा कला की उन्नति करके ही अपने देशों को स्वावलंबी बनाया है और बनाते जाते हैं। भारत के नेता और कुछ न करें केवल वहाँ के कृषि के इयर बुक और कला कौशल्य की गणना के विवरणों को ही पढ़कर देखें तो उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि उन देशों के नेताओं ने अपने देश की मानमर्यादा की रक्षा के हेतु अपने देश की कृषि तथा कला की किस प्रकार उन्नति की है। इतनी उन्नति करने पर भी अभी वहाँ के कोई-कोई देश अपने भोज्यान्नों के लिए किसी अंश में परावलंबी बने हुए हैं। बहुत सम्भव है कि उनका यत्न उन्हें सुखी करेगा।

भारत के आदिम निवासी आर्यों की दूरदर्शिता और उनकी कृषिकल प्रबलता के कारण भारत भोज्यान्नों के लिए कभी परावलंबी नहीं हुआ। वह अपनी आवश्यकता के अनुसार अन्न वस्त्र अपने घर ही पैदा करता रहा। इतना ही नहीं किन्तु बचे हुए अन्न वस्त्रों को विदेशियों के हाथ बेचकर सधन भी रहा। खेद का विषय है कि जिस कृषि और कला की उन्नति के कारण अतीतकाल में भारत संसार भर का आदर पात्र हुआ उनकी ओर भारत के वर्तमान नेताओं का ध्यान बिन्दु मात्र भी नहीं है। इतना ही नहीं किन्तु उन्हें उसका स्मरण दिलाया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तब भी वे अपने प्रखर तर्क द्वारा उसका मण्डन करने की अपेक्षा खण्डन करने में ही अपना गौरव और औरस कर्त्तव्य कर्म्म की प्रतिष्ठा मानते हैं।

अकेले भारत के लिए नहीं किन्तु समूचे संसार के देशों के लिए वह व्यापक सिद्धान्त है कि कृषि की उन्नति और सफलता उस देश के गोधन के उत्कर्ष पर बहुत कुछ अवलंबित हैं। पाश्चात्य जगत का वर्तमान गोसाहित्य और गवायुर्वेद मेरे इस कथन का नि संकोच भाव से समर्थन कर रहे हैं। इतना सब होने पर भी भारतीय नेता, भारतीय गोधन की भर पेट उपेक्षा कर रहे हैं। यह भारत के निकटस्थभावी अमंगल का अवांछनीय दुष्परिणाम द्योतक भयप्रद चिन्ह है।

भारत और भारत की प्रान्तीय सरकारें इस बात को जानती हैं कि भारत की कृषि तथा गोधन दिन प्रतिदिन दीन-हीन होता जाता है, अतः अपने स्वार्थ के हित की रक्षा के अभिप्राय से वे उनको रक्षा और उन्नति के लिए चेष्टा करती रहती हैं। हमारे यहाँ प्रभु अंग्रेजों ने भारतीय कृषि और गोधन की दुरवस्था अनुभव करके ही प्रान्तीय तथा दिल्ली की दोनों राजकीय परिषदों में तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में जमींदारों और किसानों के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक रखी है। खेद का विषय है कि कृषकों के प्रतिनिधि निर्वाचन के पश्चात अपने को राजनीतिक नेता ही मानते हैं। वे अपने निर्वाचकों के हितों को सर्वथा भूल जाते हैं। रायल कृषि कमीशन भारत में भ्रमण कर इस बात का पता लगा चुका है कि भारत उन्हें और कब तक भोज्यान्न तथा कला-पूरक द्रव्य देता रहेगा। भारत से उनकी माँग पूरी होने के पहले वे लोग उन द्रव्यों को अपने देश में अपनी माँग के अनुसार पैदा करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर भारत के नेता इस विषय में घोर उपेक्षा कर रहे हैं। उनकी यह उपेक्षा जितनी निंद्य है उतनी नहीं किन्तु उससे कहीं अधिक हानिप्रद है। क्या यह कुछ कम निन्दा की बात है कि भारत एक ओर तो अपने कला-कोविदों की संख्या प्रतिवर्ष बैठाता जाता है और भारतीय कलाओं को चौपट करता जाता है।

मध्यप्रदेश के सधन और निर्धन मालगुजारों तथा किसानों में गोपरिपालन विषयक घोर अज्ञान का अनुभव कर मैंने उस अज्ञान को हटाने के अभिप्राय से एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी है। मध्यप्रदेश के कृषि तथा शिक्षा विभाग के डाइरेक्टरों ने उस पुस्तिका की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर उसके प्रचार को स्वीकृत किया है। मैंने उस पुस्तिका की एक-एक प्रति हिन्दी मध्यप्रान्तीय लेजिसलेटिव कौनसिल के अधिकांश सभ्यों के पास जो कि हिन्दी मध्यप्रदेश के कृषकों की ओर से निर्वाचित होकर कौनसिलों में गये हैं, निम्नलिखित पत्र के साथ भेजी।

मेरा अनुमान है कि आपके समान भारत हितचिन्तक को इस बात का ज्ञान अवश्य ही होगा कि भारत के जीवन-सर्वस्व भारतीय गोधन का वध द्वारा नाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिवर्ष भीषण रूप धारण करता जाता है। भीषण गोवध का परिणाम यह हो रहा है कि भारतीय कृषकों को अपनी धरती जोतने के लिए न तो पर्याप्त संख्या में बैल ही मिलते हैं और न धरती की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए यथेष्ट खाद ही मिलती है। उक्त दोनों कमियों का परिणाम यह हो रहा है कि भारतीय जनता के बड़े भारी समूह को न तो पेट भर अन्न ही मिलता है और न तन भर कपड़ा ही।

गोबध की वृद्धि के अनेक कारण हैं। उनमें शिखाधारी जनता का गोपरिपालन विधि को यथावत्न जानना सर्वप्रधान है। अतः जनता में गोपरिपालन विधि की मोटी-मोटी बातों का प्रचार करना अत्यावश्यक है।

गोपरिपालन की प्रधान-प्रधान बातों का मध्यप्रदेश के किसानों और मालगुजारों में प्रचार करने के अभिप्राय से इसके साथ भेजी हुई पुस्तक लिखी गयी है। मध्यप्रदेश के कृषि तथा शिक्षक विभाग के डायरेक्टरों ने इसकी प्रशंसा कर इसका प्राथमिक पाठशालाओं में प्रचार करना स्वीकृत किया है।

आपसे प्रार्थना है कि आप मध्यप्रदेश की अनुशासक परिषद में यह प्रस्ताव या उसका समर्थन करें कि मध्यप्रदेश की सरकार इस पुस्तक की प्रतियाँ खरीदकर रसीद बहियों के अनुसार पटवारियों को इसकी प्रतियाँ साढ़े सात पाई प्रति के हिसाब से देवें, और उनसे कहें कि वे इसे अपने हलके के साक्षर मालगुजार और किसानों को एक पाई में बेचा करें। और साथ ही जब वे तथा उनके रे० इ० दौरे पर जाएँ तो उसका पाठ ग्रामीण लोगों को सुनाया करें।

उक्त काम के लिए ल्यांडरे कार्ड के डायरेक्टर समया भाव का प्रश्न उपस्थित करें तो उनसे कहा जाए कि दौरे पर जाने वाले पटवारियों और रे० इ० को इस काम के लिए आवश्यकता से अधिक समय मिल सकता है। और वे लोग इस काम को किसानी विभाग के कर्मचारियों से कहीं अधिक सुगमता तथा सरलता के साथ कर सकते हैं।

आशा है कि आप मेरी इस प्रार्थना को अपने औरस कर्त्तव्य कर्म्म का प्रधान अंश समझकर इसका आदर करेंगे।

कौनसिल चुनाव के समय नेता लोग निर्वाचकों और उनके मित्रों की जितनी चिन्ता और चाह करते हैं उसका न्यूनातिन्यून अंश भी किसी सभ्य ने उक्त पत्र के विषय में प्रदर्शित नहीं किया तब सबके नाम स्मृतिदायक पत्र (रिमाइंडर) पुनः भेजे गए उन्हें पाकर दो एक सभ्यों ने उत्तर दिए। शेष ने फिर भी उत्तर नहीं दिए। जिस कृषि के भरोसे आज भी भारत किसी प्रकार अन्न पा रहा है जिन अबोध कृषकों की कृपा से उनके प्रतिनिधि कौनसिल के स्वर्गोपम सुखों का उपभोग कर रहे हैं उनकी नेतागण जिस प्रकार उपेक्षा कर रहे हैं; वह उन्हीं को शोभा देती है। इससे अधिक उनके विषय में और क्या लिखा जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन दो एक सज्जनों ने उत्तर दिए हैं उनकी युक्तियों का वह सार है हमारे किसान निरक्षर और निर्धन हैं अत: वे पुस्तकों को न तो पढ़ ही सकते हैं और न निर्धनता के कारण उनमें लिखी हुई बातों को काम में ही ला सकते हैं। किसी-किसी कला कोविद (बी० ए०) सदस्य ने तो यह लिख दिया है कि हमारे किसान कृषि और गोपालन के चूडान्त पण्डित हैं। पर धन हीनता के कारण बहुरे कुछ कर धर नहीं सकते।

मध्यप्रदेश की राजपरिषद को जो कृषक प्रतिनिधि इस समय सुशोभित कर रहे हैं उन्हें सम्भवत: यह बात विदित ही होगी कि मध्यप्रदेश में और अन्यत्र भी दरिद्र माता-पिता के ऐसे कई पुत्र पाये जाते हैं जो पुस्तकों को पढ़कर ही बी० ए०, एम० ए० बने हैं और इस समय सुख से अपना व्यक्तिगत जीवन बिता रहे हैं। पुस्तकों के प्रभाव से वे उक्त सुख पा रहे हैं तो हमारे निर्धन किसान उनसे क्यों लाभ नहीं उठा सकेंगे? उन्हें अपने इस अनिष्ट तर्क पर पुनरपि विचार करना चाहिए।

शिक्षा प्रभाव से जब सरकार के कुत्ते, बन्दर, हाथी, घोड़े और व्याघ्र तक अच्छे-अच्छे काम करना सीख जाते हैं, तब हमारे किसान अपने पेट की रोटी कमाने के काम की उत्तमता को क्यों नहीं सीखेंगे? क्या वे उक्त पशुओं से भी गए बीते हैं? कदापि नहीं। किसान लोग अपने प्रतिनिधियों की उक्त तर्क परम्परा को समझ जाएँगे तो बहुत संभव है कि वे ऐसे तर्क तारानामों को अपनी प्रतिनिधि बताने की भूल की पुनरावृत्ति कभी नहीं करेंगे।

क्या मध्यप्रदेश के सभी मालगुजार और किसान निर्धन हैं जो विज्ञानमूलक कृषि या गोपरिपालन नहीं कर सकते। नहीं, ऐसी बात नहीं है। मध्यप्रदेश में अभी ऐसे कई मालगुजार और किसान हैं जो नेताओं द्वारा समझाए जाएं तो विज्ञान-मूलक कृषि और गोपरिपालन को भली-भाँति कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में धन अभाव का थोथा बहाना कहाँ तक युक्ति संगत है, उस पर यध्यप्रदेश के किसानों के कौनसिल प्रतिनिधियों को पुनः मननपूर्वक विचार करना चाहिए।

जो लोग रोटियों के लिए रोया करते हैं उन्हें रोटियाँ उचित उद्योग करने से मिलती हैं या रोटी के नाम से रोते रहने से मिलती हैं। इस प्रश्न पर भी मध्य-प्रदेश के किसान प्रतिनिधियों को सम्यक् विचार करना चाहिए।

मेरे उक्त निवेदन का सार और तत्व यही है कि मध्यप्रदेश की जनता को अपनी वाक्पटुता के जाल में फँसाकर जो लोग प्रान्तीक कौनसिल म्युनिसीपालिटि डिस्ट्रिक्ट कौनसिल और लोकल बोर्डों में उनके प्रतिनिधि बनकर गए हैं। उन्हें उचित है कि वे मध्यप्रदेश की कृषि तथा गोधन की रक्षा और वृद्धि के भी कुछ उपाय स्वयं सोचें। जिन उपायों को सरकार लाभदायक स्वीकृत कर चुकी है, जिनसे सभ्य संसार लाभ उठा रहा है उन्हें कार्य का रूप देने के लिए सरकार को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण दिलावें और तदर्थ उसे बाध्य करें।

जो बी० ए०, एम० ए० आदि म्युनिसीपालिटियों में डिस्ट्रिक्ट कौनसिलों तथा लोकल बोर्डों में नागरिक तथा ग्रामीण प्रजा के प्रतिनिधि होकर गए हैं उन्हें उचित है कि वे यूरोप और अमरिकादि के अपने समकक्ष सभ्यों के कर्त्तव्य कर्म्मों की पुस्तकों को मँगाकर पढ़ें और उन्हें देखकर अपने औरस कर्त्तव्य कर्म्मों से परिचय प्राप्त करें और तदनुसार कुछ ठोस काम कर अपने प्रतिनिधियों की भलाई करना भी सीखें। मध्यप्रदेश की म्युनिसीपालिटी और डिस्ट्रिक्ट कौनसिलों के जो वर्तमान सदस्य गोपरिपालन की तथा कृषि की शिक्षा के प्रचार की उपेक्षा कर रहे हैं उनका उक्त संस्थाओं में रहना वांछनीय नहीं है किन्तु वह उनके निर्वाचकों को हानिप्रद भी है।

मध्यप्रदेश के नेताओं की कृषि गोपरिपालन विषय उपेक्षकों देख मुझे तुलसीदास जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं।

तुम आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग ये खोजन आए।।

—किष्किधा काण्ड

प्रान्तीय और दिल्ली की कौनसिलों में गए हुए प्रतिनिधियों के भाषणों को पढ़ के गवामिषभोजी और चमड़े के व्यापारी कहते होंगे कि जब तक ये इस बकवाद में लगे हैं तब तक हम सानन्द भारत के गोधन को लूटते रहेंगे। न जाने हमारे नेताओं को अपने अधीनस्थ ठोस हित के साधन का ज्ञान कब होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 24 जनवरी 1930

स्वधर्म-निष्ठा

स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

—गीता 3/35

संसार में जब इतिहास का जन्म हुआ है, तब से वह तार स्वर से इस बात की घोषणा कर रहा है कि जिस समय जिस देश में जिस सज्जन द्वारा, उसकी, उसके कुटुम्ब की और उसके देश की जो भलाई या उन्नति हुई है, उसकी सफलता का सबका सब श्रेय उसकी स्वधर्म-निष्ठा को ही है। तात्पर्य स्वधर्मनिष्ठ हुए बिना कोई मनुष्य उस काम को कर ही नहीं सकता जिससे बहुत जनों को सुख मिलता है है और उससे उनका बहुत हित होता है।

इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की श्रेष्ठता को समझाते हुए गोविन्द श्रीकृष्ण अपने परम प्रिय सखा और शिष्य अर्जुन से कहते हैं—

श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

अर्थात् सर्वतोभावेन पूर्ण पर धर्म की अपेक्षा कुछ अंश में ऊन अपना स्वधर्म का सम्पादन करते-करते शरीरपात हो जाय तो वह अच्छा है। पर धर्म तो सदा भयदायक ही है।

कहना नहीं होगा कि अर्जुन ने उक्त उपदेश का यथार्थ मर्म समझ कर अपने क्षत्रिय स्वधर्म का ही अनुष्ठान किया और उसीसे, उसे उसका तत्कालीन एहिक कल्याण प्राप्त हुआ।

आज दिन भारत में न जाने कितने लोग भगवद्गीता का पाठ प्रतिदिन स्वयं करते रहते हैं, वा किराये पर कराते हैं, पर उनमें उक्त उपदेश का रहस्य समझकर तदनुसार अपने वर्णाश्रमधर्म का पालन करनेवाले कितने हैं? अन्य वर्णाश्रमी लोगों की बात को छोड़कर आज यहाँ वैश्य धर्मावलम्बी गीता भक्तों की ही चर्चा की जाती है। प्रार्थना है कि जिस शुद्ध भारत हित की भावना से प्रेरित होकर यहाँ वैश्य भाइयों का चित्त उनकी स्वधर्म-निष्ठा की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा की जाती है, उसी शुद्ध और पवित्र भावना से वे मेरी प्रार्थना पर गम्भीर और उदार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव पूर्वक विचार करेंगे और विचारान्त में अपने स्वधर्म का बड़ी रुचि और उत्सुकता के साथ अनुधावन करेंगे। क्योंकि उसके स्वधर्मानुष्ठान पर भारत का बहुत हित अवलम्बित है।

गीतागायक गोपाल श्रीकृष्ण के पूर्व जिन ऋषि महर्षियों ने श्रम विभाग का बटवारा किया है उनमें वैश्यों के स्वधर्म में, गौपरिपालन, कृषि और वाणिज्य को प्रधानता दी है।

(गोरक्षां कृषि वाणिज्यं कुर्या वैश्यो यथाविधि।)

वैश्यों की इसी धर्म की पुष्टि करते हुए गोपाल श्रीकृष्ण ने उसकी पुनरावृत्ति की है और कहा है—

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।

—गीता 18/44

जिन धनवान वैश्यों ने इस समय, बड़े-बड़े गोविन्दभवन बनवा रखे हैं, उनके राजभोग में प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करते रहते हैं, वा प्रतिवर्ष उस दान में बड़ी-बड़ी रकमें दिया करते हैं जिसकी सहायता से वृत्तिहीन युवकों की संख्या बढ़ती जाती है, वा नाना प्रकार की कौंसिलों में प्रवेश पाने के लिए और पा जाने पर उनमें शून्य परिणामी प्रस्ताव उपस्थित करने में अपने बड़े-बूढ़ों की कमाई को समुद्र पर वर्षा करने की नाईं खर्च करते जाते हैं, वे वैश्य गोपाल श्रीकृष्ण के उक्त उपदेश का बिन्दुमात्र भी आदर करते तो इस वर्ष संसार भर को अन्नदान देनेवाले भारत को नव करोड़ रुपयों का गेहूँ कभी नहीं खरीदना पड़ता!!! भारत के लिए यह दुरवस्था इसीलिये उत्पन्न हो गयी है कि भारत के वैश्यों ने अपने स्वधर्म के अनुष्ठान की सर्वथा उपेक्षा कर रखी है। उन लोगों ने स्वधर्म का पालन करने की उपेक्षा ही नहीं की है किन्तु स्वधर्म के विपरीत आचरण करना आरम्भ कर दिया। वैश्यों के स्वधर्म का प्रथम पाद गोपरिपालन है। भारत के वैश्यों की यह स्वधर्म उपेक्षा भारत को बहुत हानि पहुँचा रही है। जो धनवान वैश्य अपने स्वधर्म की, गोपरिपालन की उपेक्षा कर भारत को स्वराज्य सम्पन्न बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, उन्हें, इस बात को ध्रुव सत्य मान लेना चाहिए कि वे जब अपने स्वधर्म का—गोपरिपालन आदि का पूर्ण रूप से परिपालन करेंगे, तभी वे स्वराज्य प्राप्ति के साधन बन सकेंगे। जब तक वे अपने स्वधर्म की उपेक्षा करते रहेंगे, तब तक स्व-राज्य को निकट लाने की अपेक्षा, उसे दूर करने के ही कारण होते रहेंगे।

मेरा उक्त कथन धनवान वैश्यों को कटु अवश्य लगेगा। पर है वह सत्य प्रपूर्ण जिस आदरभाव और श्रद्धा की दृष्टि से थोड़े से धनवान् वैश्य, इस समय, गीता प्रचार में पिंजरापोलों के संचालन में अंग्रेजी विद्या के प्रचार में, चर्खा तथा खद्दर के प्रचार में, अछूतों के उद्धार में नाना प्रकार की कौंसिलों की मेम्बरी की प्राप्ति तथा उनके संचालन में धनखर्च का रहे हैं, उसी प्रकार उन्हें गोपरिपालन की शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रचार में भी मुक्तहस्त होकर धन खर्च करना चाहिए। क्योंकि यही उनका स्वधर्मानुष्ठान है। जो वैश्य लोग पिंजरा-पोलादि संस्थाओं का संचालन स्वयं किया करते हैं और अपनी धनाढ्यता की सहायता से तदर्थ धन भी बटोर लेते हैं, उन्हें अब इस संकुचित भावना को छोड़ देना चाहिए कि वे अपनी संस्थाओं में जिन थोड़े से विकलांग प्राणियों की केवल प्राणरक्षा किया करते हैं, वही यथार्थ गोरक्षा है और उसी से समूचे भारत का वह हित हो सकता है जिसके लिए गोपाल श्रीकृष्ण ने स्वयं-गोरक्षा की थी और उसका वे उपदेश दे गये हैं। पिंजरापोलादि संचालकों को अब अपनी गोभक्ति के क्षेत्र को बढ़ाकर, उसकी सीमा भारतव्यापिनी नहीं तो अपने जिले और प्रान्त के प्रत्येक गाँव में रहनेवाले किसान तक अवश्य ही बढ़ानी चाहिए। गोपरिपालन की वर्तमान प्रणाली इतनी दूषित हो गयी है कि उसके कारण भारत का गोवंश नष्ट होता चला जा रहा है। अतः गोपरिपालन की शास्त्रीय शिक्षा का प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक है। उसका प्रचार किये बिना गोरक्षा कर लेना असम्भव है। गोपरिपालन शिक्षा के प्रचारार्थ स्वराज्य की बाट जोहना बड़ी मूर्खता का काम है। क्योंकि स्वराज्य प्राप्त करना उतना सहज नहीं है जितना अपने गोधन का सुधार कर उसे लाभदायक बनाना सुलभ और सुन्दर है और उसकी सहायता से स्वराज्य की प्राप्ति को सुलभ बनाना सुकर और हमारे हाथों में है।

भाव यह है कि इस समय भारत के धनवान वैश्यों का यह स्वधर्म है कि वे गोपरिपालन की शिक्षा से अपना धनबल, बाहुबल, और प्रज्ञाबल पूर्ण रूप से लगाकर भारत को सुखी बनाने का पुण्य प्राप्त करें। जिन वैश्य सज्जनों के हाथ में पत्र-पत्रिकाओं का संचालन और सम्पादन भार है, वे अपने स्वधर्म की निष्ठा का परिपालन बहुत सुगमता से कर सकते हैं। वे अपने पत्र के प्रत्येक अंक में गोपरिपालन के शास्त्रविहित ज्ञान की आवश्यकता पर एक लेख छापकर उसका आग्रह पाठकों तक बहुत सफलता से पहुँचा सकते हैं। अन्यान्य सम्पादकगण भी भारत हित के इस महत्त्वपूर्ण काम को कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 14 अगस्त 1931

समय पर चूकना

काहानिः समयच्युति —सुभाषित

इस संसार में सफलता उसी कार्यकर्ता को मिलती है जो समय की अनुकूलता को प्राप्त कर काम करता है। जो समय की आवश्यकता का अनादर कर, अपनी मनमानी करता है वह बद्धमूल चक्रवर्ती राजा होने पर भी नष्ट हो जाता है। कैकेयी रानी बद्धमूल चक्रवर्ती राजा की रानी होने पर भी अपने अभीष्ट को इसलिए प्राप्त नहीं कर सकी कि उसने अपने सुयोग्य हित-मित्रों के परामर्श का समय पर अनादर कर एक तुच्छ दासी के दुराग्रह का आदर कर ठीक समय पर बड़ी भयंकर चूक की। उसकी चूक का परिणाम स्वयं उसके लिए और उसके निकट सम्बन्धियों के लिए बहुत दुखदायी हुआ। राजा जयचन्द्र ने समय पर जो चूक की उसका परिणाम आज समूचे भारत को भोगना पड़ रहा है। तात्पर्य समय की चूक बहुत हानिकारक और दुखद हुआ करती है। एक समय की चूक से चकनाचूर होकर नष्ट-भ्रष्ट होता है तो दूसरा समय की चूक को समझने की चेष्टा कर आप स्वयं चूक के चंगुल में जा फंसता है और दुखी होने पर दैव को कोसता है पर अपनी अज्ञता के लिए स्वयं लज्जित नहीं होता।

इस समय समूचा भारत जिस संकट और राष्ट्रीय अपमान की चक्की में पिसा जा रहा है वे उसके तत्कालीन सूत्रधारों की समय की चूक के ही दुष्परिणामों के ही कुफल हैं। यह कोई बात नहीं है कि समय की चूक को समझनेवाले कोई सज्जन समय पर नहीं होते। रावण जिस चूक को कर रहा था, उससे उसे बचाने के लिए विभीषण प्रस्तुत थे, दुर्योधन जिस चूक को करने जा रहा था उससे उसकी रक्षा करने के लिए संसार तत्वपारगामी श्रीकृष्ण और षट्प्रज्ञ विदुरजी विद्यमान थे। पर उनकी एक बात भी रावण और दुर्योधन ने नहीं मानी। दैववादी लोग रावण और दुर्योधन के दुराग्रह का उनकी समय की चूक का सब दोष दैव के मत्थे मढ़ते हैं और वस्तु-स्थिति के ज्ञात लोग उनकी चूक का दोष उनकी स्वार्थपरता और गण्ड मूर्खता के मत्थे-मढ़ते हैं। दोष किसी के भी मत्थे मढ़ा जाय पर है वह समय की चूक का ही दुष्परिणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय प्रकृति के भिन्न-भिन्न तत्त्वों के गुण-धर्मों का पता लगाने का एकाधिकार (ठेका) मानों पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने ही ले रखा है। वे नित उठ नये नये आविष्कार करते जाते हैं। उनके आविष्कार उनके देशों की श्रीवृद्धि करते जाते हैं। भारत के राजा महाराजा जमींदार और सेठ साहूकार आदि अनेक धनवान लोग पाश्चात्य देशों के विभव विस्तार को देखने के लिए जाया करते हैं। वहाँ उन आविष्कारों से सुख प्राप्त करने में वे लोग अपने किसानों तथा बड़े-बूढ़ों की गाढ़ी कमाई के धन को फूँककर ही नहीं लौटते किन्तु ऋणग्रस्त होकर भी लौटते हैं। पर वे अपने साथ इस भावना को कभी नहीं लाते कि यहाँ से लौटकर हम भी अपने देश के विद्वानों को आर्थिक सहायता देकर ऐसे-ऐसे आविष्कार करावें और उनसे अपने देश को भी सम्पन्न करें। यह उनकी समय की चूक का ही फल है। पाश्चात्य जगत के भिन्न-भिन्न देशों के लोगों ने अपने गोवंश का सुधार और उत्कर्ष आशातीत मात्रा में किया है। भारत के देशी राज्यों के अनेक राजा-महाराजा वहाँ के गव्य पदार्थों का सेवन कर बाल-बाल खुश हो जाते हैं। पर आज तक यह नहीं सुना गया कि अमुक राजा वा महाराजा ने वहाँ के अमुक वंश की इतनी माध्वी गौओं को भारत में लाकर अपने राज्य में उनका वंश विस्तार किया है वा उनकी परिपालन प्रणाली का अनुकरण कर अपने राज्य के गोवंश का सुधार इस मात्रा तक किया है। हाँ, यह बात जब तब सुनने में आती है कि अमुक राजा साहब इतने लाख रुपयों के कुत्ते खरीद लाये हैं!!! इन घटनाओं को देखकर 'गुणना हिरानो गुण ग्राहक हिरानो है।' कवि की इस उक्ति का ही बार-बार स्मरण होता है। भारत में इस समय भी बहुत गुणी हैं। पर उदार सहायक की यथेष्ठ आर्थिक सहायता के अभाव में उनके सब गुण मिट्टी होते जाते हैं।

मैं आज कई वर्षों से इस बात का आन्दोलन कर रहा हूँ कि भारत के वर्तमान सपूत भारत के जीवन धन गोधन की घोर उपेक्षा कर भारत की जड़ को खोखली करते जा रहे हैं। अब तो मुझे यही विश्वास होने लगा है कि मेरा समूचा आन्दोलन अरण्यरोदन ही हो रहा है। मेरे गोपरिपालन सम्बन्धी लेखों को मनस्वी भारतवासी पढ़ते ही नहीं। यदि वे उनको पढ़ते होते तो मेरे पास अनेक नहीं तो इने-गिने उत्साही सज्जनों के पत्र इस आशय के अवश्य ही आते कि हम आपके कथन के अनुसार भारत के जीवन सर्वस्व भारतीय राजा हरिश्चन्द्र और शिवि के समान अपना सर्वस्व खर्च कर भारत भर में शास्त्र-विहित गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार कर गोवंश का सुधार करने के लिए उद्योग करने को प्रस्तुत हैं। ऐसे एक भी उत्साही और उदार धनवान गोभक्त का पत्र मेरे पास नहीं आया। हाँ, ऐसे दो एक कीर्तिलोलुप समर्थ कृपणों के पत्र अवश्य आये हैं जिनमें उन लोगों ने मेरे प्रयत्न की बहुत प्रशंसा की और यह परामर्श दिया है कि आप अपने आन्दोलन को चलाते रहिए। पर यह पूछने की किसी ने कृपा नहीं की कि उस आन्दोलन के चलाने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको यदि आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो तो सूचित कीजिए हम उसे पूरी करेंगे।

मैंने इस समय जो गो-साहित्य लिखा है वह इसी अभिप्राय से लिखा है कि उसके प्रचार से किसानों में गोपरिपालन के आरम्भिक विज्ञान का प्रचार हो और धनवान गोभक्तों तथा भारत भक्तों में उसके प्रचार का उत्साह उत्पन्न होकर उन्हें उसके प्रचार में लगा दे। इस काम के करने से गोपरिपालन के आरम्भिक काम का श्रीगणेश बहुत सुगमता से हो सकता है। पर खेद है कि मेरा यह अभिप्राय उक्त सज्जनों की समझ में नहीं आता यह समय पर चूकने की प्रवृत्ति का ही दुष्परिणाम है।

यह बात बहुत सन्तोष की है कि इस समय भारत का हित करने की बात बहुतेरे समर्थ भारतवासियों के जी में पैदा हो रही है और वे बहुतेरी हानियाँ और कष्ट भी उठाने लगे हैं। साथ ही यह बात बहुत ही खेद की है कि जिस वार्ताधर्म को गोपरिपालन, कृषि और वाणिज्य को उन्हें प्रथम पुष्ट करना चाहिए उसकी वे उपेक्षा कर रहे हैं। उनकी धारणा है कि वे स्वराज्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपने वार्ताधर्म को सम्भाल लेंगे। पर यह धारणा समय पर चूक करने के समान ही दुःखद है। समय पर चूकने के समान हानिप्रद अन्य कोई बात नहीं है। समय पर चूकने से पछताना भर हाथ लगता है। लाभ कोई नहीं होता। अतः समझदार और समर्थ भारतवासियों का इस समय यही कर्तव्य धर्म है कि वे मनसा-वाचा और कर्मणा से वार्ताधर्म की शिक्षा का प्रचार कर भारत को उन्नत करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 29 मई 1931

गोवंश से लाभ

[1]

गावो विश्वस्य मातरः । —महाभारत

मनुष्य प्राणी को जब से आविष्कार करने की शक्ति प्राप्त हुई है, तब से उसने मानव जाति के लिए जितने हितप्रद आविष्कार किये हैं उन सबमें गोवंश की उपकार परम्परा का आविष्कार शीर्ष स्थानीय है। बड़े सन्तोष, अभिमान और गौरव का विषय है कि इस समय इस संसार में जितने देश वर्तमान हैं, उन सबमें भारत की सभ्यता सबसे अधिक प्राचीन है। भारत के आर्य्य विद्वानों ने गोवंश से होने वाले लाभों का आविष्कार ऋग्वेद काल में ही कर लिया था। ज्यों ही उन्हें गोवंश के लाभों का ज्ञान हुआ त्योंही उन्होंने उसके परिपालन के लिए ऐसे-ऐसे नियम बनाये जिनसे उनके लाभों की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। बाल्यावस्था में बालक के शरीर की रक्षा, वृद्धि और स्वास्थ्य लाभ के लिए जिन द्रव्यों की आवश्यकता हुआ करती है, वे सब उसे जिस प्रकार उसकी माता के दूध में मिलते रहते हैं उसी प्रकार मनुष्य को अपने जीवन में, उसे सफल और सार्थक बनाने के लिये जिन द्रव्यों की आवश्यकता हुआ करती है वे सब द्रव्य उसे जीवन भर गौ के गव्य पदार्थों में वा उसके पुत्रों द्वारा कृषि की सहायता से उत्पन्न किये हुए सात्विक भोज्यान्नों में मिलते रहते हैं। गो-वंश की इस उपकार परम्परा पर गम्भीरभावपूर्वक विचार करने से यह बात अक्षर-अक्षर यथार्थ जान पड़ती है कि गौवें संसार भर की माताएँ हैं। भारत के प्राचीन आर्यों की इस बात को अब पाश्चात्य जगत के आधुनिक विद्वान भी मुक्तकण्ठ से स्वीकृत करने लगे हैं। वे भी कहने लगे हैं कि Cow is foster mother of man kind. "milk fits you for the game of life." अर्थात् गौ मानवजाति की धात्री माता है उसके दूध से मानवजीवन सफल बनता है।

कहना नहीं होगा कि गोवंश से होने वाले उपकारों की रक्षा और वृद्धि तभी होती है जब गोवंश का परिपालन शास्त्र अविहित रीति से पूर्ण सावधानी, चतुराई तथा दक्षता के साथ किया जाता है। भारत के प्राचीन आर्य्य विद्वानों ने गोपरिपालन के लिए जो नियम बनाये थे, उनके संग्रह का नाम 'गवायुर्वेद' है, इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गवायुर्वेद' नाम का कोई ग्रन्थ यद्यपि प्राप्त नहीं है, तथापि उसके उपदेश संस्कृत के ग्रन्थों में यत्र-तत्र पाये जाते हैं। उस पर विचार करने से यह बात बहुत स्पष्टतया जानी जा सकती है कि प्राचीनकाल के आर्य्य लोग गोवंश के प्राणियों को बहुत साफ, सुथरे और पवित्र स्थानों में रखा करते थे। उनके लिये स्वास्थ्यवर्द्धक, सुस्वादु, रसीले और पौष्टिक चारे-दाने का प्रबन्ध किया करते थे। गौओं कीदुग्धदायिता को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहने के लिये लक्षण सम्पन्न साँड़ों को पाला करते थे। उन्हें यथा समय उपयोगी चारा दाना देकर संतुष्ट रखा करते थे। उक्त प्रकार की सेवा से प्रसन्न होकर गौवें उन गव्य पदार्थों तथा सात्विक भोज्यान्नों को प्रचुर मात्रा में देती रहती थीं। जिनके सेवा से देश में शूरवीर, विद्वान तथा वाणिज्य व्यापार कुशल लोगों की संख्या बढ़ती रहती थी। उनकी देश सेवा की निःस्वार्थ लगन से भारत सदा हरा-भरा और सुख सम्पन्न रहा करता था।

इस समय जो भारतवासी विद्वान हैं, धनवान् हैं, देशभक्त हैं, व्यापार कुशल हैं, वे गोवंश से उत्तमोत्तम गव्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा तो अवश्य रखा करते हैं। पर इस बात को वे सर्वथा भूले हुए हैं कि गोवंश से जीवन को सफल बनाने वाले, गव्यपदार्थ, तभी मिल सकते हैं, जब गोवंश का परिपालन उचित रूप से किया जाता है। इस समय भारत के बड़े-बड़े नगरों में जो भारतीय धनवान, विद्वान तथा धन कुबेर व्यापारीगण बसते हैं, उन्हें इस बात का बिन्दुमात्र भी ज्ञान नहीं है कि जिन गव्य पदार्थों को वे प्रतिदिन खाते पीते हैं, वे किस प्रकार के गोवंश से उत्पन्न किये हुए हैं। वे लोग इस बात की तनिक सी भी चिन्ता करें तो उन्हें ज्ञात हो सकता है कि जिन गौओं के गव्य पदार्थों का वे सेवन किया करते हैं, वे बहुत ही मैले कुचैले स्थानों में रखी जाती हैं। उन्हें खाने-पीने को जो चारा, दाना और पानी दिया जाता है, वह बहुत अशुद्ध, अपवित्र और स्वास्थ्य नाशक होता है। इन विपरीत कारणों से उनके गव्य पदार्थों के अमृत समान गुण नष्ट हो जाते हैं। उनके सेवन से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। सहस्रों रुपयों के खर्च करने पर भी उन रोगों से पीछा नहीं छूट सकता। ये सब दुष्परिणाम उन्हें इसीलिये भोगने पड़ते हैं कि वे गो-परिपालन के लिए पूर्ण रूप से स्वाधीन और समर्थ होने पर भी गोवंश के उचित परिपालन की बिन्दुमात्र भी चेष्टा नहीं करते जिस भारत के प्राचीन आर्यों ने गोवंश के उपकारों का आविष्कार किया, उनकी रक्षा और वृद्धि के लिये गवायुर्वेद का निर्माण किया, उसके अनुसार गोवंश का परिपालन कर, इसी संसार में स्वर्गोपम सुखों का उपभोग किया, वे अपने वर्तमान वंशजों की गोपरिपालन विषयक उपेक्षा और अवहेलना को देख देखकर निःसन्देह, उन्हें एक बार नहीं, सौ बार नहीं, सहस्रबार नहीं किन्तु असंख्य बार धिक्कारते होंगे और उनकी वर्तमान दुरवस्था को देखकर स्वर्ग में रहने पर भी वात्सल्य वहीं दुखी होते होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के जिन विद्वानों, धनवानों और देशभक्तों ने अपने समूचे जीवन भर में कभी एक क्षणभर के लिये भी यह विचार नहीं किया कि भारत की सुख समृद्धि में और गोवंश के सुधार तथा उत्कर्ष में कितना घना सम्बन्ध है, वे लोग भारत के वर्तमान जीवनधन गोधन की उपेक्षा कर रहे हैं। इस बात को देखकर उतना दुःख नहीं होता जितना दुःख इस बात को देखकर होता है कि जो भारतवासी, अपने गो भक्त होने का रात-दिन ढिंढोरा पीटा करते हैं, वे सब प्रकार स्वाधीन और समर्थ होने पर भी गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार को इसलिए आवश्यक नहीं मानते कि उसे आवश्यक मानने पर उसके लिये कुछ धन खर्च करना पड़ेगा। उनकी यह कृपणता उनके लिये जितनी निन्दास्पद है, उससे कहीं बढ़कर यह भारत के लिये हानिप्रद है। उनका यह कथन सर्वथा थोथा और सारहीन है कि वे अपने घर पर गोपालन कर गोरक्षा के प्रश्न का आदर कर रहे हैं। उन्हें इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि उनके घर पर आयी हुई दश पाँच गौओं से भारत की जनता को कुछ भी लाभ नहीं पहुँच सकता। भारत की जनता को गोवंश से लाभ तभी पहुँचेगा, जब वह किसानों तथा ग्वालों के घर उचित रूप से पाला जायगा। भारत के सच्चे हितमित्रों को गो-परिपालन की शिक्षा के प्रचार की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। जो भारतवासी इस समय भारत के उत्कर्ष के नाम पर जेल यात्रा कर चुके हैं, धन हानि उठा चुके हैं, जनता से मानपत्र पा चुके हैं, वे गो-परिपालन की शिक्षा के प्रचार को सम्पन्न करेंगे तो सचमुच ही उनके द्वारा भारत का वह महान हित होगा जिसके लिए भारत आज बहुत छटपटा रहा है।

मुझे इस बात का सुदृढ़ विश्वास है और बलवती आशा है कि वर्तमान भारत हितैषी, इस समय, जिस प्रकार स्वराज्य के आन्दोलन में लगे हुए हैं उसी प्रकार के गोपरिपालन के आन्दोलन में भी लग जायेगा। उनके उस प्रकार गोपरिपालन के आन्दोलन में लगे बिना भारत का सच्चा उत्कर्ष एक प्रकार से कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव ही है। गो-परिपालन का आन्दोलन निरापद और निष्कंटक है। साथ ही वह बहुत बड़े फल का दायक भी है। इतना सुगम होने पर भी न जाने क्यों भारत के हितमित्रों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट नहीं होता। उत्तम कपास जब प्रचुर मात्रा में सस्ते मूल्य पर मिल सकेगा, तभी चरखा भारत के वस्त्र की माँग को पूरा कर सकेगा। उत्तम कपास पर्याप्त मात्रा से तभी मिल सकेगा, जब भारत के किसान उसकी खेती वैज्ञानिक ढंग से करना सीखेंगे। वैज्ञानिक खेती का श्रीगणेश गो-परिपालन की शिक्षा से होता है। गोपरिपालन की शिक्षा की उपेक्षा कर कोई देश अपनी कृषि की उन्नति नहीं कर सकता। कृषि की उन्नति का भावार्थ यही है कि थोड़े खर्च, थोड़े परिश्रम और थोड़े समय में खेती से अधिक उपज की जाय और उसे अधिक लाभ के साथ बेचने का प्रबन्ध किया जाय। यह काम धन साध्य है। पाश्चात्य देशों के धन-कुबेर व्यापारीगण अपने किसान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाइयों में वैज्ञानिक कृषि की शिक्षा का प्रचार करने में मुक्त हस्त होकर धन खर्च करते रहते हैं। भारत के धान्य, सूत, कपड़े आदि के धनकुबेर व्यापारीगण इस बात को मानो जानते ही नहीं कि उनके व्यापार द्रव्यों के उत्पादक किसान ही हैं। उनके नष्ट होते ही उनका व्यापार नष्ट हो जायेगा। इस अनिष्ट से आत्म-रक्षा करने के लिये उनका सर्वप्रधान और प्रथम कर्त्तव्य कर्म यही है कि वे लोग अपने किसान भाइयों में वैज्ञानिक कृषि की शिक्षा का प्रचार करते रहें। वैज्ञानिक कृषि की शिक्षा का श्रीगणेश गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार से ही होता है।

पाश्चात्य जगत के वर्तमान गो गुण-जिज्ञासु लोग, गवामिष भोजी माता-पिता की सन्तान होने पर अपने गोधन को अधिकाधिक उपयोगी बनाकर उससे अधिका-धिक लाभ उठाने के लिये जिन उपायों को काम ला रहे हैं, उनकी नीचे संक्षेप में चर्चा की जाती है। ऋग्वेद काल से जो भारतवासी गोभक्त होते आये हैं वे गो-भक्त उन उपायों से आसानी से लाभ उठा सकते हैं। पर ये लाभ उन्हें तभी प्राप्त होंगे जब वे उनसे काम लेना आरम्भ करेंगे।

(1) कृषि और गो-परिपालन की शिक्षा देने के लिए वहाँ धनवान देश भक्तों ने स्थान-स्थान पर शिक्षालय खोले हैं।

(2) बालक-बालिकाओं को गोपरिपालन की शिक्षा देने के लिये म्युनिसिपा-लिटी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के सदस्यों ने स्थान-स्थान पर उनके संघ स्थापित किये हैं। इन संघ के सदस्यों की संख्या इस समय आठ लाख से ऊपर है।

(3) गोवंश के गुणों का उत्कर्ष लक्षण सम्पन्न साँड़ों पर ही अवलम्बित है। अतः कोई देशभक्त लोग संघ बनाकर लक्षण सम्पन्न साँड़ों की संख्या बढ़ाते रहते हैं और उनसे देश की गौओं को अधिक दुधार बना सकते हैं।

(4) गोवंश के प्राणियों को अधिकाधिक उपयोगी और लाभदायक बनाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन्हें शुद्ध, पवित्र, तथा पौष्टिक चारा, दाना, घर की खेती में, कम खर्च में अधिक मात्रा में पैदा किया जाय और वह उन्हें यथा समय आवश्यक मात्रा में दिया जाय। इस काम की शिक्षा किसानों तथा ग्वालों की सामयिक तथा स्थायी गो-साहित्य द्वारा दी जाती है।

(5) गोवंश के प्राणियों के रहने के लिये साफ सुथरी जगह और वायु तथा प्रकाश की यथोचित मात्रा में ग्रहण करने वाली गोशालाएँ बनायी जाती हैं। उनमें प्राणी सानन्द रहते हैं।

(6) गोवंश के प्राणी सदा साफ, सुथरे और निरोग रखे जाते हैं। समय-समय पर उनके स्वास्थ्य की परीक्षा होती रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) रोगी और मैली-कुचैली गौओं का दूध और गव्य पदार्थ जनता के हाथ कभी नहीं बेचे जाते उनका बेचना दण्ड माना जाता है।

(8) जिन पात्रों में गौओं को चारा, दाना और पानी दिया जाता है वे सदा साफ और सुथरे रखे जाते हैं। उसी प्रकार जिन पात्रों में दूध और गव्य पदार्थ रखे जाते हैं वे काम हो जाने पर तत्क्षण साफ कर लिये जाते हैं।

(9) घर की खेती में उपयोगी चारा-दाना जिन उपायों से थोड़े खर्च में पैदा किया जाता है, उन उपायों की शिक्षा साहित्य द्वारा ग्वालों को दी जाती है।

उक्त उपाय ऐसे हैं जिन्हें भारत के गोभक्त लोग भी काम में ला अपने गोधन को उपयोगी बनाकर उससे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। जो धनवान भारतवासी अपने धन को गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार में खर्च करेगा वही भारत का सच्चा हित-मित्र होगा और उसी का धन भारत के हित के लिए सात्विक दान का पद पाकर उनके नाम को अजर-अमर करेगा। यह बात ध्रुव सत्य है कि गोवंश के प्राणियों को लाभदायक बनाना ही सच्ची गोरक्षा है। गोवंश के सुधार और उत्कर्ष के लिए स्वराज की मार्ग प्रतीक्षा करना बुद्धिमानी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 1931 ई०

कर्म की प्रधानता

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा।। —तुलसीदास।

अपने समकालीन लोगों में कर्म की प्रधानता के विषय में विपरीत भावना की प्रबलता को देखकर स्वर्गवासी गोस्वामी तुलसीदास जी ने सोचा होगा कि हितकर उपदेशों से ओत प्रोत भरी हुई रामायण में 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।' लिख देने से कम से कम रामायण के समझदार पाठक लोग यह अवश्य ही समझ जाएँगे कि इस संसार में जो लोग बुद्धिमानी के साथ समयानुसार कर्म (काम) करते हैं वे ही मनुष्योचित संसार सुखों को भोग सकते हैं। पर खेद का विषय है कि तुलसीदास जी की रामायण को पढ़ने वाले लोगो मे इस समय भी उन्हीं लोगों की संख्या अधिक है जो कर्म का अर्थ पूर्व जन्म में किये हुए काम ही माना करते हैं। इस विपरीत भावना के कारण वे अपने वर्तमान जन्म के कर्मों में (कामों में) सुधार करना आवश्यक नहीं समझते। इस जन्म में अनुचित रूप से अज्ञान पूर्वक किये हुए कर्मों के फल को पूर्व जन्म के कर्मों का फल मान कर दुखी रहा करते हैं। इसका कारण घोर अन्धकार में रखने वाला हित शत्रु अज्ञान के सिवा अन्य कोई नहीं है। सच बात तो यह है कि इस जन्म में जो मनुष्य जैसे भले बुरे काम किया करता है, उन्हीं का उसे तत्काल वा पीछे भला बुरा फल मिला करता है। नीचे दो एक उदाहरण दिए जाते हैं। उन पर विचार करने से विवेकी और विज्ञ पाठकों को कर्म की प्रधानता का अपने कामों को सावधानीपूर्वक समयानुकूल उपायों द्वारा करने का यथार्थ ज्ञान और बोध हो जायेगा।

भारत में आज कई वर्षों से धर्म भीरु धनवान गोभक्त लोग गोवध को बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस काम में प्रतिवर्ष उनके लाखों रुपये खर्च होते रहते हैं। पर गोवध की मात्रा घटने के बदले बढ़ती ही जाती है। गोवध को बढ़ाने वाला किसानों का वह अज्ञान है जिसके दबाव में आकर वे लोग गोवंश का पालन इतने बुरे ढंग से करते हैं कि गोवंश के प्राणी पतित और विकलांग होकर अपने पालकों के लिये बोझ स्वरूप हो जाते हैं। तब उनके पालने वाले किसान उन्हें थोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मूल्य पर कसाइयों के हाथ बेच डालते हैं। जब पतित और विकलांग गोवंशज प्राणी कसाइयों के हाथों में पहुँच जाते हैं, तब धनवान गोभक्तों की गोभक्ति जागृत होकर उनकी रक्षा का प्रबन्ध करती है। इस विपरीत भावना से धन तो बहुत खर्च होता है पर लाभ बहुत कम होता है। उस दिन उदयपुर के प्रसिद्ध गोभक्त श्रीयुत मेहता रतनलाल जी ने बहुत कुछ दौड़ धूपकर 9000) एकत्र किये और उनकी सहायता से केवल 370 ऐसी गौओं की प्राण रक्षा की जो चारे के अभाव के कारण मरणोन्मुख हो रही थीं। यही 9000) रुपया किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार में खर्च किया जाता तो उन गौओं के पालने वाले इतना चारा पैदा कर लेते कि उसकी सहायता से सहस्रों गौओं की प्राण रक्षा होती और वे इतनी उपयोगी बन जातीं कि उनकी सहायता से कृषि और वाणिज्य व्यापार को आशातीत लाभ पहुँचता। मेहता जी को सच्ची गोरक्षा की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

पाश्चात्य जगत के लोग इतनी उत्तमता के साथ अपने गोवंश का परिपालन करते हैं कि उनका गोवंश उपयोगी और लाभदायक होता जाता है। भारत के गोभक्त इतने बुरे ढंग से गौओं का पालन करते हैं कि उनका गोवंश दिनोंदिन दीन-हीन और क्षीण होकर कसाइयों की छुरी के घाट उतारा जाता है। यह सब कर्म की प्रधानता का ही खेल है। जो लोग अपने कामों को देशकाल वर्तमान के ज्ञान के अनुसार करते हैं, वे अपने कामों के उत्तम फलों का उपभोग करते हैं और जो लोग अपने कामों को असावधानी, उपेक्षा और मूर्खता के साथ करते हैं वे सदा अनेक प्रकार के दुःखों को भोगा करते हैं। गोवध का कारण गोपरिपालन का अज्ञान है। उस अज्ञान के हटाते ही सच्ची गोरक्षा होने लगेगी।

आजकल भारत में किसानों की दुरवस्था की पुकार चारों ओर मची हुई है। उनकी दुरवस्था के प्रधान कारण, उनकी किसानी विषयक गण्ड मूर्खता की ओर उनके हित मित्र कम ध्यान देते हैं। हाँ ऊपरी बातों की ओर वे बहुत ध्यान देते हैं। लाभ मूल के सुधार से होता है। पत्रों के सींचने से लाभ नहीं होता। पाश्चात्य जगत के देशभक्त विद्वानों ने पता लगा कर अपने किसान भाइयों को इस बात का ज्ञान करा दिया है कि किस प्रकार की धरती में कौन-कौन से तत्वों के विद्यमान रहने पर, कौन सी वस्तु की उपज लागत से अधिक होकर किसान को लाभ पहुँचाती है। धरती के गर्भ में, यदि उन तत्वों की कमी हो गयी है जिनकी उपज को बढ़ाने के लिए आवश्यकता होती है, तो वे तत्व धरती के पेट में जिन खादों द्वारा पहुँचाये जा सकते हैं उनका ज्ञान, उन लोगों ने अपने किसानों में फैला दिया है। उस ज्ञान की सहायता से वहाँ के किसान अपनी धरती से कम खर्च और कम परिश्रम से अधिक लाभ उठाते रहते हैं। कोई कारण नहीं है कि भारत के किसानों में उस प्रकार का ज्ञान फैला दिया जाय तो उससे उनकी वर्त्तमान दुरवस्था दूर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। पर उस ज्ञान के फैलाने में थोड़ा साधन खर्च करना पड़ता है। उसे कौन खर्च करे। केवल व्याख्यान देने से किसानों के हित मित्र कहे जाने का प्रशंसा पत्र मिल जाता है। तब इतने सस्ते सौदे को छोड़कर धन खर्च करने वाला महंगा सौदा कौन करे। बस किसानों के हित मित्रों की यही कृपणता और कायरता उनकी दुरवस्था को दूर करने के मार्ग में रोड़े अटका रही है। किसानों के हित मित्र अपने किसान भाइयों में उसे कृषि विज्ञान को फैला देने की कृपा करें जिसे पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने ढूंढ़ निकाला है। और देश भक्त धनवानों ने उसे अपने अन्नदाता किसानों में फैलाया है तो भारत के किसानों की वर्तमान दुरवस्था दस वर्षों के भीतर दूर हो जा सकती है। कृषि विज्ञान रूप कर्म की प्रधानता ही किसानों की दरिद्रताओं को दूर कर उन्हें सुखी बना सकती है। किसानों के सुखी होने पर ही भारत सुखी हो सकता है। किसानों को सुखी बनाये बिना भारत को उन्नत करना कठिन ही नहीं असम्भव है।

ऊपर बहुत संक्षेप में जो कुछ लिखा गया है उससे विज्ञ पाठकों को ज्ञात हो सकता है कि भारत के गोवंश तथा किसानों की वर्त्तमान विपन्नावस्था का कारण उनके परिपालन तथा कृषि कर्म सम्पादन प्रणाली का अज्ञान ही है। जो लोग ज्ञान की मात्रा को जितना अधिक बढ़ाते हैं, वे उतना ही सुख सम्मान पाते हैं इसी का नाम कर्म की प्रधानता है। जो अपने कर्त्तव्य कर्म की सम्पादन प्रणाली में जितनी अधिक प्रधानता प्राप्त करता है, उसे उतना ही अधिक सुख सम्मान मिलता है। सृष्टिकर्त्ता ने ऐसा ही नियम बना रखा है। उसके इस नियम का अपमान कर कोई सुखी और समादृत नहीं हो सकता। भारतवर्ष के वर्त्तमान हित मित्र ईश्वर के इस नियम की बहुत अवहेलना कर चुके हैं और उसके कारण बहुत दुःख भोगते जाते हैं। अब उन्हें चाहिए कि वे ज्ञान के नेत्रों को खोलकर कर्म की प्रधानता के पुजारी बनें और उसका प्रसाद प्राप्त कर सुखी बनें। भारत के वर्त्तमान हित मित्र मेरी इस प्रार्थना को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर भारत के दुःखों की मात्रा को और भी अधिक भले ही बढ़ा दें, पर भारत का ठोस हित तभी होगा जब भारत के जन जन में व्यक्तिगत कर्म की प्रधानता का ज्ञान बढ़ाया जायेगा। प्रत्येक किसान के मन में जब यह बात दृढ़ रूप से जमा दी जायगी कि उसकी आर्थिक उन्नति उसी के ज्ञान की मात्रा पर अवलम्बित है। अतः उसे चाहिए कि वह अपने ज्ञान के क्षेत्र को सदा बढ़ाता रहे। ज्यों-ज्यों उसके ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता जायगा त्यों-त्यों उसकी दुरवस्था दूर होती जायगी। इसमें अणुमात्र भी शंका नहीं है। गोसाईं जी का उक्त कथन अक्षर अक्षर सत्य है। जो जन अपने काम को जितने अधिक ज्ञान के साथ करता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्म का फल पाता है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 18 सितम्बर 1931

सात्विक दान

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देश काले च पात्रे च, तद्दानं सात्विकं स्मृतं ।। —गीता 17/20

अतीत काल में जिन देशों ने आत्मोन्नति की थी, उनके इतिहासों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उन देशों के देश भक्तों ने, देशोन्नति के लिये सात्विक दान की अत्यन्त आवश्यकता समझी थी। स्वार्थ और नीच स्वार्थ की पूर्ति के लिये जिस प्रकार राजस और तामस दोनों की आवश्यकता रहा करती है, देशोन्नति के लिये उनसे अधिक आवश्यकता सात्विक दान की रहा करती है। सात्विक दान के दाता को अपने दान से तात्कालिक, फल की आशा से मुक्त रहना पड़ता है यही सात्विक दान की विशेषता है।

यह सात्विक दान की प्रेरणा ही थी जिसने रानी एलीजाबेथ को, कोलम्बस को सात्विक दान देकर उसे अमेरिका की खोज में संलग्न कराया था। उक्त रानी की दृष्टि संकीर्ण और संकुचित होने के कारण केवल तात्कालिक लाभ पर ही होती तो वह कोलम्बस को आर्थिक सहायता कभी नहीं देती। उस समय उक्त रानी सात्विक दान में रुपया खर्च नहीं करती तो अमेरिका की खोज से उसके देश-वासियों को जो लाभ आज हो रहा है उससे उन्हें न जाने कब तक वंचित रहना पड़ता।

फोर्ड मोटर के आविष्कर्ता फोर्ड महाशय को एक गुप्त सज्जन सात्विक दान देकर उनके कार्य की सहायता नहीं करते तो उनकी खोज से आज दिन संसार का जो उपकार हो रहा है उससे संसार सम्भवतः वंचित ही रहता। तात्पर्य देशोन्नति और राष्ट्रोन्नति के लिए सात्विक दान की अनिवार्य रूप से आवश्यकता रहा करती है।

सन्तोष का विषय है कि भारत के वर्त्तमान धनी लोगों में अभी तक सात्विक दान का आदर करने की प्रवृत्ति बनी हुई है। आज दिन भी भारत में ऐसे ऐसे धनवान बने हुए हैं जो अकेले लाखों रुपयों का सात्विक दान करते रहते हैं। भारत में ऐसी कई शिक्षा संस्थाएं हैं जो भारत के सात्विक दानवीरों की आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता से स्थापित हुई हैं और संचालित हो रही हैं। परन्तु यह बात निःसन्देह बहुत दुःख की है कि उनके सात्विक दान की सहायता से जो भारतवासी शिक्षा पाते हैं, उनकी संख्या इस समय बेकारों और वुभुक्षितों की वृद्धि करती जाती है। इस परिणाम पर भारत के सात्विक दानवीरों को शीघ्रातिशीघ्र दृष्टिपात कर उस पर विचार करना चाहिए और विचारान्त अपने सात्विक दान की दिशा को समयानुमोदित दिशा की ओर लौटा देना चाहिये।

संसारतत्वपारीण गोपाल श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र अर्जुन को और अन्य गीता के भक्तों को यही परामर्श देते हैं कि जिस समय जिस देश में देशोन्नति के लिये जिस काम की आवश्यकता हो उसकी उन्नति के विस्तार के लिये निःस्वार्थ भाव से अर्थात् दान के तात्कालिक लाभ के भाव से मुक्त होकर सात्विक दान करना चाहिये।

हठ, दुराग्रह और पक्षपात को छोड़कर केवल भारत की भलाई की दृष्टि से विचार किया जाय तो इस समय समूचे भारत में वार्ताधर्म की—गोपरिपालन, कृषि और वाणिज्य की वैज्ञानिक शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक उसकी उपेक्षा और अनादर किया जा रहा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस समय समूचा भारत जिस आर्थिक संकट में फँसा हुआ है उसका एकमात्र कारण भारतीय वार्ताधर्म का अनादर ही है। वार्ताधर्म के इस अनादर की ओर न तो भारत-भक्त पत्र सम्पादकों का ही ध्यान जा रहा है और न आधुनिक स्वराज्य भक्तों का ही। उनकी यह उपेक्षा भारत की जड़ को खोखली वनाती जाती है। जिन भारतीय सज्जनों की यह उत्कट इच्छा है कि उनके बुद्धिबल से शारीरिक बल और धन बल से भारत का पुनरुत्थान हो और वह सभ्य संसार का समादृत बने, उन्हें उचित है कि वे अपने बल को भारतीय किसानों में वैज्ञानिक गोपरिपालन तथा कृषि की शिक्षा का प्रचार करने में ही खर्च करें। ऐसा करने से भारत के उन सब सुख समाधानों की वृद्धि होगी जिनकी उन्नत देशों को अत्यन्त आवश्यकता रहा करती है।

इस छोटे से लेख को समाप्त करने के पूर्व एक बार मैं भारत के सात्विक दानवीरों से इस बात का पुनः अनुरोध करता हूँ, कि जिस प्रकार आप भिन्न-भिन्न विषयों के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दिया करते हैं, पिंजरापोलों और गोशालाओं को मासिक रूप से सहायता दिया करते हैं, उसी प्रकार किसान भाइयों में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करने के अभिप्राय से सस्ते गोसाहित्य का प्रचार आरम्भ कर दीजिये। गोविन्द श्रीकृष्ण के कथनानुसार इस समय समूचे भारत के किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः उनके प्रचार में खर्च किया हुआ धन सात्विक दान कहा जाने योग्य है। इस समय हिन्दी में जो सस्ता गोसाहित्य प्रस्तुत है वह आरम्भिक शिक्षा के लिये ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के सात्विक दान शूरों के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे उसके प्रचार और वृद्धि में अपना धन खर्च करना अपना आनन्दवर्द्धक और यशदायक धर्म समझें और तदनुसार कार्य करना आरम्भ कर देवें।

मुझे इस बात का बहुत खेद है कि मेरे आज कई वर्षों से निरन्तर आन्दोलन करते रहने पर भी भारत के किसी एक समर्थ भारत भक्त का ध्यान वार्ताधर्म के प्रचार की आवश्यकता की ओर नहीं गया है। भारत सरकार को किसी लेखक के एक ही लेख में राजद्रोह का पता लग जाता है और वह उसे बन्द कर देने का तत्क्षण उद्योग करती है क्या भारत में ऐसे कर्मशील सज्जनों का अभाव हो गया है जो वार्ताधर्म के दश बीस गुणगायक नहीं सौ दो सौ नहीं किन्तु सहस्रों लेखों को पढ़ने पर भी सक्रिय भक्त नहीं बन पाते हैं। उनके गुणग्राहक बनकर उनका प्रचार करने में वे अग्रसर नहीं होते। इस समय जो भारतवासी धनवान अपने धन को वार्ताधर्म के प्रचार में खर्च करेगा वही भारत का सच्चा भक्त हो सकेगा। भावी भारत उसी के गुणों का गान ठीक उसी प्रकार करेगा जिस प्रकार वर्तमान अमेरिकावासी श्रीयुत* मैकोर्मिक का यशोगान करते हैं।

आशा है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकगण अपने पाठकों में आधुनिक सात्विक दान की किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार में धन लगाने की लालसा को उत्पन्न करने की निरन्तर चेष्टा करते रहेंगे। उनकी उस चेष्टा से भारत का वह हित अवश्य ही होगा जिसके लिये वह आज बहुत उत्कण्ठित हो रहा है।

---

* मैकार्मिक साइरस हाल (1809-1884) अमेरिका का प्रसिद्ध वैज्ञानिक था जिसने अनाज की फसल काटने की मशीन का आविष्कार किया है। उसका पिता एक कृषक था, जिसने कृषि से सम्बन्ध रखने वाली कई मशीनें आविष्कृत की थीं। पर वह अनाज को काटने की मशीन बनाने में अनेक बार प्रयत्न करने पर भी असफल रहा। मैकार्मिक ने 22 वर्ष की अवस्था में अपने पिता के प्रयत्नों को सफल कर दिखलाया। विलियम सिर्वाड ने इस मशीन की उपययोगिता के सम्बन्ध में कहा है कि "इसकी बदौलत संस्कृति प्रति वर्ष 30 मील की गति से पश्चिम की ओर बढ़ रही है। इस प्रकार यह माना जाता है कि इस व्यक्ति ने कृषि का जितना उपकार किया है उतना किसी व्यक्ति ने नहीं किया। —**सम्पादक** (श्री वेंकटेश्वर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 11 सितम्बर 1931

राजाश्रय और भारतोन्नति

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु, रात्मैव रिपु रात्मनः। —गीता

यह बात सर्वथा सत्य है, कि जिन समझदार लोगों ने अपने चातुर्यपूर्ण पुरुषार्थ से स्वराज्य प्राप्त कर अपने देश की उन्नति करने के लिये राजाश्रय को अनुकूल कर लिया है, उनकी देशोन्नति बहुत सुगमता और प्रगति के साथ हुई है और हो रही है। साथ ही यह बात भी सत्य है कि जिन लोगों को स्वराज्य प्राप्त नहीं है, वे लोग सुमति के साथ संगठित होकर देशोन्नति के उचित उपायों का सेवन करना आरम्भ कर देवें तो वे केवल देशोन्नति ही नहीं कर सकते, किन्तु देशोन्नति के लिये राजाश्रय को भी आवश्यक मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं। अन्यान्य वर्तमान उन्नत देशों की सब प्रकार की उन्नतियों का आधार स्तम्भ देश की कृषि ही है। सौभाग्य की बात है कि अभी तक भारत के लोगों के अधिकार में कृषि बनी हुई है। उसका सुधार और उत्कर्ष करने के लिये वे लोग पूर्ण रूप से स्वाधीन और शक्तिशाली हैं। उनमें कमी है तो एकमात्र उसके उन्नायक विज्ञान की ही। जिन उपायों द्वारा भारत के प्राचीन आर्यों ने भारत की कृषि को और उसके द्वारा समूचे भारत की सब प्रकार की उन्नति की थी और जिन उपायों द्वारा आधुनिक उन्नत देशों के चतुर लोग अपने देश की कृषि की उन्नति कर रहे हैं, वे सब उपाय आज दिन भी भारतवासियों को अनुकूल हैं। पर हां उनकी अनुकूलता का शास्त्रीय ज्ञान उन्हें अनुकूल नहीं। खेद का विषय है कि जिन थोड़े से भारतवासी नेताओं ने और पत्र सम्पादकों ने जनता में आत्महित के ज्ञान का प्रचार करने का एकाधिकार (ठेका) ले रखा है, उन बपुरों की समझ में यह बात आती ही नहीं कि भारत के जमींदारों और किसानों में भारतीय कृषि के सुधार और उत्कर्ष के उपायों का निरन्तर आन्दोलन द्वारा प्रचार कर देने से भारत का बहुत हित हो सकता है। वे लोग स्वयं ज्ञान विषय को कृषि के विषय को अधिकतर इस पर लेख नहीं लिखते, तो इस विषय के प्राप्त लेखों को तो उदारतापूर्वक छापा तो करें। पर उनसे इतनी उदारता भी नहीं होती। हाँ, कई पत्र सम्पादक इतना सौजन्यपूर्ण काम अवश्य करते हैं कि अस्वीकृत लेखों को तिरस्कारपूर्वक लौटा देते हैं। लौटाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण को सूचित करने की दया नहीं करते यह भी उनकी भारत सेवा का एक उदाहरण है। अस्तु,

भारत के प्राचीन देश भक्तों को उनके नितप्रति के आविष्कार तथा विज्ञान ने यह बात समझा दी थी कि जब देशवासी सावधानीपूर्वक गोवंश की रक्षा करते हैं हृष्ट, पुष्ट और नीरोग गोवंश की सहायता से अपनी धरती को उर्वरा बनाये रखकर उससे सात्विक भोज्यान्नों, गव्य पदार्थों तथा वस्त्र विधायक तन्तुओं को अपनी मांग के अनुसार उत्तम रूप और प्रचुर मात्रा में पैदा कर, कला द्वारा उन्हें भिन्न-भिन्न रूप देकर उनका वाणिज्य करते हैं, तभी देश उन्नत होता है और वे इसी धरती पर स्वर्गोपम सुखों का उपभोग कर सकते हैं (गोरक्षां कृषि वाणिज्यं कुर्यात् वैश्यों यथा विधि। (पराशर) भारत के प्राचीन आर्यों के इसी सिद्धान्त का आज दिन पाश्चात्य जगत के उन्नत देशों के विवेकी देश भक्त विकसित रूप में अनुकरण कर रहे हैं। उनकी गतिविधियों को देख, सुन और जानकर भी भारत के नामी नेता और पत्र सम्पादकगण, दो एक को छोड़कर इस विषय की घोर उपेक्षा और उसका अनादर कर रहे हैं। वे बार-बार अपने पत्रों में स्थूलाक्षरों द्वारा शीर्षक देकर भारत के किसानों के वर्तमान संकटों की बातें छापा करते हैं। पर इस बात की चर्चा तक नहीं करते कि उनके वर्तमान संकट उनकी किस उपेक्षा और अज्ञान के दुष्परिणाम हैं। जब तक वे गोरक्षा की उपेक्षा, कृषि की अवहेलना, कला को विकसित उसके द्वारा नाना प्रकार की वस्तुओं को बनाकर उनका व्यवसाय करने की उदासीनता आदि दूर नहीं करेंगे, तब तक किसानों की वर्तमान संकटा-वस्था कभी दूर नहीं होगी। एक साल का लगान वा एक साल की तकावी की किस्त को माफ वा मुलतबी कर देने से उनके सब संकट सदा के लिये दूर नहीं हो जायेंगे। वे तो तभी दूर होंगे जब वे विज्ञान के साथ गोपरिपालन, कृषि कर्म और अपने व्यवसाय द्रव्यों को उत्पन्न करना सीखेंगे। इस काम को अर्थात गोपरिपालन, कृषि सुधार और देश हितकर व्यवसाय के ज्ञान की शिक्षा जब भारतीय किसानों में फैलाई जायगी तभी भारत का सच्चा हित होगा। इस काम को भारत के धनी ज्ञानी लोग राजाश्रय बिना भी स्वयं कर सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण का यह उपदेश अक्षर अक्षर सत्य है कि हम ही हमारे मित्र हैं और हम ही हमारे शत्रु हैं। भारत के विवेकी धनवान नेता और पत्र सम्पादकगण कृषि और व्यवसाय के उन उपायों की चर्चा नित किया करें जिनकी सहायता से वे उन्नत हो सकते हैं। तो बहुत संभव है कि भारतोन्नति का श्रीगणेश शीघ्र हो सकता है। पूर्ण स्वतन्त्रता, स्वाधीनता और लक्ष्मी की कृपा होने पर भी उक्त विषयों की उपेक्षा करना अपने आपको अपना शत्रु प्रमाणित करना ही है। भारत के जिन जमींदारों और किसानों के पास अभी तक धरती और उसको उर्वरा बनाने योग्य धन बना है उनमें शास्त्र-विहित गोपरिपालन कृषि तथा व्यवसाय का ज्ञान फैला देने से राजाश्रय बिना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का यथेष्ट हित हो सकता है। उसके उक्त हितों के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले जो कानून हैं वा आगे बनें उनसे उनकी रक्षा करना उन भारत भक्तों का काम है जो प्रान्तीय तथा दिल्ली की परिषदों में जाने के लिये लालायित रहा करते हैं। उनके ऐसा करने से वे कानून भारत के गोधन, कृषि और व्यवसाय का अनिष्ट नहीं कर सकेंगे।

स्वराज्य को प्राप्त कर भारतीय गोधन, कृषि और व्यवसाय की उन्नति कर लेंगे। यह भावना बहुत द्योतक है। जब तक स्वराज्य प्राप्त होता है, तब तक उनकी अपेक्षा करने से वे और भी नष्ट हो जायेंगे। अतः बुद्धिमानी, चातुर्य, और पुरुषार्थ तो इसी में है कि भारत के धनी ज्ञानी लोग संघ बनाकर भारतीय गोधन, कृषि और व्यवसाय की उन्नति करें। उनकी उन्नति करने से वे राजाश्रय भी प्राप्त कर सकेंगे। इसमें बिन्दु मात्र भी शंका नहीं। विनिमय की दर को घटाने का रोना रोते बैठने अथवा लगान को घटाने का आग्रह करते रहने की अपेक्षा यह कहीं हितकर है कि भारतीय किसानों में गोपरिपालन कृषि तथा व्यवसाय के विज्ञान का प्रचार किया जाय। उसी से भारत का ठोस हित होगा। इसको भारत के हित मित्र राजाश्रय बिना भी अपने विवेक और पुरुषार्थ की सहायता से कर सकते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दी बंगवासी', 16 नवम्बर, 1931

अमेरिका के गोपति और भारत के गोभक्त

गावस्तुष्टाः प्रयच्छंति वरानपि सुदुर्लभान् । —अनुशासन पर्व

अमेरिका में जो लोग गौ का परिपालन इतनी उत्तम रीति से करते हैं, कि उनकी परिपालन विधिय एक गौ प्रसन्न होकर 304 दिनों में कम से कम पाँच मन मक्खन देती है, उन्हें अमेरिका के गवायुर्वेदवेत्ता "गोपति" की उपाधि से विभूषित करते हैं। सुनते हैं, संयुक्त अमेरिका के कैलीफोरनियाँ राज्य में ऐसे गोपतियों की संख्या इस समय चालीस हजार के करीब है।

अमेरिका के गोपति लोग जिस विधि से अपने गोवंश का परिपालन किया करते हैं, उसका नीचे अति संक्षेप रूप में उल्लेख किया जाता है। भारत के नामी गोभक्तों से विनीत प्रार्थना है, कि वह लोग इस वर्णन को मन लगाकर पढ़ें और अपनी शक्ति तथा उत्साह के अनुसार भारत के गोवंश का परिपालन कर अपने गोभक्त नाम को सफल और सार्थक करें।

अमेरिका के गोपति लोग बालावस्था से ही गोपरिपालन की शिक्षा देने वाले विद्यालयों में भरती होकर गवायुर्वेद की यथाविधि शिक्षा पाते हैं। उस शिक्षा के अनुसार वह बचपन से ही सक्रिय गोपरिपालन करना सीखते हैं। गवायुर्वेद की शिक्षा देने वाले विद्यालयों में उन्हें नीचे लिखे हुए विषयों पर शिक्षा दी जाती है—

(1) गौ के बछवा वा बछिया के पैदा होते ही उसे किस प्रकार पालना चाहिए। अर्थात् उसे किस प्रकार के स्थान में किस प्रकार रखना चाहिए। कितने दिनों और महीनों का होने तक उसे किस प्रकार का कितना दूध, चारा और दाना देना चाहिए।

(2) गौ और उसके बच्चे को जो चारा और दाना रुचता है, उसे घर की खेती में किस प्रकार कम खर्च और अधिक मात्रा में पैदा करना चाहिए।

(3) किस ऋतु में किस प्रकार की धरती में कौन-से खाद कितनी मात्रा में देने से कौन से चारे और दाने कितनी मात्रा में पैदा किये जा सकते हैं आदि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान प्राप्त कर उन्हें उसी विधि से पैदा करना और यथासमय उनका संग्रह और रक्षा करना।

(4) गौ के ऋतुमती होने पर उसे किस जाति के लक्षण सम्पन्न सांड से कब संयुक्त करना और उसके गर्भवती होने पर उसका किस प्रकार परिपालन करना अर्थात् किस मास में उसे कौन सा चारा और दाना किस मात्रा में देना।

(5) गौ वा बच्चे के बीमार होते ही किस सावधानी, चतुराई और दक्षता के साथ उनकी चिकित्सा करना।

(6) साफ-सुथरी गोशालाओं को इस ढंग से बनवाना, कि उनमें रहने वाले प्राणियों को उठने, सोने आदि के लिये पूरा-पूरा स्थान मिले और साथ ही उस स्थान में यथेष्ट वायु और प्रकाश मिलता रहे। गोशालाओं की दीवारों और छतों में ऐसे स्थान नहीं रहने पायें, जिनमें बसकर पिस्सू और किल्ली आदि रक्तशोषक जन्तु अपनी प्रजा को बढ़ायें और पशुओं को कष्ट दें।

(7) गोवंश के प्राणियों को जिन पात्रों में पानी और दाना चारा दिया जाता है और जिन पात्रों में दूध दुहा जाता है, जमाया जाता है, ताया जाता है, उन्हें काम के होते ही किस प्रकार माँज-धोकर साफ कर लेना चाहिए।

(8) जब जहाँ पर गो प्रदर्शन किया जाये, वहाँ पर किस तैयारी के साथ अपने परिपालित पशुओं को ले जाना चाहिये और वहाँ पर गवायुर्वेदवेत्ता जिन बातों की शिक्षा देते हैं, उन्हें सावधानीपूर्वक सुनकर अपनी पुस्तकों में लिख लेना चाहिये और घर लौटने पर उनके अनुसार अपनी परिपालन-विधि में हेर-फेर कर अपने गोधन को उन्नत और लाभदायक बनाना चाहिए।

(9) अपने घर के गव्य पदार्थों को अधिक लाभ के साथ वेचने का किस प्रकार प्रवन्ध करना चाहिए।

(10) गोवंश के परिपालन के व्यय का तथा गव्य पदार्थों की बिक्री का ठीक-ठीक लेखा रखकर यह सदा देखते रहना चाहिए, कि परिपालन के व्यय से गव्य-पदार्थों की बिक्री से आय इतनी अधिक होती रहे, कि जिससे कुटुम्ब के परिपालन का खर्च सुगमता के साथ प्राप्त होता रहे और समाज में मान-मर्यादा की रक्षा होती रहे।

(11) इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान रखा जाये, कि राजयक्ष्मा और गर्भपात जैसे भयंकर संक्रामक रोग से पीड़ित गौ का दूध किसी ग्राहक के पास नहीं पहुंचने पाये। क्योंकि रोगी गौ के दूध वा मक्खन के सेवन से जनता में भयंकर रोग फैल जाते हैं।

उक्त प्रकार के गो परिपालन को सुविधा पहुंचाने के लिये देशभक्त धनवानों ने, गोवंश सुधारक संघ, गोरोग-चिकित्सक-संघ, लक्षण सम्पन्न-सांड परिपालन संघ आदि अनेक संघों की स्थापना कर रखी है। वह उन संघों का संचालन दक्षता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ करके ग्वालों को पूरा-पूरा लाभ पहुँचाते हैं। साथ ही अपनी संस्था की आय बढ़ाते हैं।

उक्त प्रकार की सुव्यवस्था से जो करोड़ों और अरबों मन गव्य पदार्थ प्रतिवर्ष उत्पन्न होते रहते हैं, उनका व्यापार वाणिज्य और व्यवसाय करने के लिये देशभक्त धनवानों ने बड़ी-बड़ी समितियाँ (कम्पनियाँ) बना रखी हैं। वह देश भर में गव्य पदार्थों को शुद्ध पवित्र और स्वास्थ्यवर्द्धक रूप में पहुँचाकर देश की जनता को अपार लाभ पहुँचाती रहती हैं। धन्य हैं, वह धनवान देशभक्त जो अपार धन लगाकर ऐसा व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय किया करते हैं, जिसकी सहायता से देश की जनता हृष्ट-पुष्ट, निरोग और मेधावी बनकर देश को उन्नत और समृद्धिशाली बनाती रहती है।

अमेरिका के उक्त गोपतियों के साथ ही साथ भारत के वर्तमान गोभक्तों पर भी दृष्टिपात कीजिये। भारत में वह सब लोग गोभक्त कहाते हैं—

(क) जो किसी पिंजरापोल वा गोशाला के सदस्य अथवा पदाधिकारी बनकर उसे वार्षिक मासिक वा एक कालीन आर्थिक सहायता देते हैं।

(ख) जो सभा समाजों में गोरक्षा पर प्रज्ञावादपूर्ण लम्बे-चौड़े व्याख्यान दिया करते हैं।

(ग) जो राजपरिषद् तथा प्रान्तीय काउन्सिलों में प्रवेश पाने के लिये अपने मतदाताओं को गोवध-निवारक-प्रस्तावों के उपस्थित करने का प्रलोभन देते हैं।

(घ) जो गो सम्मेलनों के सभापति बनकर उनके संचालनार्थ थोड़ी सी आर्थिक सहायता दे देते हैं।

(ङ) जो गो रक्षा के नाम पर धन बटोरते फिरते हैं।

(च) जो थोड़े से पतित और विकलांग गोवंशज प्राणियों की किसी प्रकार प्राण रक्षा का प्रबन्ध किया करते हैं।

(छ) जो यथार्थ गो रक्षा के लिये अरण्य रोदन के समान निरन्तर आन्दोलन करते रहते हैं।

(ज) जो यथार्थ गोरक्षा का मर्म समझने की क्षमता और तदनुसार काम करने का पुरुषार्थ रखने पर भी राजनीति में फंस रहने का बहाना बनाकर गोरक्षा के लिये कुछ भी नहीं करते।

(झ) जो गोभक्तों की श्रेणी में अपना नाम प्रकाशित करने-कराने मे बहुत रुचि रखा करते हैं, किन्तु गोरक्षा सम्बन्धी पत्र का उत्तर देने तक में कृपणता करते हैं।

(ञ) जो लोग अपनी दूकानों और कोठियों पर गोरक्षा का खाता बहुत प्रसन्नता के साथ खोल लेते हैं, और तदनुसार धन भी एकत्र करते जाते हैं, किन्तु उस धन को गोरक्षा के सिवा अपने मनमाने अन्य कामों में ही खर्च करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ट) जो लोग पाश्चात्य जगत की दुधार गौओं के चित्रों को अपने नेत्रों में बन्द कर भारत ले आते हैं, किन्तु वैसी गौओं को भारत में पैदा करने की बिन्दु-मात्र भी चेष्टा नहीं करते।

(ठ) जो लोग सच्ची गोरक्षा के उपायों को जानने के अभिप्राय से बड़े-बड़े पारितोषिक देने के विज्ञापन दिया करते हैं, किन्तु यथार्थ गोरक्षा का उचित उपाय बताने वाले सज्जन के पत्र का उत्तर तक नहीं देते।

पता लगाया जाये, तो भारत के अजागल स्तन समान और भी अंधरे गोभक्तों का पता लग सकता है, किन्तु सम्प्रति इतने ही बस होंगे। भारत के उक्त और अन्य प्रकार के गोभक्तों से इस लेखक की बारम्बार यही विनीत प्रार्थना है, कि आप लोग एक बार इस बात पर गम्भीरभावपूर्वक विचार तो कर लीजिये, कि भारत के आर्यों ने गोरक्षा को धर्म का रूप क्यों दिया है और वह धर्म किस प्रकार की गोरक्षा से प्राप्त हो सकता है। भारत के प्राचीन आर्यों ने गोरक्षा को धर्म का रूप इसीलिये दिया है, कि गोवंश के उत्कर्ष से मानव जाति का अपार उपकार होता है। वह उपकार तभी हो सकता है, जब गोपरिपालन गवायुर्वेद विद्या के अनुसार उसी ढंग से किया जाता है, जिस ढंग से इस समय अमेरिका के गोपति लोग कर रहे हैं। भारत के नामी-नामी गोभक्त जिस प्रकार से इस समय गोरक्षा कर रहे हैं, वह यथार्थ गोरक्षा न होने के कारण ही उससे भारत के ठोस हित को बिन्दुमात्र भी सहायता नहीं मिल पा रही है। हाँ, दरिद्र भारत के लाखों रुपये प्रतिवर्ष अवश्य नष्ट होते हैं। साथ ही भारत का जीवन धन भी बड़ी भीषण मात्रा में नष्ट होता जाता है।

भारत के धर्म भीरु धनवान यथार्थ गोरक्षा के मर्म को समझ लें, तो वह राजाश्रय बिना भी यथार्थ गोरक्षा का यथोचित प्रबन्ध कर भारत को सुखी और सन्तुष्ट बना सकते हैं। सच्ची गोरक्षा का एकमात्र यही उपाय है, कि भारत के किसानों में शस्त्र विहित गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किया जाये और तदनु-सार गोपरिपालनार्थ उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाये। भारत का गोवंश उचित परिपालन द्वारा सन्तुष्ट होने पर भारत की सब माँगों को परिपूर्ण कर सकता है। व्यास जी के इस कथन को अमेरिका के गोपति अक्षर-अक्षर सत्य प्रमाणित कर रहे हैं। भारत के गोभक्तों को इससे आवश्यक शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीवेंकटेश्वर समाचार', 1931

समझदारों की बातें और उनके काम

ज्यों कदली के पात में, पात पात में पात।
त्यों पण्डित की बात में, बात-बात में बात।

इस समय भारत के कोने-कोने में वह लहर दौड़ रही है जिससे यही प्रतीत होता है कि अब बहुत शीघ्र ही भारत की सब श्रेणी की जनता को सुख समाधानों का मिलना सुलभ हो जायगा। ईश्वर करे कि भारत की जनता को वर्तमान युग के अनुसार मनुष्योचित सुख का मिलना सम्भव हो जाय।

मनुष्य जाति के इतिहास पर मननपूर्वक विचार करने से यही बात प्रमाणित होती है कि ईश्वर ने उसी देश के उन्हीं लोगों को यथेष्ट सुख समाधान देने की कृपा की है, जिन देशों के जिन लोगों ने सांसारिक सुख समाधानों को प्राप्त करने के लिये समयोचित प्रयत्न और उद्योग सुसंगठित होकर ही किये हैं। इस समय भारत में जिन बड़े-बड़े सुधारों और उत्कर्षों की रात-दिन चर्चा की जा रही है उनके विषय में मैं यहाँ पर कुछ न लिखकर एक ऐसे विषय की चर्चा करूँगा जिससे भारत के सब श्रेणी के लोगों का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है और जिसकी भारत के धुरन्धर नेता और प्रकाण्ड पण्डित विद्वान घोर उपेक्षा कर रहे हैं।

इस बात को सभी लोग जानते हैं, कि मनुष्य प्राणी को संसार सुखों का यथेष्ट रूप में उपभोग करने की शक्ति बनाये रखने के लिये स्वास्थ्य और निरोग शरीर की अत्यन्त आवश्यकता रहा करती है। कहना नहीं होगा कि मानव शरीर को पूर्ण रूप से स्वास्थ्य और निरोग बनाये रखने के लिए सात्विक भोज्यान्नों और गव्य पदार्थों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। इस बात को विवेकी मात्र जानते हैं कि भारत में सात्विक भोज्यान्न और गव्य पदार्थ गोवंश की सहायता से ही उत्पन्न किये जा सकते हैं, तात्पर्य भारतवासियों के ऐहिक सुख समाधानों का केन्द्र स्थान भारतीय गोधन ही है। यह कितने खेद, सन्ताप और लज्जा की बात है कि जिस भारतीय गोधन पर भारतीय जनता मात्र का सुख समाधान अवलम्बित है उसी भारतीय गोधन के प्राणी भारत में भारतवासियों की अज्ञता, स्वकर्त्तव्य कर्म विमुखता, और कृपणता के कारण प्रति वर्ष एक करोड़ की संख्या में बध द्वारा नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये जाते हैं। जिस भारतवर्ष में अपने हित को पहिचानने की तिलभर भी समझ होगी वह इस बात को निस्संकोच होकर स्वीकृत करने में कभी नहीं हिचकेगा कि गोधन की उपेक्षा कर अपने हितों की आशा करना उसके लिए गण्ड मूर्खता का ही द्योतक है। सारांश अतीत काल में जो राष्ट्र उन्नत हुए थे वे अपने गोधन के उत्कर्ष से ही उन्नत हुए थे और इस समय जो राष्ट्र उन्नत हैं, वे अपने गोधन की उन्नति से ही उन्नत हैं। भारत में जो थोड़े से धर्म्मभीरु लोग प्रतिवर्ष गोरक्षा के नाम पर, लाखों रुपये विवेक के नेत्रों को बन्द कर खर्च करते रहते हैं वे ही लोग समयानुकूल समय के साथ उन रुपयों को खर्च करना आरम्भ कर दें, तो बहुत सम्भव है कि उनकी आर्थिक सहायता से समूचे भारत में गो परिपालन की उस शास्त्र विहित शिक्षा का प्रचार किया जा सकेगा जिसकी सहायता से प्राचीन भारत में अपने गोधन को उन्नत कर उपयोगी बनाया था और वर्तमान उन्नत देशों के लोग उसे उन्नत और उपयोगी बना रहे हैं। खेद का विषय है कि भारत के धनवान् गोभक्त इसी बात का रोना रोते रहते हैं कि सरकार कानून बनाकर गोवध बन्द कर देवे और गोचर भूमि को कर मुक्त कर देवे। इस दशा में अपने निज के पुरुषार्थ से बिन्दुमात्र भी काम नहीं करना चाहते उनकी इस निंद्य कायरता का ही यह कड़ुआ फल है कि एक ओर निर्धन भारत का धन प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में खर्च होता जाता है, और दूसरी ओर भारत के जीवनाधार गोवंश के लाखों प्राणी प्रति वर्ष छुरी के घाट उतारे जाते हैं। भारत के जिन धनवान गो भक्तों में, थोड़ी सी भी समझ हो और साथ ही क्रियात्मक भक्ति भी, उनसे इस जन की विनीत प्रार्थना है कि वे नीचे दिये हुए अवतरण को बहुत सावधानी के साथ पढ़े और अपने निज के पुरुषार्थ से भारत के गोधन का समयोचित उपायों से सुधार और उत्कर्ष कर भारत की ठोस सेवा के पुण्य को प्राप्त करें।

"If we would devote ourselves to the things that are within our own control, that we may use them better, We will accomplish more than by constantly harping upon what the Government should do to save our industry. we should never lose sight of the necessity of having laws that will give every industry an equal oppoartunity but it seems to us a waste of time to attempt to secure laws to raise the prices of products when we have had so many faiures by the nations that have attempted to peg prices. It is better for us to be devoted to the proper utilizations of power and machinery, to the fertilization of our fields that our crops will be greater peracre to better feeding and care of our cows that they will produce more, and to greater efficiency in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

marketing so that the former will receive a larger portion of the consumer's doller than to be so much concerned with things over which we have little or no control." (Hoards Dairyman, January 10, 1931)

उक्त अवतरण का सारांश नीचे दिया जाता है—

हमारे उद्योग धन्धों की रक्षा करने के लिये सरकार कानून बना देवे—इस प्रकार का रोना रोते रहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा होगा कि स्वयं हम ही अपने उन कामों को स्वयं करना आरम्भ कर दें जिनको करने के लिये हम स्वयं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र और स्वाधीन हैं। ऐसा करने से हम उन्हें उत्तमता के साथ सम्पन्न कर सकेंगे। जिन कानूनों द्वारा प्रत्येक उद्योग धन्धे को अपनी रक्षा व उन्नति का समान रूप से अवसर मिल सकता है उनकी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साथ ही हमें उस पर आवश्यकता से अधिक अवलम्बन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि हम इस बात को देख चुके हैं कि जिन राष्ट्रों ने पदार्थों के खरीदने और बेचने के मूल्य को कानून द्वारा स्थिर और निश्चित कर दिया था उन्हें अन्त में असफलता के गर्त में ही गिरना पड़ा। हमारी भलाई के लिये तो हमें अधिक उचित और आवश्यक जान पड़ता है कि हम लोग भाप द्वारा संचालित यंत्रों से उचित काम उठाना सीखें और अपनी धरती को उचित खाद्य द्वारा अधिक उपजाऊ बनाना सीखें। अपनी किसानी के पशुओं का तथा गौओं का शास्त्र विहित रीति से परिपालन करना सीखें जिससे कि वे गव्य पदार्थों की अधिक उपज दे सकें। अपनी किसानी की उपज को बाजारों में उस सावधानी और चतुराई के साथ बेचने का प्रबन्ध करना सीखें जिससे किसानी की उपज पर जीविका करने वाले लोगों का धन किसानों के पल्ले में अधिक मात्रा में पड़ सके। तात्पर्य हमें वे सब काम स्वयं ही पहले करने चाहिये जिनका करना हमारी शक्ति और हमारे अधिकार में है और जिन्हें करने के लिये हम पूर्ण रूप से स्वाधीन और समर्थ हैं।

उक्त अवतरण को पढ़कर आशा है कि विज्ञ और विवेकी पाठक उसे समझदारों की बातों से ओत-प्रोत भरा हुआ अवश्य ही मान लेंगे और आशा है कि वे अपने धनवान् गो भक्तों को यही परामर्श देंगे कि वे लोग यथेष्ठ गोरक्षा को सम्पन्न करने के लिये उन्हीं सब उपायों को करना आरम्भ कर देवें जिन्हें करने के लिये वे लोग पूर्ण रूप से स्वाधीन और स्वतन्त्र हैं। गोरक्षा को सफल बनाने का सबसे बढ़िया यही उपाय है कि भारतीय किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किया जाय।

उपर्युक्त जिन समझदारों की बातों की संक्षिप्त चर्चा का उल्लेख किया गया है उनके विशाल कार्यों की संक्षिप्त चर्चा आगे की जाती है। विज्ञ पाठकों से विनीत प्रार्थना है कि वे लोग उसे मनोनिवेश पूर्वक पढ़ें, स्थिर बुद्धि होकर उसका मनन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें और उत्साह तथा पुरुषार्थ पूर्वक उन कामों को भारत में भी कार्य का रूप देने की उदारता प्रकट करें जिससे भारत के ठोस हितों का श्रीगणेश हो जाय। यह कोई बात नहीं है कि अमरीका में ही धनवान लोग हैं और भारत में धनवान लोग नहीं हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि अमेरिका के धनवान लोग समयानुकूल उपायों से कार्यों को सम्पन्न करके धन खर्च करना जानते हैं और भारत के धनवान लोग पुरानी लकीर के फकीर बनकर धन को ऐसे अनुपयुक्त ढंग पर खर्च करते हैं कि जिससे धन तो बहुत बड़ी संख्या में खर्च होता रहता है पर उससे भारत को तिल-मात्र भी ठोस लाभ नहीं होता। इस समय जिन भारतीय धनवानों ने गो भक्ति गौखात बड़े-बड़े पिंजरापोल और बड़ी-बड़ी गोशालाओं का संचालन-सूत्र हथिया रखा है वे यदि अमेरिका के गोपरिपालन विदग्ध लोगों का अनुकरण कर भारत में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करना आरम्भ कर देवें तो उनके द्वारा भारत गोधन का आशातीत सुधार और उत्कर्ष किया जा सकता है।

सुनते हैं कि संयुक्त अमेरिका में बावन स्वतन्त्र राज्य सम्मिलित हैं, उनमें से 48 स्वतंत्र राज्यों ने अपने-अपने राज्य में एक-एक विद्यालय और विश्वविद्यालय खोल रखा है जिनमें गोपरिपालन की शास्त्र विहित शिक्षा जनता को, विशेषकर किसानों के बालकों को दी जाती है। गोपरिपालन की शिक्षा के इस प्रकार कार्य में वहाँ के धनवानों का अमित धन खर्च होता रहता है। साथ ही वहाँ के गोभक्त लोग इस काम के सम्पादन में बहुत सा समय और पुरुषार्थ खर्च करते रहते हैं। उक्त विद्यालय और विद्यालयों के अतिरिक्त राज्यों के बड़े-बड़े नगरों में ऐसे अनेक हाई-स्कूल हैं जिनमें गोपरिपालन की सक्रिय शिक्षा किसानों के बालकों को दी जाती है।

उक्त शिक्षा के प्रभाव से समूचे अमेरिका देश में इस समय 45 लाख ऐसे ग्वाले हैं जो अपने घर शास्त्र विहित रीति से गोपरिपालन गव्य पदार्थों के व्यवसाय द्वारा अपने कुटुम्बों का यथेष्ठ परिपालन कर देश को आशातीत लाभ पहुँचा रहे हैं।

तारीख 1 जनवरी सन् 1930 ई० की पशुगणना से यह बात प्रकट हुई है कि उस दिन समूचे अमेरिका देश में 296 ऐसी संस्थाएँ थीं जो शास्त्र विहित रीति से लक्षण सम्पन्न साँडों का परिपालन कर उक्त ग्वालों को उपयोगी गौओं की संख्या के बढ़ाने में सहायता करती रहती हैं।

उक्त तारीख की पशुगणना ने यह भी प्रकट किया है कि उस दिन समूचे अमेरिका देश में 114 ऐसी सहयोगी समितियाँ थीं जो अमेरिका के किसानों को गोपरिपालन के शास्त्र विहित उपायों की सदा शिक्षा देती रहती हैं। वे संस्थाएँ अमेरिका के गोधन के सुधार और उत्कर्ष में सदा दत्तचित्त रहकर बहुत सा धन खर्च करती रहती हैं। इन संस्थाओं के सिवा वहाँ और भी ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जो गोवंश के प्राणियों की स्वास्थ्य परीक्षा कर उन्हें स्वस्थ्य और निरोग बनाये रखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चेष्टा में सदा तत्पर रहा करती हैं। इन संस्थाओं के प्रभाव से वहाँ की जो गौएँ स्वस्थ्य, निरोग और दुधार होती हैं उन्हीं के दूध और गव्य पदार्थों का जनता में प्रचार किया जाता है। कहना नहीं होगा कि स्वस्थ्य और निरोग गौ का दूध ही मनुष्य प्राणी के स्वास्थ्य और वीर्य की रक्षा कर उनकी वृद्धि कर सकता है। रोगी गौओं का दूध लाभ पहुँचाने के बदले हानि ही पहुँचाता है। खेद का विषय है कि भारत के बड़े-बड़े राज्यवैद्य, कविराज डाक्टर और हकीम अपने धनवान रोगियों को गौ का दूध पीने का परामर्श तो देते हैं पर वे स्वयम् इस बात को जानने की अनुमात्र भी चेष्टा नहीं करते कि स्वस्थ्य और निरोग गौ का ही दूध लाभदायक हो सकता है। उनकी इस उपेक्षा का यह परिणाम होता है कि रोगी और अनुचित रूप से पाली हुई गौ के दूध का सेवन करने से न तो उनके रोगी को ही अभीष्ट लाभ होता है और न उस प्रकार की गौ के दूध की सहायता से बनायी हुई उनकी औषधियाँ ही पूर्ण रूप से लाभदायक हो सकती हैं। भारत के राजवैद्य और कविराजगण अपने धनवान रोगियों का ध्यान यदि इस स्वास्थ्यनाशक न्यूनता की ओर आकृष्ट करना आरम्भ कर देवें तो बहुत सम्भव है कि उनके इस प्रयत्न से भारत में स्वस्थ्य और निरोग दुधार गौओं की संख्या बढ़ने लग जायगी और उससे भारत का वह सुधार और उत्कर्ष होगा जो आज दिन सैकड़ों कीर्तिलोलुप स्वयंभू नेताओं के किये नहीं हो पाता है।

गोपरिपालन की शिक्षा के लिए हाईस्कूलों, तथा विद्यालयों का भारत भर में स्थापित करना एक दिन अथवा एक वर्ष का काम नहीं है। उन्हें स्थापित करने के लिए बहुत से साधन चाहिए और बहुत-सा समय भी चाहिए। जब तक उतना धन और समय अनुकूल नहीं हो पाता है तब तक गोपरिपालन की शिक्षा का काम नहीं हो सकता। ऐसी बात नहीं है। आज दिन जो भारतीय कारपोरेशन के मेयर और कमिश्नर बनने के लिए अपने बूढ़ों की कमाई का धन व अपनी कमाई का धन पानी की भाँति बहाया करते हैं उसी प्रकार जो भारतीय म्यूनिसिपेलिटी के चेयरमेन और मेम्बर बनने में वा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के प्रेसिडेण्ट और मेम्बर बनने में अपने धन की होली तापा करते हैं और मेम्बर चुने जाने के पहले अपने मतदाताओं को बड़ी-बड़ी थोथी और पोची आशायें दिलाया करते हैं वे लोग गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता को समझ लेने की कृपा करें और उसके अनुसार अपने-अपने नगरों, जिलों तथा जिलों के ग्रामों में बसने वाले लोगों में गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करना आरम्भ कर देवें तो उनके इस उद्योग से भारत की समस्त भलाइयों के मूलाधार भारतीय गोधन का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है। आशा है कि इस लेख में अमेरिका के समझदार लोगों की बातों का तथा उनके कामों का जो संक्षिप्त उल्लेख किया गया है उससे यथेष्ट शिक्षा ग्रहण कर इस लेख के विवेकी पाठक भारतीय गोधन के नाम पर धन बटोर कर उसे अपने निजी कामों में अथवा ब्याज पर लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा है उनको चाहिए कि वे अब इस पाप के बोझ से भारत को और अधिक गारत करने में सहायक न बनें वरन उस धन की सहायता से अपने पास पड़ोस के किसानों में गोपरिपालन के शिक्षा के प्रचार को करना आरम्भ कर देवें। ऐसा करने से उन्हें सच्ची गोरक्षा का यथेष्ट पुण्य अवश्य ही मिलेगा और जिन बड़े-बड़े काम कारबारों को उन लोगों ने चला रक्खा है उनकी खासी उन्नति होगी और वे चिरस्थायी होंगे।

पूना से 'गोरक्षा' नाम का एक पाक्षिक पत्र मराठी भाषा में निकला करता है, उसके विद्वान सम्पादक ने अपने दो एक गोभक्त मित्रों के साथ उस दिन पूना की फौजी डेअरी का बहुत सावधानीपूर्वक निरीक्षण करके आपने पाठकों पर इस बात को प्रकट करने की कृपा की है कि वे लोग भी उस अथवा वैसी डेअरी को देख भाल कर भारत में शास्त्रीय गोपरिपालन विधि से गोरक्षा करना आरम्भ कर देवें तो उससे उन्हें आर्थिक लाभ अवश्य ही होगा और साथ ही भारत उपयोगी गोधन से धनाढ्य बनकर सुख समाधान का एक बार पुनः केन्द्र बन जायगा।

जो गो भक्त वर्ष छः महीने में गो सम्मेलनों में पहुँचकर गला फाड़-फाड़कर गोरक्षा के गीत गा दिया करते हैं और वहाँ से लौटने के बाद गोरक्षा के प्रश्न को सर्वथा भुला देते हैं उनसे यथार्थ गोरक्षा की आशा करना दुराशा मात्र है। पर हाँ, कलकत्ता, कानपुर, करांची और दिल्ली आदि नगरों में जिन धनवान गोभक्तों ने पिंजरापोल और गोशालाएँ खोल रखी हैं और उनके संचालन सूत्र को अपने अधिकार में कर रखा है वे यदि अपने पास-पड़ोस के सरकारी डेअरी फार्म को गोरक्षण के सम्पादक की नांई चातुर्य और निष्पक्ष भाव से देखने का कष्ट स्वीकृत करें तो उन्हें इस बात का रहस्य अवश्य ही ज्ञात हो सकता है कि इस समय भारत में गोरक्षा को सफल बनाने के लिए किस प्रकार की समझ और उसकी शिक्षा की आवश्यकता प्रयोजनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वेंकटेश्वर समाचार', 20 नवम्बर, 1931

अन्तिम लेख

अहिंसावाद की सफलता

वर्त्तमान कालेन, प्रवर्त्तते विचक्षणः ।

—चाणक्य

संसार भर के विद्वानों ने इस बात को एक स्वर से माना है और मानते हैं कि यह संसार परिवर्तनशील है। अर्थात् इस संसार में एक समय जो बात लाभदायक बोध होती है, वही बात दूसरे समय हानिप्रद जान पड़ती है। अतः बुद्धिमान लोग अतीत काल की ही सब बातों का आग्रह नहीं करते। संसार की परिवर्तनशीलता के उदाहरण ऋग्वेद काल से एकत्र किये जायें तो महाभारत से भी बड़ी एक पुस्तक बन जायगी। पर वैसा करने के लिए न तो स्थान ही है और न आवश्यकता ही। केवल एक ही उदाहरण उक्त कथन को स्पष्टतया प्रमाणित कर देगा। वह उदाहरण सही है कि एक समय वह था जब इस बात को धर्म का रूप दिया गया था कि जिन बड़े बूढ़ों की गोद में हम पले हैं वे यदि अत्याचार करें तो अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए उनका वध करने से पाप नहीं होता। अतः उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। इस समय महात्मागांधी का ज्ञानबल और तपोबल यही शिक्षा दे रहा है कि आत्महीनता की रक्षा करने में विरोधी लोग, भले ही अत्याचारपूर्ण आक्रमण करें, पर उनके बाल को भी धक्का लगाये बिना आत्महित की रक्षा करना ही धर्म है। कहना नहीं होगा कि संसार की परिवर्तनशीलता का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। अत्याचारियों का जो वध एक समय धर्म माना जाता था वही आज अधर्म अतः त्याज्य माना जाता है।

यह बड़े ही सन्तोष की बात है कि महात्मागांधी के निस्वार्थपूर्ण और निरन्तर किये गये हुए अहिंसावाद का लोहा अब बहुतेरे भारतवासी मनसा, वाचा और कर्मणा मानने लगे हैं। यह महात्मा गांधी के महान तप का मधुर फल है। पर उनकी इस कठिन तपस्या के फल का क्षेत्र तभी विस्तीर्ण होगा और उसका सुमधुर फल भारत की समूची जनता को तभी मिलेगा जब अहिंसा की भावना के साथ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ भारतीय किसानों में वैज्ञानिक कृषि तथा शास्त्रविहित गोपरिपालन की शिक्षा का ज्ञान फैलाया जायगा। इस ज्ञान की वृद्धि से भारतीय किसान जब कम खर्च में सात्विक भोज्यान्नों, गव्य पदार्थों और भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों को बनानेवाले तन्तुओं की उपज को अधिक मात्रा में पैदा करने लगेंगे। साथ ही उस खपत का व्यवसाय करनेवाले व्यापारी लोग सदा नहीं तो, कुछ समय तक उसका व्यवसाय निज की धनाढ्यता को बढ़ाने के एकमात्र उद्देश्य से ही नहीं किन्तु भारत की समूची जनता के सुख समाधान के क्षेत्र को बढ़ाने की उदार भावना के साथ सत्यता-पूर्वक करेंगे तात्पर्य यह है कि वर्त्तमान अहिंसावाद के आचार्य महात्मागांधी का वर्त्तमान समयोपयोगी अहिंसावाद पूर्ण रूप से तभी सफल होगा जब उसके आचार्य स्वयं गांधीजी और उनके एकान्त अनुयायी अहिंसावाद को सफलता प्रदान करनेवाली गोपरिपालन की वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार भारत की 24 करोड़ जनता में उसी लगन, तत्परता और दृढ़ विश्वास के साथ करेंगे जिसके साथ आज वे अहिंसा का, चर्खे का और खद्दर और अहिंसावाद का पूरा-पूरा प्रचार तभी होगा, जब उनके प्रचारकों में पूरी-पूरी शारीरिक शक्ति, मानसिक बल और बौद्धिक विकास होगा। इन आवश्यक गुणों की प्राप्ति, वृद्धि और रक्षा तभी हो सकती है, जब उनके उपासक स्वास्थ्यवर्द्धक सात्विक भोज्यान्नों तथा गव्य पदार्थों को शुद्ध और पवित्र रूपों में यथेष्ठ मात्रा में खाने-पीने के लिए पाते रहते हैं। भूखे पेट वा रोगवर्द्धक वदान्नों को खाकर कोई किसी हितकर काम को पूरा नहीं कर सकता। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसा व्रत के व्रती लोगों के अस्तित्व और साहस को बनाये रखने के लिए, इन्हें पर्याप्त मात्रा में स्वास्थ्यवर्द्धक सात्विक भोज्यान्न और बुद्धिवर्द्धक सात्विक भोज्यान्न और गव्यपदार्थ यथेष्ट मात्रा में मिलते रहे। यह सुविधा तभी हो सकती है, जब किसानों में वैज्ञानिक खेती तथा गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार किया जाता है। साथ ही धनवानों में उन्हें आर्थिक सहायता देने की उदारता उत्पन्न की जाती है और व्यापारियों में उनका व्यापार करने की वह समझ पैदा की जाती है कि जिससे देश के हितों की रक्षा होती है।

ऊपर संक्षेप में जो कुछ कहा गया है उसका सार और तत्व यही है कि अहिंसा-वाद तभी पूर्ण रूप से सफल होगा जब भारत भर के किसानों में वैज्ञानिक गोपरि-पालन की और कृषि की शिक्षा का पूरा-पूरा प्रचार किया जायगा।*

---

* यह लेख अग्निहोत्रीजी का अन्तिम लेख है जिसे उन्होंने दि० 10 नवम्बर 1931 को मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही बोलकर लिपिबद्ध कराया था।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8 जून, 1901

मेघदूत सार

(1)

आज्ञा भंग देखि स्वामी ने, एक वर्ष का शाप दिया
गयी शाप से महिमा, प्यारी, विरह घोर ने दुःख दिया।
जनक सुता के स्नानोदक ने, पावन रघुवर शैल किया
जहाँ सघन शीतल छाया तरु, वहाँ यक्ष ने बास किया।।

(2)

प्यारी विरह शोक ने उसका, इतना दुर्बल किया शरीर
कि सोने की चूड़े उसके, पहुँचे से गिरते बिन पीर।
कई मास के बाद शैल पर तिथि असाढ़ शुधि प्रथमा चीन
देखो उसने मेघपुरी सम, करता दन्त प्रहार प्रवीन।।

(3)

जैसे-तैसे यक्षराज के उस अनुचर ने चख अम्बु हटाय
इष्ट प्राप्ति हित धन के सम्मुख, किये विचार अनेक बनाय।
सुखी नर न के मन को करता, अम्बुद दरसन चंचल भारी
फिर पूछो क्या स्थिति उसकी, प्राणप्रिया जिसकी न्यारी।।

(4)

हुआ अनन्तर मन जब उसका, शांति लाभ पाने वाला
प्रिया प्राण का प्रेमी वह तब, हुआ कुशल भेजने वाला।
नये कुरज के फूलों से तब, अम्बु वाह का कर सन्मान
बोला प्रेम वचन हँस के, मम कुशल प्रिया पै भेज सुजान।।

(5)

कहाँ धुंआ और तेज वायु जल, सम्मेलन से बना जलद
कहाँ सन्देशा भेजन लायक, चतुर प्राणि मुख सुने सुखद।
इतना समझ बूझकर भी गुह्यक ने धन से किया विनय
कामी पुरुषों को नहिं होता जड़ चेतन का तनिक सुनय।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6)

भुवि विख्यात वंश पुस्कर आवर्तक के कुल जन्म लिया
स्वेच्छाचारी जानौं तुझको, सुरपति नेनिज सचिव किया।
यही जानकर निःसहाय मैंने तुझसे घन! विनय किया॥

(7)

काम व्यथा से व्यथित जनों का है हे जलद सहायकर्ता
कुबेर कोप विरही का मेरा तू ही घन! सन्देश हर्ता।
यक्ष नाम पुरि अलका में मम प्रिया पास ले जा सन्देश
पुर बाहर स्थिति हर शिर विधु की, छटा जहाँ पै रहे हमेश॥

(8)

पवन पंथ से जाते तुझको, लख, निज पलक हटाकर दूर
देखेंगी पथिकों कर नारी, आश हृदय में धर भरपूर।
तेरे सन्मुख होने पर कहु कौन? वियोगी निज जाया की
करै उपेक्षा, तजि मुझसा जन वृत्ति नहै निजाधीन जिसकी॥

(9)

मन्द मन्द चलती है वायु तेरे ही मन के अनुसार
वाम भाग में हर्षित चातक, मधुर वचन करता उच्चार।
गर्भदान का दाता तुझको जान बकुलियाँ बाँध कतार
सेवा तेरी नयन सुभग वह! करि हैं सुठि नभ पंथ मंझार॥

(10)

बिना रुके मारग में जाना, औ लखना निज भौजी जाय
पतिवृता जीती जगती है, दिन गणना में चित्त लगाय।
स्नेह भरा होता है नारी का हिय कोमल पुष्प समान
विरह दशा में उसकी रक्षा करती है आशा नहिं आन॥

(अपूर्ण)

1. प्रोषित पतिकायें पति वियोग के कारण अपनी वेणी नहीं गूँथती अतः उनकी अलकें मुँह पर लटकती हैं। उन अलकों को हाथ से अलग करके मेघ को देखेंगी यह भाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1903 ई० में प्रकाशित

नर्मदा विहार

रेवा ! त्वदीय तट पै बसहीं अनेक।
छोटे बड़े नगर दीखत पैन एक।।
शोभा सनाथ रुचिराकृति युक्ति भारी।
होशंगबाद जस है मन मोदकारी।। 1 ।।
होतै प्रभाव जननी ! तब तीर आवैं।
आबाल वृद्ध वनिता नर मोद पावैं।।
जाकी रहे मति यथा विधि की सयानी।
पावैं तथैव फलसो सरिताधिरानी।। 2 ।।
आवैं कितेक जन वस्त्ररु पात्र लीन्हें।
दूर्वाक्षतादि युत पूजन नेह भीने।।
कै कै प्रणाम तुमको जननी ! सनेह।
स्नानादि कर्मरत हों तजिके सन्देह।। 3 ।।
ह्वैकै निवृत अवगाहन सों लगावैं।
श्रीखंड कोउ, जननी ! तब कीर्ति गावैं।।
पद्मासनस्थित जर्नादन को मनावैं।
कोउ महेश पद में निजशीश नावैं।। 4 ।।
स्नानादि ब्याज रत ह्वै प्रणयी निहारैं।
भ्रूक्षेप जो प्रणयिणी उन पै प्रचारैं।।
आनन्द पाय मन में इमि सो विचारे।
आशा प्रवाहगत ह्वै गृह को पधारे।। 5 ।।
ध्यानस्थ बैठि कहहूँ द्विज ब्रह्म ध्यावैं।
पूजविधान विधि सों हरिको मनावैं।।
पिण्ड प्रदान जन कोउ कतौ करावैं।
कोऊ कतौं पितृन कों जलदान देवैं।। 6 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोऊ नहाय भरि कै जल पात्र नीके।
स्तोत्रादिपाठ करहीं शिवशंभूजी के ।।
तीरस्थ मंदिरन माँ निज इष्ट ध्यावैं।
कोऊ भवानि ! तुम्हरे शुचिगीत गावैं ।। 7 ।।
अत्यन्त भोर बहुधा कुलतीय आवैं।
मर्य्याद साथ अवगाहन के चढ़ावैं ।।
त्वन्नीर अम्ब ! शिवपै सहितानुराग।
पूजासंवारि गृह जायँ सुसुष्टुभाग ।। 8 ।।
सायं प्रभात गिरिपै धन वृन्द आवैं।
नाना प्रकार रुचिराकृति को दिखावैं ।।
काव्य प्रवीण रस लोलुप विज्ञ लोग।
सानन्द आय निरखैं नग मेध योग ।। 9 ।।
बालार्क बिंब जननी ! तव बीचि माहीं।
बालाति बाल लखकै अतिमोद पाहीं ।।
शांति प्रयुक्त जल क्रांति कतौं निहारैं।
कोऊ समीर वृत चंचलता विचारैं ।। 10 ।।
ग्रामीण लोग तरणी पर लादि लावैं।
दूधादि वस्तु नित ही जिहि जौन भावैं ।।
नौका अनेक उतते इत आवती हैं।
यों ही अनेक इतते उत धावती हैं ।। 11 ।।
नौका न आव लदिकै उहिपारकेरी।
होवैं तबै मिलन माँ दूधदधि देरी ।।
होवैं अतीव नर नागर व्यग्र ताते।
नौका निरीक्षण करैं तटपै बताते ।। 12 ।।
आवैं अनेक नर नागर घाट देखें।
होवैं प्रसन्न लखिकै रचना विशेषें ।।
दैं धन्यवाद हियतें बहुजानकी की।
जाको सुधाट अरु मंदिर हैऽति नीको ।। 13 ।।
उच्चाति उच्च पद पै जन जे विराजैं।
तेऊ संवारि जननी ! निज काम काजैं ।।
त्वत्तीर आय लहहीं तट वायु तेरी।
बैठें, फिरैं, अरु लखैं, गिरि, वीचि तोरी ।। 14 ।।
त्वत्तीर बैठि जनजो श्रम को भुलावैं।
घंटारु भेरिख को सुनि मोद पावैं ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्राम पाय मन में लहिकै प्रमोद।
संध्यादि कृत्य करहीं द्विज केर वृन्द ।। 15 ।।
बैठें संवारि अपनी अपनी समाज।
वार्ता विचार करहीं जिहिं जौन काज ।।
कोऊ विचार करहीं करिये सुधार।
वाणिज्य बाढ़ जिमि हो बहुतै प्रकार ।। 16 ।।
कोऊ समाज अरु कलोन्नति को विचारैं।
विद्या प्रचार हित की चर्चा उचारैं।
हिन्दू कहायकर, नागरि नेह नाहीं।
धिक्कार जन्म उहि को यहि देशमाहीं ।। 17 ।।
कोऊ कहैं हम पढ़ी बहु बेर गीता।
उर्दू लिपी महू लिखी रहि जो पुनीता ।।
पै तत्व नाहिं तिनकौ हम तासु पायो।
जो बाँचि नागरि लिपी महं आज पायो ।।18।।
यात्री कतौ सदयता जनकों दिखावैं।
लाही चनादि जल जंतुन को खिलावैं।
तेऊ विहाय भय संशय शीघ्र आवैं।
क्रीड़ा दिखाय सबको कण दौरिखावैं ।। 19 ।।
सायं विचार करिबे कहँ नित्य आवैं।
गीतादि शास्त्र रुचिते जिहिं जौनभावैं ।।
आनन्द मग्न तुलसीकृत को विचारैं।
कोऊ त्वदीय महिमा जननी ! उचारैं ।। 20 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी 1905 की सरस्वती में प्रकाशित

ईश वंदना

(1)

हे कारुणीक ! करुणामय दीन बंधो।
प्रातर्नमामि तवपाद, दयैक सिन्धो।
व्हैकै प्रसन्न विनती मम कान कीजै,
जो मैं चहौं सुरुचि ते वह मोहिं दीजै ॥

(2)

जैसी दया तुम करी ध्रुव बाल पै हैं,
वैसी दया करन की अब बारिया है।
निरोग औ सुदृढ़ मोर शरीर कीजै,
विधा-विनोद महं नेह सुगाढ़ दीजै ॥

(3)

देशानुराग अरु बांधब-प्रेम मेरे,
हम देश से नहिं हटैं विधि केहु प्रेरे।
देशोपकारक लखाहिं विधान जेते,
राजैं सदैव मम मानस मांहि तेते ॥

(4)

वाणिज्य औ कृषि बढ़ावनहार बातें,
जो जो जहां मिलि सकैं उनको वहाँ ते।
लै लै प्रचार करिबे कहँ मोहि दीजै
सामर्थ्य, नाथ ! विनती यह कान कीजै ॥

(5)

वाष्पीय-यन्त्र अरु विद्युत शक्ति द्वारा,
पाश्चात्य बन्धु करहिं निज देश केरा-
लोकोपकार, जिमि स्वारथ-नेह रीते
मैं हूँ करौं तिमि सदा निज बाहु बूते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6)

जो जो धनाढ्य जन भारत के निवासी,
सो सो समाजन रखैं तजि कै उदासी।
वाणिज्य, शिल्प, कृषि को नित ही बढ़ावैं
राजा, प्रजा सबन के मन मोद पावैं ॥

(7)

हे हे दयाधन ! विभो ! जन-दुःख-हारी !
ज्यों थी सुनो तुम, प्रभो, गज की पुकारी,
त्यों धाय, नाथ, मम टेर सुनौ कृपाल,
औ शीघ्र ही भरत-भूमि करौ निहाल ॥

(8)

न्यायी, सुखी, अरु पराक्रम बुद्धिवारे
कर्तव्य-कर्म-रत सज्जन शील धारे,
आबाल-वृद्ध नर-नागर, ग्रामवासी—
होवैं, गुणी सकल ये मम देशवासी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 मई, 1909

जीवन की सफलता

उठो मित्रवर प्रात भई है, आलस को अब दूर करो ;
दिशा फराकत से फारिग हो, मुख मंजन विधि पूर्ण करो ।।
ध्यान ईश का करके मन में, कर्तव्य कर्म को याद करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर, जीवन अपना सफल करो ।। 1 ।।
सबसे प्रथम पुत्र-पुत्री गण, विषयक निज कर्तव्य करो ।
उनके लालन पालन शिक्षण, आदिक में मत भूल करो ।।
अनुचित लालन पालन करके उनका जीवन हाय ! न नष्ट करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सुफल करो ।। 2 ।।
संतति को पैदा करके तुम उसे मनुज पद योग्य करो ।
तभी पिता पद के अधिकारी होगे इसको चित्त धरो ।।
हृष्ट पुष्ट औ शिक्षित वह हो ऐसी निज तजवीज करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो ।। 3 ।।
कभी एक पल भी उसका मत, अनुचित विधि से खर्च करो ।
ब्रह्मचर्य की रक्षा पर नित उसके अपनी दृष्टि धरो ।।
जिससे चरितवान होवे वह वही उपाय विचार करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो ।। 4 ।।
सामाजिक रीती जो आवैं शिक्षा पथ के आड़ हरो ।
सब मिलि देखो शास्त्र विहित पथ पृथु करनी को याद करो ।।
नहीं ज्ञान सम विमल हितैषी उसका फल पल लाभ करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो ।। 5 ।।
अपनी औ अपने भाई की उन्नति का निज ख्याल करो ।
हेल मेल की मात्रा जिससे बढ़े वही सब काम करो ।।
कृषि-वनिज की उन्नति करके देश दशा उद्धार करो ।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो ।। 6 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँख मूंद कर देखा देखी काम करन की टेंव हरो।
आदि अंत को सोच समझकर काम करन की टेंव धरी॥
तर्क वितर्क जनित फल उत्तम होता है यह ध्यान धरो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 7 ॥
रामायण भारत औ गीता मुग्धा सममत याद करो।
उनको केवल पढ़ने वा सुनने से नहिं लाभ खरो॥
सोच समझ कर करनी वैसी करो तभी भव पार तरो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 8 ॥
नित के काम काज को करके ग्रन्थ पठन की टेव धरो।
जो कुछ पढ़ो गुनो उसको नित मित्रों पर प्रकट करो॥
यों विचार करके यारो वस्तु तत्व को ग्रहण करो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 9 ॥
दाँव पेंच, छल-छिद्र, कपट की चाल चित्त से दूर करो।
थोड़ा कहो करो पर उसको पूरा मन में बान धरो॥
शिव, दधीच, हरिचन्द कहानी इसीलिये हैं याद करो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 10 ॥
समझ बूझकर हित तत्वों को प्रेम-एक्य विस्तार करो।
सामाजिक बल धन के साधन खोज खोज कर प्रकट करो॥
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन सफल करो॥ 11 ॥
संड मुसंडे धूर्त जनों को भूल कभी मत दान करो।
गाँजा भंग अफीमखोर को भी मत दान करो॥
विद्या बुद्धि ज्ञान के हित तुम धरा वित्त का दान करो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 12 ॥
रहन-सहन औ पाठ पठन के नियमों में तो सुधार करो।
जिससे सन्तति शिक्षित होकर वीर्यवती हो ध्यान धरो॥
बिना विद्या बल धन के जग में काम किसी को नहीं सरो।
धरती तल पर कीर्ति अचल कर जीवन अपना सफल करो॥ 13 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 19 दिसम्बर 1909 ई०

रामचन्द्रजी का उपदेश

सुनो सुनो भारत के बासी।
अब तो त्यागो सपदि उदासी॥
ले लेकर मानव अवतार।
किये जो हमने चरित उदार॥ 1॥
व्यास आदि कवि पुंगव नाना।
जिनने सारा चरित बखाना॥
उनको धन्यवाद दे भाई।
गुनो चरित को चित मन लाई॥ 2॥
स्वयं पढ़ो तुम उन चरितों को।
स्वयं गुनो तुम उन चरितों को॥
तब पाओगे उन्नति द्वारा।
सत्य-सत्य यह वचन हमारा॥ 3॥
तुलसी ने जो कहा पुकारी।
"गोद्विज देव धेनु हितकारी॥
कृपा सिन्धु मानुष तनधारी॥"
इसका मतलब लेव विचारी॥ 4॥
आज इसी का सुन लो मतलब।
मन को स्थिर कर तजकर जब तब॥
गो का मतलब कहते पण्डित।
"धरा" सकल गुण से जो मण्डित॥ 5॥
धरा अन्न बहु उपजाती जब।
लोग सुखी होते हैं सब तब॥
खाद नहर आदिक के जल से।
तथारसायन ओ कल बल से॥ 6॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना उसे शस्य सम्पन्न।
जिससे कमी न होवे अन्न॥
यही धरा की रक्षा जानो।
इससे भिन्न न कुछ अनुमानो॥ 7॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य कहाते।
हैं तीनों यह द्विज सब गाते॥
नाना युक्ति सुखद चतुराई।
शोध शोध कर ब्राह्मण भाई॥ 8॥
समय-समय पर अपनी युक्ति।
समझाते लख-लख कर भक्ति॥
जिसे समझ नर नाथ चलाते।
प्रजावर्ग उससे सुख पाते॥ 9॥
प्रजावर्ग के जीवन धन की।
रक्षा करते क्षत्री सब की॥
जो-जो वस्तु जहाँ नहिं पाते।
वहाँ वैश्य उसको पहुँचाते॥ 10॥
यह तीनों नित रहैं प्रसन्न।
रक्षा उनकी यही, न भिन्न॥
यही बात तुलसी ने गाई।
समझो सब जन चित मन लाई॥ 11॥
दूध दही घी माखन मिसरी।
विविध धान्य और चीजें दुसरी॥
जिनके बिन दुनिया के काम।
चलैं न छोटे बड़े ललाम॥ 12॥
उन सबको उपजाने वाले।
शुभ्र लाल औ पीले काले॥
हृष्ट-पुष्ट बली बर्द हैं।
जिनकी माता धेनु सुखद हैं॥ 13॥
इसीलिए धेनु को माना।
सबने छोड़ कपट छल छाना॥
कौन धरेगा इसको नाम।
सबही करते ऐसा काम॥ 14॥
सधता जिससे जिसका काम।
उसे सदा वह करै प्रणाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही पन्थ जग में दिखता है।
    जब से वह चलता फिरता है॥ 15॥
इन तत्त्वों को समझ-बूझकर।
    भारतवासी मिले मेलकर॥
सब मिलकर निश्चय यह करो।
    धरा धेनु द्विज को चित धरो॥ 16॥
हम सबने किया यही है।
    तुम भी इसको करो सही है॥
इसको कर आनन्दित होगे।
    राजा-प्रजा उभय सुख लोगे॥ 17॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6 मई, 1909

॥ श्रीहरिः ॥

भारत के मध्यप्रान्त छत्तिसगढ़ भूखण्ड
नरन के नाथ जामें बसत घनेरे हैं।
रियासत एक वामें छुईखदान छोटी सी
विद्या के आठों याम रहत जहाँ डेरे हैं॥
सूर वीर गुणी कवि पंडित प्रवीण नीके
राजा को यही जहाँ रहत सदा घेरे हैं॥
कपटी कुचाली कूर कायर कुबुद्धि वाले
जान नाहि पावत भूलि राजा के नेरे हैं॥
ऐसी पुण्य पुहमी को कीनो है अखण्ड राज
जाने चवालीस वर्ष सहित यशन के॥
पाई ऊँची कुर्सी निजकीर्ति पुण्य पुंजनतें
राजदरबारन में राज अंगरेजन के॥
भाई बन्धु इष्टमित्र प्रजा औ कलत्र पुत्र
होत रहे सुखीपाय वृत्ति सनमानन के॥
सोई महर्षि महंत राजा लछमनदास
कृपा करैं राजनपै निजवंश जातन के॥ 2॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतमित्र', 1 जनवरी 1910 ई०

सीताजी का उपदेश

वर्तमान भारत की नारी ।
सुनो सीख दे कान हमारी ।।
समझ बूझकर वैसी करनी ।
करो, करो उत्तम कुल धरनी ।। 1 ।।
सीख मानकर करो जो वैसी ।
करनी हम बतलातीं जैसी ।।
होगी तुम खलु माता बहिनी ।
शूर बीर की सुन्दर गृहिणी ।। 2 ।।
पंडित शूर गुणी की माता ।
बनकर हो तुम जग विख्याता ।।
तब होगा भारत उद्धार ।
जानो इसे सार का सार ।। 3 ।।
बाहर से पति घर जब आवे ।
करो वही उसको जो भावे ।।
सादर मन प्रसन्न कर बोलो ।
उसके सुख दुख को नित तोलो ।। 4 ।।
प्रसन्न मुख की माधुरी बानी ।
हरती चित्त की अखिल गलानी ।।
इस शिक्षा को मन में धर लो ।
इससे निज हित पूरा कर लो ।। 5 ।।
अपने सुख को पीछे रख कर ।
सुख दो तुम पति को नित उठकर ।।
ऐसा करने से तुम होगी ।
परमधन्य; औ सुख भोगोगी ।। 6 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारवती औ मेरी करनी ।
तुलसी ने है अच्छी बरनी ।।
पढ़ो उसे तुम बारम्बार ।
गुनो उसे तुम बार हजार ।। 7 ।।
मात पिता औ सास ससुर के ।
घर के सुख अरु शुचि परिजन के ।।
तृण सम तजे, साथ पति लागी ।
तभी हुई हम यों बड़भागी ।। 8 ।।
यद्यपि थी मैं बड़े की बेटी ।
रहती थी सुख साज लपेटी ।।
तथापि सेवा निज पति की मैं ।
करती थी निज हाथों से मैं ।। 9 ।।
बिन सेवा मेवा नहिं पाई ।
कभी किसी ने जग में भाई ।।
करो पति की नित उठ सेवा ।
मानो उसे देव पति देवा ।। 10 ।।
गृह प्रबन्ध को उत्तम विधि से ।
करो लगा जी जान उसी से ।।
भारत महिला की है करनी ।
यही व्यास आदिक ने बरनी ।। 11 ।।
गुरुजन की सेवा नित करना ।
आशीर्वाद उन्हीं से लहना ।।
यों निज ग्रह को सब दिन भरना ।
सुख मंगल से प्यारी ललना ।। 12 ।।
माता होने के पहिले तुम ।
संतति पालन विधि सीखो तुम ।।
मुनि शुश्रुत औ चरक आदि ने ।
लिखा यथा है वैद्यराज ने ।। 13 ।।
गर्भवती स्त्री तुम होओ जब ।
वीर गुणी के चरितों को तब ।।
भारत औ रामायण में से ।
ढूंढ पढ़ो चित लाय हिये से ।। 14 ।।
चित में जैसा भाव बसेगा ।
वैसा ही सन्तान मिलेगा ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये उत्तम पुरुषों के ।
चरित गुनो जिनके जगली के ॥ 15 ॥
शिशु का खान-पान यों रखना ।
शक्ति बढ़े उसकी नित दुखना ॥
जब रोंवे तब दूध देन की ।
खोटी चाल तजो अन हित की ॥ 16 ॥
नियत समय पर भोजन लोना ।
ताजा औ बल वर्धक होना ॥
इसी से हो सकते हैं बालक ।
हृष्ट पुष्ट सुन्दर कुल पालक ॥ 17 ॥
बालक गण की तुतली बानी ।
करो उसे नय सुख से सानी ॥
बालक पन का किया सुधार ।
होता है दृढ़ गुण आगार ॥ 18 ॥
झूठ बात बोलने न पावे ।
नीच कर्म्म देखने न पावे ॥
करौ व्यवस्था ऐसी नीकी ।
लहो कीर्ति ज्यों चिंतित जी की ॥ 19 ॥
लालन शिक्षण करो यथाविधि ।
जिससें होवे वह सब गुणनिधि ॥
गुणी बनाकर सुत को माता ।
होती धन्य विश्व विख्याता ॥ 20 ॥
गुणी सन्तान की माँ होकर ।
करो विश्व में नाम उजागर ॥
यह जग जिसकी कीरति गाता ।
वही स्वर्ग में है सुख पाता ॥ 21 ॥
सार तत्व उन्नति का माई ।
समझो इसे सदा मन लाई ॥
था हमने तब जो सुना किया ।
तुम्हें आज सब सो बता दिया ॥ 22 ॥
तुम्हें देय आशिष मन माई ।
प्रणकर दोउ निज भुजा उठाई ॥
मन प्रसन्न कर करो साधना ।
सभी फलेंगी मनः कामना ॥ 23 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमित्र, 8 जनवरी 1910

किसान

खेती को कहते थे लोग।
देती थी उत्तम सुख भोग॥
अब क्यों इसको करने वाले।
पड़ते हैं नित दुख के पाले॥ 1॥
इसका कारण सुनो किसान।
चित्त लगाकर देकर कान।
बड़े गुणी तब ज्ञान निधान।
करते थे इसका हित मान॥ 2॥
अब केवल मूरख के हाथ।
करते इसको सदा सनाथ॥
इस सबब से सब रोते हैं।
वही जो खेती नित करते हैं॥ 3॥
खर्च लाभ को वह बिनजाने।
करते खेती बने दिवाने॥
इसी सबब से रोते हैं।
पुरुषों की दौलत खोते हैं॥ 4॥
बीती का अब रोना छोड़ो।
पिछले दुख से मुँह अब मोड़ो॥
अब जो है उसमें मन देव।
सुख संपत्ति मनमानी लेव॥ 5॥
जिसने आमद खर्च का लेखा।
साल साल में कभी न देखा॥
उसको घाटा होगा जरूर।
कमती हो अथवा भरपूर॥ 6॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज बैल नौकर का खर्चा।
इनका जो खोता है परचा ।।
उसे एक दिन खोना होगा।
धन दौलत औ रोना होगा ।। 7 ।।
आमद से खर्चा नहीं बढ़े।
इसको तुम सब दिन रहो पढ़े ।।
धर्म्मं चतुरता इसी को मानो।
इसे सुखों का मूलहि जानो ।। 8 ।।
निरुज बीज औ पुष्ट बैल हैं।
उसी तरह जल खाद आदि हैं।।
दाता उत्तम उपज के जानो।
सत्य सत्य इसको तुम मानों ।। 9 ।।
गाँव गाँव के मिलो किसान।
तज के बैर भाव औ मान ।।
बीज खाद औ जल आदिक का।
करो प्रबन्ध सबै मिल नीका ।। 10 ।।
ताल कूप नहरें खोदवाओ।
संचित धन से यही कराओ ।।
खाद बीज की मंडी खोलो।
इन पुण्यों से पातक घोलो ।। 11 ।।
बहुत सी गौवें रखते हो।
पर उन्हें न चारा देते हो ।।
इसी सबब से तुम नहिं पाते।
बली बैल बहु पीले राते ।। 12 ।।
घर में पाली गऊ किसान।
जिनसे मिले बैल बलवान ।।
चारा दाना उनको देव।
काम बहुत सा उनसे लेव ।। 13 ।।
एक साल का दाना पानी।
घर में रखना बात सयानी ।।
इसको भूलेगा जो किसान।
होना होगा उसे पिसान ।। 14 ।।
इसके सिवा और इक बात।
चित्त में रखना प्यारे भ्रात ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब" "चलोका" भेद मत भूल।
भूल से होगा यह खल शूल ॥ 15 ॥
जो किसान नौकर से कहता।
जाकर खेती देखो भ्राता ॥
उसकी खेती चौपट होती।
उसे दुःख की बाधा होती ॥ 16 ॥
जो किसान नौकर से कहता।
चलो खेत को देखें भ्राता ॥
उसके घर आता है पूर।
धान्य धनादिक का भरपूर ॥ 17 ॥
इसको करो कंठ की माल।
निश्चय होंगे मालामाल ॥
इसमें संशय रंच न करना।
इसे रातदिन पढ़ना गुनना ॥ 18 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्यकुब्ज में प्रकाशित विवेकी कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की सेवा में

निवेदन

(1)

भो कान्यकुब्ज[1] अवनी तल देव देव
मेरो करांजलि बंधोप्रणमोऽस्तु लेव ।।
ह्वै कै प्रसन्न विनती सिगरी सुनीजे
शंकांधकार हियते मम काढ़ि दीजै ।।

(2)

वंशावली अरु अबकी कुदशा निहारी ।
होवे विषाद मन माँहि ममाति भारी ।।
ताते करौं विनय नाथ नवाय माथा ।
दीजै मिटाय दुख को समुझाय गाथा ।।

(3)

काहे रहे लहत पूर्वज वस्तु भाग ।
मांगे बिना सहित मान तथानुराग ।।
कहे कह्यो भरत भूमि निवास ज्येष्ठ ।
हैं कान्यकुब्ज द्विज विप्रअतीवश्रेष्ठ ।।

(4)

काहेऽधुना नियम बद्ध प्रथा चली है ।
मांगे हुपै मिलन नाहिं धरी ढली है[2] ।।
बालाकिती जिअत्त स्वामिरंडापकाटैं ।
कै भ्रूण[3] नाशकितनी भुवगर्त पाटैं ।।

---

1. ब्राह्मण
2. माँगने का हठ करते-करते शुभ मुहूर्त बीत जाता है, पर एक कपार्दिका भी नहीं मिलती । इसका जो परिणाम होता है सो इस श्लोक के उत्तरार्ध में स्पष्ट ही है ।
3. बालहत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5)

काहे कुंवारपन खेवत मृत्यू पावैं।
कन्या लालाम[4] गुण जो रति को लजावें ॥
काहे घटै प्रणय पूर्वहिं कोऽखिलाऽऽज।
होतै सुतासुत कथा सुविवाह काज ॥

(6)

भाषैं पुराण निगमागमजोई।
कन्या सुदान न अन्य कोई ॥
भो कान्यकुब्ज कुलदीप ! तुम्हें सुदाना।
दै क्यों पितऽरुजन पावत दुःखनाना ॥

(7)

होवैं तुरन्त गृह को लय भू सुरेश।
पावैं जहँ निबल नारि सदा कलेश ॥
जीवै सुता जब लगी ससुराल माहीं।
पावै न सो[5] न जननी सुखलेख छाहीं ॥

(8)

कन्या जवै निज पिता गृह को पधारैं।
भेदप्रथा तजि रसोई सवै सवारैं ॥
जामातृहू सब जहाँ सुख दुख तेवा।
लै दक्षिणा करहिं भोजन औ कलेवा ॥

(9)

एकद्विवार करि भोजन एक साथ।
प्रेम प्रब्रद्ध जनहोत सदैव नाथ ॥
क्यों कान्यकुब्ज तुम भोजन नाहिं नाखौ[6]।
जो आवसारि तुम्हें घर सत्यभाषै ॥

---

4. रूपवती कन्याएँ
5. वह कन्या और उसकी माता को सुख लेश भी नहीं मिलने पाता।
6. ससुराल में साली के हाथ का बनाया हुआ भोजन तो आप कर लेते हैं पर अन्यत्र आप साली के हाथ का भोजन न करते हैं, न उसे ही अपने हाथ का भोजन देते हैं, न जाने इसमें क्या तत्व है ? संसार में यह बात देखी जाती है कि जो लोग एक दो बार एक साथ बैठकर भोजन करते हैं उनमें आपस में प्रेम हो जाता है, पर आप के यहाँ ऐसा क्यों नहीं होता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(10)

है कौन तत्व यहिमा कहिये कृपाल।
लीला लखी सुजनके मनहों विहाल ।।
भाखैं तबै सब यही तुम्हारी प्रथाको।
है मुख्य बीज घन अंध परम्परा को ।।

(11)

हैं का यहै कहहु चिन्ह कुलीनता के।
त्यागे यदर्थ तुम धर्म्म मनुष्यता के ।।
कन्या स्वसा त्रसित हों तिय धर्म पाई।
खोजौ तऊ तुम वृथा कुल की बड़ाई ।।

(12)

संज्ञैव शेष कुल जात क्रिया विहीन।
मूढ़ातिमूढ़ नररूप पिशाच दीन ।।
विद्या विहीन गुण लेश विहीन जोई।
दे ताहि पुत्र तुम नाशहु जन्म सोई ।।

(13)

एतादृशी लखि दशा भगवन् निहारी।
पावैं अतीव दुख मानुष जो बिचारी ।।
याते करौं विनय नाथ क्षमा करीजे।
विप्र प्रभो अवनती पर चित्त दीजे ।।

(14)

कूपस्थ भेक समनाथ किए विचार।
होवै कदापि नहीं उन्नति को प्रचार ।।
यातेविहाय अब अन्ध परम्परा को।
सेवौसुजान हित साधन की प्रथा को ।।

(15)

आचार्य पण्डित पुराजु भये महाना।
श्रीहर्ष सांक्रत पंतजलि आदि नाना ।।
हैं स्थापिये गुणहि को गुणी पूज्य थाना।
पूजाकर्तौ नवय चिन्ह लिखी जहाना[7] ।।

---

7. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु नच लिंग नच वयः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(16)

कँ बाजपेय बहु यज्ञ लही प्रतिष्ठा।
पूज्यो जिन्हें नृपति लोगन साथ निष्ठा॥
तैसे पढ़ी नियम आगम शांति कारी।
पाई दुबे मिसिर आदि उपाधि भारी॥

(17)

विद्या विनीत गुण संयुक्त नित्य राजैं।
आचार नीति जिनके लखि देव लाजें॥
ऐसे धरा सुरन को कहिए कुलीन।
पूजे जिन्हें यश बढ़े अघ होत क्षीण॥

(18)

विद्या पढ़ो तुमहुसो गुण केरि खानी
संकीर्णता हृदय की तजि देहु ज्ञानी॥
सेवौ वही गुण कलाप जु ले बटोरी।
सम्मान वित्त यश राशि हठान्त[8] थोरी॥

(19)

हे कान्य कुब्ज अवनी सुरधी विशाल।
देखो सुनी अरु गुमी जग की सुचाल॥
धारौ यही व्रतहिए चाहिए मिटायो।
स्वार्थान्ध लोग जिन चालन को चलायो॥

(20)

सम्मेल नेह अरु बांधव भाव केरी।
हैं जो प्रथा हतन वारि चलीं धनेरी॥
ज्ञान प्रथा हिय धरी तिन को मिटाओ।
सेवौ वही सुपथ जो सुख भूरिपाओ॥

(21)

लीला रहस्य तुम्हारे जगते सुभिन्न।
देखेस सुने सुजन के मन होत खिन्न॥
कीजै क्षमा मम ढिटाइ धरा सुरेश।
है जो मदीय विनती महू झूट लेश॥

---

8. आप भी उन्हीं गुणों का सेवन करिये जो मान, सम्मान, धन और यश की विपुल राशि को अपनी ओर हठात् खींचते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(22)

है योऽनुकूल समयो पढ़िये सुजान।
विद्या वही जु पढ़िभै पुरुख महान ।।
धोई कलंक सिगरे लहिए पुराने।
तेई सवै गुण जुहौ अब हीं बखाने ।।

(23)

विद्या विचार युत शिष्ट समाजरत्ने।
होओ जहाँ तुम तहाँ करहु प्रयत्न ।।
जाते मिटैं दुखद अंध परम्परा।
है यत्प्रभावश घोर विषाद छाया ।।

(24)

धावी करीन तनि को तुम देर प्यारे।
साधौ समाज हित है जन पुंज प्यारे ।।
है तुम्हारी जयनाथ यहाँ हमेशा ।।
रहै प्रसन्न तुम पै कृपया महेश ।।

(25)

देखी तुम्हें करत कृत्य उदार पूरे।
अन्याय लोग मिलि है तुम मा घनेरे ।।
देहैं विहाय हियते दुःख कौ प्रथा को।
है नाहिं सार जिहिमाँ तिल मात्र नीकी ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितकारिणी मासिक पत्रिका भाग 6, संख्या 6, 1 सितम्बर, 1916 ई०

ज्ञान महिमा

(1)

नर तनु का फल ज्ञान लाभ है
जो जीवन सुखदाता है।
ज्यों-ज्यों बढ़ता ज्ञान क्षेत्र है
त्यों-त्यों सुख अधिकाता है॥
अग्नि पवन जल तड़ित आदि का
ज्यों-ज्यों ज्ञान अधिक पाया।
त्यों-त्यों जगती तल पर सुख का
अधिकाधिक प्रचार छाया॥

(2)

कूप नदी तालाब आदि से
जल लाते दुख पाते थे।
वर्षा ग्रीष्म आदि ऋतु के दुख
उन्हें और अधिकाते थे॥
ज्ञान लाभ की अधिक वृद्धि से
सो जल अब हम पाते हैं।
बिन प्रयास घर बाहर निश दिन
जहँ तहँ नल पहुंचाते हैं॥

(3)

जिस यात्रा की घोर दुःख सह
वर्षों में कर पाते थे।
मित्रों के जिस समाचार को
मासों तक नहिं पाते थे॥
उसे अग्नि जल तड़ित शक्ति से
दिन घण्टों में पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलिहारी है ज्ञान लाभ की
जिससे हम सुख पाते हैं ।।

(4)

जग के सभी पदारथ हमको
हो सकते हैं सुखकारी ।
ज्ञान लाभ से हम यदि होवें
तत्वों के अधिकारी ।।
उदाहरण हैं इसके देखो
व्योमयान मोटर सारी ।
रेल तार फोटो आदिक हैं
ज्ञान लाभ के फल भारी ।।

(5)

जिसमें जितनी ज्ञान प्रबलता
होती है जग में भाई ।
उतनी सम्पति कीर्ति अचल को
पाता है वह मन भाई ।।
अतः करो जन संघ बनाकर
ज्ञान लाभ पथ सुकर तुरन्त ।
पाओगे धन - धान्य विपुल तुम
दुःख विपत्ति का होगा अन्त ।।

(6)

जिस कारज में लगो भाइयो
उसका पूरा ज्ञान लहो ।
ज्ञान पूर्णता सुख कर होती
इसमें शंका लेश न हो ।।
ज्ञान दक्षता की पूजा को
कहो कौन नहिं करता है ।
मूर्ख विवश उसके वश होते
ज्ञानी आदर करता है ।।

(7)

ज्ञान लाभ है प्रखर प्रभाकर
जो जाता है उसकी ओर ।
सुख सम्पत्ति मिल तनु छाया सम
अनुगत होंगी उसकी ओर ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान भानु को पीठ दिखाकर
जो चलता है नर मति मन्द।
सुख सम्पति भी तज कर उसको
भगती हैं होकर स्वच्छन्द॥

(8)

शिल्पि कृषक की दीन दशा का
कारण क्या गुनो सुजान।
ज्ञान हीनता एकमात्र है
उसका कारण दुखद महान॥
करो यत्न सब मिलकर ऐसा
जिससे वे सब हों सज्ञान।
कृषी शिल्प की उन्नति होवे
भारत हो धन ज्ञान निधान॥

(9)

जब होंगे हम भारतवासी
ज्ञान वृद्ध निज उद्यम में।
गुण लुब्धा श्रीकमला तब ही
बास करेगी घर - घर में॥
हे जगदीश ज्ञान मय शंकर
बिनती जिनकी कान करो।
ज्ञान दान द्रुत हमको देकर
हम सबका कल्याण करो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Accession 611490

Class on

Cat on

Tag etc

Checked

Any Other

Recommended By Dr. V. D. Rakesh.

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निहोत्रीजी वर्षों से हृदय रोग से पीड़ित थे परन्तु अपनी रुग्णावस्था में भी आप गो-साहित्य निर्माण करते रहते थे। इधर कुछ वर्षों से आपकी प्रवृत्ति हिन्दी में गो-साहित्य की श्रीवृध्दि की ओर विशेष रूप से बढ़ गई थी। आपने 'रसवाटिका' उत्कृष्ट कृति रचकर जगत में खूब कीर्ति कमाई थी। आप काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे।

स्वराज्य, खण्डवा
8 दिसम्बर 1931 ई.

भारत में आज तक भी ऐसा गो-भक्त न होगा जो रुग्ण होते हुए भी रात-दिन गो-रक्षा का कार्य करता रहा हो। पर अग्निहोत्री अपने अंतिम समय तक अपने शरीर की सुध न रहते हुए भी गो-रक्षा संबंधी लेख लिखने-पढ़ने की सुध रखते थे।

सत्य, जबलपुर
30 नवम्बर 1931 ई.

1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar